SOCIAL AND CULTURAL LIFE AS DEPICTED IN PARAMARA INSCRIPTIONS

(IN HINDI)
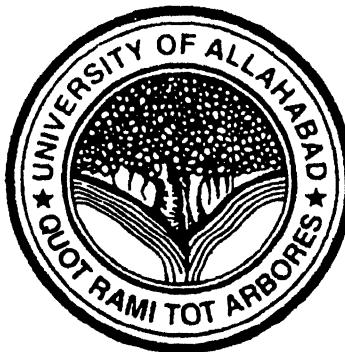
A

Thesis Submitted for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

BY

RAGHVENDRA VIKRAM SINGH

Under the Supervision

of

Dr. R.P. Tripathi

DEPARTMENT OF ANCIENT HISTORY CULTURE AND ARCHAEOLOGY

UNIVERSITY OF ALLAHABAD

ALLAHABAD

INDIA

2001

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शत पिता ।
सहस्त्र तु पितृन्माता औरवेणाति रिच्यते ।।

मनुस्मृति– 1/2/145

समर्पण

मेरी वन्दनीया मा को,

जिसकी गोद मे

मैने

इस दुनिया मे

पहली बार ऑखे खोली

एव

पूज्य पिताजी को

जिनसे

इस दुनिया एव

दुनिया के

लोगो के बारे मे

समझा

––––

ओऽम्

गजानन भूतगणादिसेवितम्

कपित्थजम्बू फलचारुभक्षणम्

उमासुतम् शोक विनाशकारकम्

नमामि विघ्नेश्वर पाद पकजम् ।।

शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे,

सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणी नमोस्तु ते।

मन्दाकिनी सलिल चन्दन चर्चिताय,

नन्दीश्वर नाथ प्रमाथ महेश्वराय।

मन्दार पुष्प वहुपुष्प सुपूजिताय,

तस्मै शिकाराय नम शिवाय।।

अतुलित बलधाम हेमशैलाभिदेहम्

दनुज बलनिधानमज्ञानामग्रिगण्यम्

सकलगुणनिधानम् वानराणामधीशम्

रघुपति प्रिय भक्तम् वातजातम् नमामि।

प्राक्कथन

पूर्वमध्यकाल भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल था। इस काल के अतीत मे चक्रवर्ती सम्राटो एव सास्कृतिक स्वर्णयुग की सज्ञा से विभूषित गुप्तकाल था। वही इसके वर्तमान मे "हमारा पडोसी हमारा स्वाभाविक शत्रु है" की वह भावना विद्यमान थी जिसने इस पूरे काल को अनेक राज्यो एव राजवशो के इतिहास मे बॉट कर रख दिया। इस काल को राजपूत काल के नाम से भी जाना जाता है।

परमार राजवश की उत्पत्ति, सभ्यता, सस्कृति एव उनके समाज के बारे मे अन्य राजवशो की अपेक्षा उल्लेखनीय कार्य कम ही हुए है अत परमारो के सामाजिक सास्कृतिक जीवन के बारे मे अभिलेखीय अध्ययन अत्यत आवश्यक था। मै स्वय परमार क्षत्रिय वश का हूँ अत मेरे लिये यह इतिहास जानने एव अपने वश के प्रति श्रद्धा ज्ञापित करने का एक सुअवसर भी था। मैने यह कार्य निष्ठा पूर्वक करने का प्रयास किया है।

परमार राजवश का शासन नवी शताब्दी से चौदहवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों तक लगभग पाच सौ वर्षों का गौरवशाली इतिह्यस है। परमारो की पाच शाखाये थी – मालव शाखा, आबू शाखा, बागड शाखा, जालौर शाखा और भिनमाल शाखा। इनमे सबसे महत्वपूर्ण मालव शाखा थी। उत्पत्ति की दृष्टि से आबू शाखा का सर्वाधिक महत्व इसलिये है क्योकि परमारो की उत्पत्ति आबू पर्वत से मानी गई जहा से ये मालवा आये और अपना साम्राज्य स्थापित किए। इन पाचो शाखाओ के अधीन एक समृद्ध भू–भाग था जिसे सलग्न मानचित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

यद्यपि विभिन्न विद्वानो ने सामाजिक जीवन, सभ्यता, सस्कृति, शिक्षा साहित्य एव आर्थिक दृष्टि से समय – समय पर महत्वपूर्ण कार्य किया है फिर भी अभिलेखो के आधार पर इस सदर्भ मे पृथक रुप से कोई उल्लेखनीय कार्य सभव नही हो सका है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस दृष्टि से निष्ठापूर्वक किया गया एक प्रयास है।

परमारो से सम्बन्धित लगभग 96 अभिलेख अब तक प्राप्त हुए जिनकी सूची सलगन की गई है। केवल अभिलेखिक साक्ष्यो के आधार पर अध्ययनपूर्ण नही हो सकता अत तत्कालीन साहित्यिक एव अन्य उपलबध ऐतिहासिक साक्ष्यो का अवलोकन किया गया है। परमारो के सम्बन्ध मे अथर्ववेद, याज्ञवल्क्यस्मृति नारद स्मृति, वृहस्पति स्मृति, उपनिषदो, पौराणिक ग्रथो एव सस्कृत ग्रथो की सहायता ली गयी है। उपरोक्त साक्ष्यो की पुष्टि के लिए विदेशी लेखको के विवरणो का भी सहारा लिया गया है। सामाजिक एव सास्कृतिक इतिहास के सम्बन्ध मे समकालीन अन्य राजवशो के सम्बधित अभिलेखिक एव साहित्यिक साक्ष्यो का भी उपयोग किया गया है। परमारो की साम्राज्य सीमा को प्रदर्शित करने के लिए जो मानचित्र सलग्न है वह Carpus Inscrptıonum Indıcarum पर आधारित है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे कुल पाच परिच्छेद है जिसमे प्रथम परिच्छेद मे परमारो की उत्पत्ति एव उनका राजनैतिक उत्कर्ष, द्वितीय परिच्छेद मे परमार कालीन सामाजिक जीवन वर्ण, जाति व्यवस्था, विवाह, परिवार, नारी, खान–पान, परिधान, मनोरजन तथा तृतीय परिच्छेद मे परमार शासको की धार्मिक नीति – धार्मिक जीवन, व्रत, त्योहार, उत्सव एव चतुर्थ परिच्छेद मे परमार कालीन शिक्षा साहित्य एव कला तथा अतिम परिच्छेद मे परमार कालीन आर्थिक जीवन उद्योग,

वाणिज्य एव कराधान का यथासभव विशद वर्णन किया गया है।

परमार वश पर शोध करना मेरे लिये सिर्फ शोध का ही विषय नही अपितु श्रद्धा का विषय था। परमार क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न होने से मेरे लिये अपने वश और कुल की उत्पत्ति के बारे मे जिज्ञासा आरभ से ही थी। अपने सुहृदय गुरुदेव डा० आर०पी० त्रिपाठी जी से मैने परमारो पर शोध करने की आज्ञा चाही जिसे गुरुदेव ने आज्ञा प्रदान कर मुझ पर जो कृपा की उसका मै ऋणी हूँ।

पूज्य गुरुदेव डा० त्रिपाठी जी ने न केवल मेरे शोध सम्बन्धी निर्देशन दिया अपितु जीवनोपयोगी जो व्यावहारिक सीख दी वह एक उदारमना गुरु ही कर सकता है। गुरुदेव जितने ही मृदुभाषी है उतने ही कर्तव्यनिष्ठ एव अनुशासित व्यक्तित्व है।

पूज्यगुरुदेव न सिर्फ मेरे शोध मार्ग दर्शक है अपितु मुझ पर उनकी पितृवत छाया ने जो आत्मिक सम्बल प्रदान किया। वह गुरुदेव जैसे उदार व्यक्तित्व के धनी ही कर सकते है।

शोध मे प्रवेश लेने के बाद जब मै मुरुदेव के घर आशीर्वाद लेने पहुचा तो गुरुदेव ने आशीर्वचनो के बाद कहा – मेरे निर्देशन मे शोध करने वालो मे से कोई Unemployed नही है मेरा आशीर्वाद है कि तुम शीघ्र अच्छी नौकरी पा जाओ। गुरुदेव का यह प्रथम आशीर्वचन था।

गुरुजी के घर का वातावरण अत्यन्त पारिवारिक रहा। गुरुमाता ने जो स्नेह दिया वह अविस्मरणीय है। मेरा शोध प्रबन्ध विलम्ब हो रहा था। इसके लिए गुरुमाता ने मातृवत छिडकी भी दी और शोध प्रबन्ध शीघ्र जमा करने हेतु प्रेरित किया जिसके लिए मै मुरुमाता का आभारी हूँ।

मैने हमेशा गुरुदेव एव गुरुमाता को माता पिता तुल्य ही समझा यदि इन्हे मेरे किसी भी आचार व्यवहार से तनिक भी कष्ट हुआ हो तो मै बारम्बार क्षमाप्रार्थी हूँ। गुरुजी के परिवार मे दीपा, प्राची, नीरज एव रतन ने बार–बार प्रेरित किया कि मै अपना शोध प्रबन्ध शीघ्र प्रस्तुत करू इसके लिए मै उन सभी का आभारी हूँ। रतन मेरा अनुज तुल्य मित्र है जो अपने वय से अधिक समझदार एव अत्यत विनम्र है जो गुरुजी के सानिध्य का फल है।

छात्रावास मे जिन वरिष्ठ लोगो का सहयोग प्राप्त हुआ उनमे सबसे पहले श्री शोभनाथ सर का नाम लेना मेरे लिये परम आवश्यक है क्योकि छात्रावास का जब मै अतवासी नही था तब श्री शोभनाथ सिह सर के कमरे मे रहा और शोभनाथ सर का बडप्पन यह रहा कि उन्होने मुझे अपने छोटे भाई जैसा स्नेह दिया। वे छात्रावास मे मेरे सरक्षक की तरह रहे। उन जैसा सहनशील एव उदार व्यक्ति मेरे जीवन मे अविस्मरणीय स्थान रखता है। मैने अग्रेज विज्ञान Bıron की यह पक्ति पढा था। – "God Loves whom dıed young" यह मेरा दुर्भाग्य है कि श्री शोभनाथ सर अब हमारे बीच नही है उनकी स्मृति को शत् शत् नमन्।

बृजेन्द्र विद्याकर सिह मेरे उन अतिनिकट लोगो मे था जिसने मुझे बडे भाई की तरह आदर दिया। वह छात्रावास के मेरे ही ब्लाक के कक्ष स० 32 मे रहा। मेरे और विद्याकर के बीच कोई औपचारिकता कभी नही रही। मै जब भी छात्रावास के 32 नम्बर के सामने से गुजरता हूँ तो उसका सबोधन हलो सर । राघव सर । महसूस होता है। उसकी ढेरो स्मृतिया मेरे जेहन मे है। मेरे प्रिय विद्याकर की स्मृति को सदा मेरा प्रणाम्।

छात्रावास छोडने के बाद भी मेरा सम्बध छात्रावास के जिन लोगो से

अत्यत सौहार्दपूर्ण रहा उसमे विजय राय अविस्मरणीय है। उसके और हमारे बीच ज्येष्ठता का बडा अन्तर छात्रावास मे रहा, किन्तु हमारे सम्बध अत्यत मधुर थे। उसके अचानक हमारे बीच से चले जाने का मुझे अत्यत कष्ट है। विजय की स्मृति को मेरा नमन।

मेरे मित्र आलोक सिह "बब्लू" की स्मृति मेरे मनस पटल पर सदैव उपस्थित रहेगी। उसकी स्मृति को प्रणाम।

छात्रावास के जिन वरिष्ठ लोगो मे श्री कौशलेन्द्र सिह जो मेरे वरिष्ठ मित्र एव पडोसी (वे कक्ष स 38 मे रहते थे और मै कक्ष स 39 मे) रहे। श्री प्रदीप सिह (85) जो मेरे वरिष्ठ भी रहे और मेरे मित्र भी। श्री अजय कुमार सिह सर (जो कक्ष स 39 मे ही रहे उनके छात्रावास छोडने के बाद मै कक्ष स 39 का अत वासी बना) उनका स्नेह आज भी यथावत है वे जो राजेश सर मेरे सीनियर जो मेरे शुभचिन्तक मित्र रहे जिनके बिना मेरी मित्रमण्डली पूरी नही हो सकती थी उनमे श्री राजेश कुमार सिह (काका), कुमुदेन्दु कलाकर सिह, मारकन्डेय सिह और सबसे अलग सबसे प्रमुख गुन्नू सर जिन्हे कुछ अत वासी उनका नाम वृजेश प्रताप सिह जान ही नही सके गुन्नू सर छात्रावास के प्रमुख लोगो मे और मेरे प्रमुख शुभेच्छु रहे और अभी भी है। अत मे राणा भाई राणा इन्द्रजीत सिह एव श्री शैलेन्द्र प्रताप सिह जो मेरे अभिन्न मित्र है। आप सभी के प्रति मै आभारी हूँ।

मेरे कनिष्ठ छात्रावासी अनूप कुमार सिह, प्रदीप कुमार सिह (बिल्लू) राहुल मिश्र, विजय पाण्डेय, राघवेद्र, डी०डी०, कुँअर अरुण प्रताप सिह, राजेश कुमार सिह 'हीरा' अश्विनी सिह, राजीव कुमार सिह, अजय और पकज, मिथिलेश सिह एव अन्य सभी मित्रो ने जिन्होने मुझे शोध प्रबन्ध लिखने मे यथासभव सहयोग ओर प्रोत्साहन दिया इन सभी का मै आभारी हूँ। यदि अपने कनिष्ठ छात्रावासियों

और अनुजतुल्य सहयोगियो का नाम लू और प्रदीप सिह कक्षा स 37 का नाम न लू तो यह खुद पर विश्वास न करने जैसा ही है। वास्तव मे मेरा यह शोध प्रबन्ध इतनी शीघ्रता से (जिसकी तैयारी सही मायने मे कुछ माह पूर्व से ही हुई) प्रस्तुत हो सका तो यह प्रदीप के सद्प्रयासो का फल है। छात्रावास जीवन के पूर्व के मित्र एव अभिन्न सहयोगियो मे श्री धर्मेन्द्र सिह विसेन, केसरी नन्दन मिश्रा, रवीन्द्र मिश्र, नागेन्द्र मिश्र, अजय सिह, एव विष्णुदत्त ओझा का मै विशेष आभारी हूँ।

मेरे शैक्षिक जीवन के प्रथम शिक्षक श्री दशरथ सिह का मै हृदय से आभारी हूँ जिन्होने स्वय अत्यन्त मर्यादित रहते हुए शिक्षको के प्रति सदैव आदरणीय भाव रखना सिखाया। श्री दशरथ सिह जी, के प्रति मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

श्री राम देव सिह इण्टर कालेज कामतागज सुलतानपुर के शैक्षिक एव पूरे स्टाफ का मै अत्यन्त आभारी हूँ।

डा० राघवेन्द्र शरण त्रिपाठी, डा० रामदल पाण्डेय, डा० मधुर नारायण मिश्र एव डा० परमात्मा नाथ द्विवेदी का भी मै विशेषरुप से आभारी हूँ।

मेरी मॉ के बाद मुझे जिसका सर्वाधिक स्नेह मिला, जिसने मुझे सदैव प्रेरित किया, जो मेरे जरा भी कष्ट मे दुख महसूस करती है। मै अपनी बहन तुला की सद्भावो को आत्मा से महसूस करता हूँ। मेरी बहन जो आयु मे मुझसे सिर्फ एक वर्ष ही बडी है परन्तु व्यवस्हार मे उसका स्नेह मुझ पर छाया की तरह सदैव रहता है उसे कोटिक चरण स्पर्श। जीजा जी श्री राजेश कुमार सिह ने अपने व्यस्त समय से मेरी कुशलता के लिए सदैव समय निकाला और मेरी कुशलता एव प्रगति के सदैव प्रयत्न शील रहते है। ईश्वर इन दोनो को सृष्टि के अन्त तक

स्वस्थ एव सुदीर्घ रखे यह मेरी शुभकामना है।

डा० राम अजोर सिह (डी०लिट०) प्राचार्य राम नगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर, बाराबकी जिनके गरिमामयी व्यक्तित्व एव उदात्त व्यवहार ने यह सिद्ध किया कि हर व्यक्ति ख्यातिलब्ध क्यो नही होता। डा० सिह ने मुझे अपनी सतान सा सम्बल प्रदान किया उसके लिए मै उनका अत्यत आभारी हूँ। बाबू जी डा० सिह की उदात्तता के पीछे माता जी डा० श्रीमती राधारानी सिह प्रवक्ता हिन्दी जवाहर लाल नेहरु स्नातकोत्तर महाविद्यालय बाराबकी की गरिमामयी उपस्थिति मै पाता हूँ। श्रद्धेय माता जी को बारम्बार चरणस्पर्श।

डा० जे०पी०एन० सिह रीडर (बी एड) का सु० साकेत महाविद्यालय फैजाबाद एव जो मेरे जीजा जी के बडे भाई है एव दीदी ने मुझे अपने अनुज सा स्नेह दिया और मुझे शोधपत्र प्रस्तुत करने हेतु प्रेरित किया आप दोनो आदरणीय लोगो के स्वस्थ एवं दीर्घायु होने की शुभकामनाओ के साथ मै श्रद्धावनत हूँ।

अक्टूबर 2001 के बाद के अपने जीवन को मै पुनर्जन्म मानता हूँ क्योंकि मै गम्भीररुप से अस्वस्थ हुआ था और सजय गॉधी आयुविज्ञान सस्थान मे पूरे एक सप्ताह स्वास्थ लाभ किया। इस समयावधि मे मेरे भतीजे बटी (देवेश कुमार सिह) ने जिस लगन से मेरी सेवा किया उसके बारे मे जितनी भी कृतज्ञता ज्ञापित की जाय वह अल्प ही है। कृतज्ञता इसलिए आवश्यक है, क्योकि उसने जिस निष्ठा एव स्नेह से सेवा की वह भगवान राम के अनुज लक्ष्मण जैसी सेवा थी। आयुर्विज्ञान संस्थान में बटी के ही दो सेवको – रामू और रामजीत का भी मै आभारी हूँ क्योकि उनकी सेवाओ के बिना मै इतनी शीध्रता से इस योग्य नही बन सकता था कि अपना शोध प्रबन्ध पूरा कर सकू। दूसरे भतीजे मटू की सेवा भी अनन्य है।

मेरे अग्रज श्री रमाशकर सिह जिन्हे हम सभी साधू भइया कहते है उनके लिए केवल इतना ही कह सकता हू कि यदि ईश्वर और मानव के बीच कोई जीव होता हो तो वह भइया है। मेरे परिवारकी सारी प्रगति के प्रेरणा स्रोत वही है। उनकी साथ भाभी जी का ममत्व मेरे प्रति सदैव बना रहा इसके लिए मै उनका आजीवन ऋणी हूँ।

राहुल भइया जिनसे बचपन मे हमारी बातचीत कम और झगडे अधिक होते थे। भइया और मुझमे आयु का अन्तर अधिक तो नही है किन्तु मेरे प्रति उनका स्नेह पितृवत है हालाकि अब भी हमारी बातचीत प्राय न के बराबर ही होती है। भाभी ने उनसे बढकर स्नेह मुझे दिया है अवश्य ही उनके पूर्वजो मे कोई महान आत्मा रही होगी क्योकि सामान्य सस्कार से इतने उदारमना हो ही नही सकते। आप दोनो के प्रति शब्दो मे कृतज्ञता व्यक्त ही नही की जा सकती केवल भावनाओ से समर्पित की जा सकती है।

राहुल भइया से बडे श्री सुरेन्द्र विक्रम सिह भाई साहब जिनका मेरे प्रति मित्रवत, मातृवत स्नेह सदैव रहा, जिनकी दृष्टि मे मै आज भी बच्चा ही हूँ उस उदारमन अग्रज एव भाभी को कोटिक वदना।

मेरे आध्यात्मिक गुरु श्री सी०एन० सिह के प्रति मै हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनके आशीर्वाद से मै शीघ्र स्वस्थ हो सका। अस्वस्थता के बाद भी कुछ कमजोरी के कारण मुझे अपना शोध प्रबन्ध लिखने मे मेरी भतीजी ने अत्यत ही श्रमसाध्य एव नीरस कार्य (नीरस इसलिए क्योकि इतिहास उसका विषय नही है) किया उसके लिए वह कोटि–कोटि स्नेहाशीष। मेरी भतीजी गुड्डू ने जिस सी कोई बेटी हो ही नही सकती उसने मुझे सदैव प्रेरित किया गुड्डू बेटा, डी०के० एव मेरे बडे भतीजे राजन बेटा को कोटि कोटि अशीर्वाद। मेरे भॉजे गौरव सूर्यवशी एव सुभम

सूर्यवशी को शुभकामनाये। अपने कुतूहल से मेरे पुत्र कार्तिकेय भतीजे देवर्षि एव पुत्री ज्येष्ठा ने मेरा उत्साहवर्धन किया इन सभी को मेरी हार्दिक शुभकामनाये।

मुझे डी०फिल० की उपाधि मिलने पर जिन्हे सर्वाधिक प्रसन्नता होगी उनमे किरन दीदी, जीजाजी एव मेरे काकाजी जिनकी उगली पकडकर मै बडा हुआ हूँ उनके सुस्वास्थ एव दीर्घ जीवन की कामना के साथ कोटिक चरणस्पर्श। मेरे परिवार के सभी लोगो की हार्दिक अभिलाषा मेरे प्रगति है पकज, लिदिल, शरद, शिवेन्द्र एव परिवार के सभी लोगो के प्रति साधुवाद। मेरे छोटे साले राणा जीतेन्द्र सिह "लूसुर" (IIT) जो इस समय अमेरीका मे उच्च शिक्षारत् है ने मेरे शोध विषयक सामग्री कम्प्यूटर सै एकत्र की जिसके बिना यह कार्य अत्यन्त दुष्कर होता उसका एव विनय कुमार सिह "डब्बू" का मै आभारी हूँ।

मेरे पत्नी शशि ने शोध पत्र की Proof Currection मे विशेष मेहनत किया है। मेरे हम हर कार्य–परिणाम मे वह आधे की हिस्सेदार है ही इसलिए कोई कृतज्ञता न देते हुए मै अपने इस कार्य मे उसकी हिस्सेदारी महससू करता हूँ।

परमार वश के बारे मे अनुश्रुतियो एव अन्य स्रोतो से जो जानकारियॉ मिली उनमे मेरे सबसे बडे भाई श्री प्रताप बहादुर सिह जी, एव श्री मित्रसेन सिह जी एव अपने गृह जनपद सुलतानपुर के परमार क्षत्रियो मे श्री राँज बहादुर सिह एवं श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह जी "बुच्ची भाई" का नाम विशेष रुप से लेना चाहता हूँ। उज्जैन (मालवा) से आये परमार क्षत्रिय पश्चिम उत्तर प्रदेश के हरदोई, बरेली, शहजहॉपुर में बहुतायत है। पूर्वी उत्तर प्रदेश मे सुलतानपुर मे सम्मानित एव बहुतायत है। सुलतानपुर मे सहगिया, डोमापुर, जलालपुर एव पहाडपुर ग्राम के बुजुर्गों से एव हमारे ही वश परिवार के रामपुर अम्बेदकर नगर मे बस गये श्रीयुत श्रीश प्रताप सिंह से जो जानकारियॉ मिली वे सराहनीय है। मेरे शोध प्रबन्ध से

किसी को कुछ प्रेरणा मिल सके यह मेरी उपलब्धि होगी।

मेरा शोध पत्र इस रुप मे समयावधि मे प्रस्तुत हो सका इसके लिए जिन महानुभावो का मै ऋणी हूँ उनमे डा० रामकृपाल त्रिपाठी जी न सिर्फ हमारे छात्रावास अधीक्षक रहे अपितु हमारे स्थानीय अभिभावक जैसे है उन्हे एव भाभी जी के प्रति मै सदैव श्रद्धावनत हूँ। श्री अजय प्रताप सिह सुरक्षाधिकारी इ०वि०वि० इलाहाबाद से जो सहयोग मिला उसके लिए उनका मै आभारी हूँ। मेरे अनुज तुल्य सत्येन्द्र कुमार सिह, अखिलेश कुमार सिह, रमेश कुमार सिह 'मुन्ना' एव अशोक कुमार सिह का नाम मै विशेषरुप से लेना चाहता हूँ इन्होने मुझे शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करने हेतु प्रोत्साहन दिया उसके लिए इन्हे साधुवाद।

विभाग के जिन गुरुजनो के सहयोग के बिना यह कार्य पूर्ण नही हो सकता था उनमे पूर्व विभागाध्यक्ष डा० बी०डी० मिश्र जी का एव डा० डी०पी० दूबे जी का विशेष रुप से आभार व्यक्त करता हूँ। डा० मिश्र जी हमारे छात्रावास के पूर्व अत वासी रहे है उन्होने परिवार के मुखिया की तरह स्नेह दिया। डा० डी०पी० दूबे सर ने मुझे पुस्तके एव मेरे शोध से सम्बन्धित पुस्तको एव अन्य साक्ष्यो की जो जानकारी दी एव जो प्रोत्साहन दिया उसके बिना मेरा शोधकार्य अधूरा रह जाता। पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो० जे०एस० नेगी एव प्रो० यू०एन० राय के प्रति आभार व्यक्त करना मै अपना दायित्व समझता हूँ।

विभागाध्यक्ष प्रो० ओम प्रकाश जी का मै विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जिनके सद्प्रयासो एव उदात्त व्यवहार के कारण ही शोधकार्य सम्पन्न हो सका।

विभाग के ही डा० ए०पी० ओझा, डा० जी०के० राय, डा० बी०बी० मिश्र, डा० एच०एन० दूबे, डा० जे०एन० पाण्डेय, डा० जे०एन० पाल, डा० ओ०पी० श्रीवास्तव, डा० अनामिका राय, डा० हर्ष कुमार, डा० गीता देवी, डा० पुष्पा तिवारी

डा० एस०के० राय एव सभी गुरुजनो का मै आभारी हूँ जिनसे प्रत्यक्ष परोक्ष सहयोग मुझे शोध करने मे मिला।

विभाग के सभी कर्मचारियो, विशेष रुप से मुन्ने बाबू, अनोखे बाबू एव अरोराजी एव पुस्तकालय सहायक राय साहब का विशेष रुप से आभारी हूँ जिनका अनन्य सहयोग मुझे मिला। मुन्ने बाबू ने जो सहयोग एव स्नेह मुझे दिया। उनके बेटा सम्बोधन से जो स्नेह मिला उसके बदले जितना कृतज्ञता ज्ञापित की जाय कम है।

शीघ्र एव सुन्दर कम्प्यूटर लेजर प्रिटिग एव मधुर व्यवहार के लिए मै खन्ना ब्रदर्स एव उनके सभी कम्प्यूटर सहायको का मै आभारी हूँ।

अत मे अपने सभी इष्ट मित्रो, परिचितो एव गुरुजनो के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने मेरे बारे मे शुभेच्छा की।

यदि मेरे व्यवहार मे, विचार मे, शोध प्रबन्ध मे कोई त्रुटि रह गयी हो तो अपने उदारमना गुरुदेव से क्षमा प्रार्थी हूँ।

सादर,
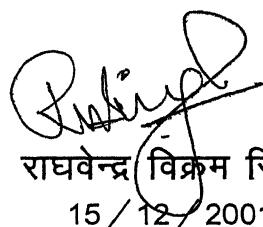
राघवेन्द्र विक्रम सिह
15 / 12 / 2001

विषय सूची

(1) परमारों की उत्पत्ति और उनका राजनीतिक उत्कर्ष – 1–46

उत्पत्ति

विजये

मानचित्र परमार सम्राज्य

परमार शासको का वश वृक्ष

परमार कालीन अभिलेख

चित्र प्रमुख अभिलेख

(2) परमार कालीन सामाजिक जीवन– 47–86

वर्ण जाति और उप जातियॉ – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,

कायस्थ, अन्त्यज

समाज मे स्त्रियो का स्थान, शिक्षा, विवाह, दहेज, सतीप्रथा,

बहुविवाह, उत्तराधिकार, विधवा विवाह,

देवदासियॉ एव गणिकाये,

वस्त्राभूषण

खानपान, परिधान एव मनोरजन

(3) परमारकालीन धार्मिक जीवन– 87–142

वैदिक धर्म – शैव, शाक्त, सौर एव वैष्णव

– जैन, बौद्ध धर्म

परमार शासको की धार्मिक नीति

धार्मिक सहिष्णुता

राज्याश्रय

व्रत त्योहार एव उत्सव

(4) **शिक्षा साहित्य एवं कला –** **143–200**

शिक्षा - अर्थ एवं उद्देश्य प्रारम्भिक एवं उच्च शिक्षा

शिक्षा के विषय, शिक्षण संस्थाएं

स्त्री शिक्षा

साहित्य – काव्य रचना, प्रशस्ति एव अभिलेख रचना

कवि एव लेखको को राज्याश्रय, शास्त्रार्थ एव गोष्ठियॉ

तत्कालीन रचनाए

कला – वास्तुकला, मूर्तिकला

(5) **परमार कालीन आर्थिक जीवन–** **201–247**

कृषि सिचाई व्यवस्था, व्यापारिक वस्तुए एव व्यापार प्राणाली

स्थानीय उद्योग – काष्ठ उद्योग, वस्त्र उद्योग, धातु एव रत्न उद्योग

शिल्प व्यवसाय एव कराधान

उपसहार– **248–254**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची– **255–264**

शब्द सक्षेप (ABBREVIATION) **265–269**

———

अध्याय–1

परमारों की उत्पत्ति

परमारों की उत्पत्ति

परमार राजवश भारत वर्ष के अतिम हिन्दू राजवशो मे आदरणीय स्थान रखता है जिन्होने मालवा या अवन्ति सहित गुजरात राजस्थान के दक्षिणी भू–भाग पर अधिकार स्थापित कर पूर्व मध्य कालीन भारत को गौरवान्वित किया। इस राजवश ने राष्ट्रकूटो के भृत्यु के रूप मे अपने राजनैतिक जीवन की शुरूआत करते हुए दशवी शताब्दी के मध्य तक भारत के हृदय मध्य प्रदेश मे सदृढ राजवश की नीव डाली जो गोदावरी के उत्तर से होते हुए बेतवा नदी के पूर्व और चम्बल नदी के पश्चिमी भू–भाग पर दृढता से स्थापित था। इस राजवश ने भारत के राजनैतिक और सास्कृतिक इतिहास मे उल्लेखनीय योगदान दिया। इस राजवश ने चौदहवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों तक भारत के समृद्ध इतिहास को लगभग 400 वर्षों तक तब तक गौरवान्वित किया जब तक कि यह राज्य मुस्लिम आक्रमणकारियो द्वारा छिन्न–भिन्न नही कर दिया गया। साहित्य के क्षेत्र मे इस राजवश का योगदान भारत के किसी राजवश से कम नही था अपितु श्रेष्ठ था।

परमारो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे तत्कालीन साहित्य एव अभिलेख परमारो की अग्निकुल की उत्पत्ति का उल्लेख करते है। परमार वश के सातवे दरबारी कवि पद्मगुप्त परिमल ने अपने ग्रथ नवसहसाकचरित (महाकाव्य) ने परमारो की उत्पत्ति अर्बुदाचल पर्वत से जोडी है। जिसके अनुसार, "इक्ष्वाकुकुल के पुरोहित वशिष्ठ की कामधेनु विश्वामित्र ने वैसे ही चुरा ली जैसे पहले कार्तवीर्य ने जमदग्नि की गाय का अपहरण कर लिया था। दुखी अरून्धती के आसुओ ने वशिष्ठ ऋषि की क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित कर दी। उनकी यज्ञाग्नि मे फेकी हुई आहुति से हाथ मे तीर धनुष लिए स्वर्ण कवच धारण किये एक ऐसा वीर पुरूष उत्पन्न हुआ जिसने बल पूर्वक कामधेनु विश्वामित्र से छीनकर वशिष्ठ के हवाले कर दी। उस कृतज्ञ ऋषि ने उसे

परमार (शत्रु का मारक) कहा और उसे पृथ्वी के शासन की शक्ति दी। प्राचीन मनु की तुलना वाले उस वीर से एक वश परमार चला जिसने पुण्यात्मा राजाओ से बडी प्रतिष्ठा प्राप्त की।।[1]

इस कथा का उल्लेख पद्मगुप्त के समकालिक एव कनिष्ठ "धनपाल ने अपनी कृति मे किया एव परमारो की अग्नि कुल उत्पत्ति का समर्थन किया है।[2]

वशिष्ठ विश्वामित्र के प्रतीत से ब्रह्मबल (तपस) और क्षत्रबल (राजस् अथवा पशुबल) के बीच शक्तिप्रदर्शन की अनेक कथाये वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत और पुराणो मे मिलती है।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि पद्मगुप्त ने इन कथाओ को अपने महाकाव्य मे स्थानान्तरित मात्र कर दिया। किन्तु पूर्ववर्ती कथाओ मे शक पहलव और यवन आदि विदेशी जातियो के भी किसी न किसी ओर से भाग लेने के उल्लेख मिलते है। पद्मगुप्त द्वारा वैसा कोई उल्लेख न करना स्पष्ट करता है कि पद्मगुप्त परमारो को विदेशी नही मानता था।[4] मनुस्मृति मे स्पष्टत उल्लेख है कि "विदेशियो को भारतीय समाज मे मिलाकर निम्न पद ही दिये गये और उनके लिए धर्मशास्त्रकारो ने व्रात्य धर्म का सिद्धात प्रतिपादित किया।[5]

मनुस्मृति के उपरोक्त दृष्टात से एक बात स्वय सिद्ध हो जाती है कि परमार प्राचीन क्षत्रिय वशीय है जो मूलरूप से भारतीय है।

राजपूताना की चारण कथाओ मे भी अधिकाश्त परमारो की अग्नि कुड उत्पत्ति को स्वीकार किया गया है। एक चारण ने लिखा है– "एक बार इन्द्र ने पूर्वाघास की एक मूर्ति बनाकर उस पर अमृत छिडककर उसे अग्निकुड मे फेका और सजीवन मत्र जपा जिससे अग्नि शिखाओ मे से एक गदाधारी मूर्ति मर–मर (मारो–मारो) कहती हुई उद्भुत हुई। उसका नाम परमार (शत्रु–सहारक) रखा गया और उत्तराधिकार के रूप मे उसे आबू धार, उज्जैन प्रदेश दिये गये।[6]

खीची चौहान के चारण मूकजी के अनुसार, "सोलकी की उत्पत्ति ब्रह्मतत्व से हुई और उसकी चालुकराव की उपाधि दी गयी। प्वार (परमार) का आविर्भाव शिवतत्व से हुआ और परिमार का देवी तत्व से। मनोनीत वश चौहान अग्निशिखा से उद्भुत हुआ और वह आबू छोड अभाई के लिए प्रस्थान कर भ्रमण करता रहा।"[7]

इन चारण कथाओ का समर्थन समकालीन अभिलेखो या अन्य किन्ही साक्ष्यो से नही होता है। अत इन चारण कथाओ को परमार राजवश की उत्पत्ति सबधी किसी साक्ष्य के रूप मे ग्रहण नही किया जा सकता।

परमारो की अग्नि उत्पत्ति को स्वीकार करते हुए आइने अकबरी के लेखक ने एक भिन्न कहानी बतायी है, "कहा जाता है कि देवी सवत् के चालीसवे वर्ष के लगभग 2350 वर्ष पूर्व (ईसवी पूर्व 761) महावाह नामक ऋषि ने एक अग्नि मदिर मे प्रथम शिखा प्रज्वलित की और धार्मिक कर्म करने मे व्यस्त हुए। ममुक्ष उस मन्दिर मे आहुतिया देते थे और पूजा के उस रूप के प्रति अति आकर्षित थे। इससे बौद्धो को आशका हुई और वे सासारिक प्रभु के पास जाकर उसके द्वारा इस पूजा रूप को समाप्त कराने मे सफल हुए। इससे लोग बहुत व्यथित हुए और उन्होने ईश्वर से एक वीर उत्पन्न करने की प्रार्थना की जो उनकी सहायता करने और व्यथा दूर करने मे सक्षम हो। सर्वोच्च न्यायमूर्ति ने इस अग्नि मन्दिर से सर्वसैनिक गुणोपेत एक मानव आकृति उत्पन्न की। इस बीर योद्धा ने अपने बाहुबल से अग्निपूजा रूपी शाति पूर्ण कृत्य की समस्त अडचनो को थोडे ही समय मे दूर कर दिया। उसने धजी नाम ग्रहण कर और अपने स्थान दक्षिण से आकर मालवा का सिहासन ग्रहण किया। इस वश की पाचवी सतति पुत्राज था किन्तु वह नि सतान था। उसकी मृत्यु होने पर सामतो ने आदित्य पोवार का उसका उत्तराधिकारी चुना। उसके बाद उसका वश परमार राजवश कहलाया।[8]

आइने अकबरी के इस कथन की कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नही है कि परमारो का सस्थापक धजी अथवा धनजय अपने मूल स्थान दक्षिण से मालवा आया। वास्तव मे धनजय नामक कोई व्यक्ति परमार अभिलेखो अथवा उनसे सम्बद्ध अन्य साक्ष्यो मे ज्ञात ही नही है।

गौरी शकर हीराचन्द ओझा ने परमार वश की अग्निवशीय उत्पत्ति के सम्बन्ध मे एक अन्य मत व्यक्त किया कि, "परमारो के अभिलेखो मे उनका अग्निवशी होना कदाचित इसलिए प्रचलित हो गया कि किन्ही किन्ही अभिलेखो मे उनके प्रथम पूर्वज का नाम धूमराज मिलता है।[9]

किन्तु उपरोक्त तर्क इस कारण मान्य नही हो सका कि "धूमराज के परमार राजवश के प्रथम पूर्वज होने का उल्लेख अपेक्षाकृत बहुत बाद के अभिलेखो मे हुआ है और उनसे बहुत पूर्व के अभिलेखो तथा नव सहसाक चरित मे उनका सम्बन्ध आबू के अग्निकुण्ड से जोडा चुका था।[10]

परमार राजवश की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे डी0सी0 गागुली ने "सीयक II के सवत 1005 विक्रमी सन् 948 ई0 के हर्षोल अभिलेख के आधार पर परमारो को मान्यखेट के राष्ट्रकूटो से जोडा"[11] उनके मत मे परमारो का राष्ट्रकूट होना इस बात से प्रमाणित है कि वाक्पति मुज ने अमोधवर्ष श्री वल्लभ और पृथ्वीवल्लभ जैसी राष्ट्रकृत आधिया धारण की। वे परम्परो का मूल स्थान दक्षिण मे कही होने का प्रमाण अबुल फजल की आइने अकबरी से देते है जिसमे कहा गया है कि परमार वश का सस्थापक धजी (धनजय) दक्षिण से अपनी राजधानी बदलकर मालव का अधीश्वर बना।

हर्षोल अभिलेख के अनुसार –

"परम भट्टारक महाराजाधिराज–परमेश्वर–श्रीमद्– अमोधवर्ष –देव – पादानुध्यात् – परम – भट्टारक – महाराजधिराज – परमेश्वर – श्रीमद् – अकाल वर्ष – देव–पृथ्वी–वल्लभ – श्री वल्लभ नरेन्द्र पादानाम्

तस्मिन कुले कल्भष मोक्ष दक्षे । जात प्रतापाग्नि

× × × × × ×

नृप श्री सीआकस् तस्मात् कुल – कल्प हुयो भवत् ।[12]

सक्षेप मे इसका तात्पर्य यह है –

परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर अकालवर्ष देव पृथ्वी वल्लभ ने परम भट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर अमोध वर्ष देव के चरणो मे ध्यान किया। उस सम्राट के विख्यात कुल मे नृप वप्पैराज उत्पन्न हुआ जो अपराध को दूर करने मे दक्ष था और जिसने अपनी प्रतापग्नि से शत्रुओ को जलाया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी वैरि सिह था। उसका उत्तराधिकारी सीयक था जो रण मे एक वीर योद्धा था।

डी0सी0 गागुली ने सीयक द्वितीय के स0 1005 सन् 948ई0 के हर्सोल अभिलेख के आधार पर उन्हे मान्यखेट के राष्ट्र कूटो से जोडा। उसके मत मे परमारो का राष्ट्रकूट होना इस बात का प्रमाणिक है कि वाक्पति मुज ने अमोधवर्ष श्री वल्लभ, पृथ्वी वल्लभ जैसी राष्ट्रकूट उपाधिया धारण किया। वे परमारो का मूल स्थान दक्षिण मे कही होने का प्रमाण अबुल फजल की आइने अकबरी से देते है। जिसमे कहा गया है कि परमार वश का सस्थापक धंजी (धनजय) दक्षिण से अपनी राजधानी बदल कर मालव का अधीश्वर बना।[13] पुन वे यह मानते है कि मालवा मे परमार राज्य की (उपेन्द्र कृष्णराज) की स्थापना गोविन्द तृतीय के भृत्यु के रूप मे हुई।

किन्तु डी0सी0 गागुली के मत मे अनेक भ्रातिया है – "हर्षोल के जिस अभिलेख के आधार पर वे परमारो को राष्ट्रकूट वश का होना स्वीकार करते है उसकी सम्पूर्णता के सबध मे ही विद्वानो का सदेह है।[14] इस प्रकार किसी अभिलेख के खण्डित पाठ के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना समीचीन नही होगा।

अपने उक्त मत की भ्रातियो के बारे मे गागुली को भी ध्यान था। वह यह कि यदि परमार राष्ट्रकूट वश के थे तो उन्होने अन्य छोटे राष्ट्रकूट वशो की तरह इस तथ्य का कही उल्लेख क्यो नही किया। इसके उत्तर मे वे स्वय कहते है कि, "उस समय कि चक्रवर्ती शासक वशो मे सामान्य रीति यह थी कि वे अपनी उत्पत्ति कुछ पौराणिक वीरो से जोडते थे और उनके नाम पर अपने राजवशो का नाम रखते थे।[15] इस सम्बन्ध मे वे प्रतिहारो का उदाहरण देते है जो अपना सम्बन्ध रघुवशी लक्ष्मण से जोडते है। किन्तु उनका यह तर्क इस कारण बडा सारहीन प्रतीत होता है कि प्रतिहारो कलचुरियो तथा चन्देलो के मान्य पूर्व पुरूष लक्ष्मण पुरूरवा अथवा चन्द्रात्रेय तो पौराणिक पुरूष थे किन्तु परमारो के आदि पूर्वज (परमार) का पौराणिक साहित्य मे कही भी उल्लेख नही है।"

इस सम्बन्ध मे उनका यह कथन भी मान्य नही है कि चक्रवर्ती शासक वश अपने को वास्तविक पूर्वजो से न जोडकर पौराणिक वीरो से जोडते थे। कल्याणी के चालुक्य चक्रवर्ती शासक थे किन्तु बादामी के चालुक्यो से अपना सम्बन्ध जोडते हुए वे गौरव का अनुभव करते थे।[16] इस अभिलेख के सम्पादक को उसके प्रस्तावित अशो मे राष्ट्रकूट नामो के होने के कारण यह बताया गया कि परमार मातृपक्ष से राष्ट्रकूटो से जुडे हुए थे और जैसे कुछ वाकाटक अभिलेखो के आरम्भ मे गुप्त सम्राटो के भी उल्लेख किये गये है वैसे ही परमारो ने भी अमोधवर्ष और अकाल वर्ष के नामो से अपना उल्लेख आरम्भ किया। हर्सोल के जिस अभिलेख के आधार पर उक्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। उसकी पूर्णता के बारे मे ही विद्वानो को सदेह है अत गागुली का मान्यता की पुष्टि करना असगत होगा।

आइने अकबरी के इस कथन की कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नही है कि परमारो का मूल स्थान दक्षिण था। मूल शासक धजी अथवा

धनजय दक्षिण से मालवा आया। वास्तव मे धनजय नामका कोई व्यक्ति परमार अभिलेखो अथवा उनसे सम्बद्ध अन्य साक्ष्यो मे ज्ञात ही नही है।[17]

"हर्सोल पट्ट मूलत राष्ट्रकूटो का था, जिसे सीयक द्वितीय राष्ट्रकूट रनिवास की लूट मे पाया था तथा उसके प्रारम्भिक भागो (लेख) को बिना हटाये उसी स्थान पर अपना लेख प्रकाशित किया। इस प्रकार एक मिश्रित दानपत्र मिलता है जो ऊपर से राष्ट्रकूट आलेख्य के रूप मे प्रारम्भ होता है किन्तु सीयक द्वितीय के आलेख्य के रूप मे अत होता है। सीयक द्वितीय का पुत्र वाक्पति द्वितीय एक पग और आगे गया उसे गाओन्नरी पट्ट जो मूलत एक राष्ट्रकूट अभिलेख था। उस उसने मिटा ही नही दिया अपितु पृथ्वीवल्लभ श्री वल्लभ अमोघवर्ष जैसी राष्ट्रकूट उपाधिया भी धारण कर ली।"[18]

इस प्रकार हर्सोल के जिस अभिलेख के आधार पर डी0सी0 गागुली आदि विद्वान परमारो को राष्ट्रकूट वश का सिद्ध करने का प्रयास कर रहे है वह न केवल हर्सोल अभिलेख की पूर्णता ही सदिग्ध सिद्ध होती है अपितु यह भी सिद्ध होता है कि हर्सोल का अभिलेख परमार अभिलेख न होकर मूलत एक राष्ट्रकूट अभिलेख था।

उदयादित्य परमार वश के 11वे शासक है जो भोज प्रथम के उत्तराधिकारी जय सिह प्रथम के उत्तराधिकारी है इनके शासन काल की उदयपुर प्रशस्ति धारा के परमार वश का प्राचीनतम ज्ञात शिलालेख है जिसमे इस वश की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जो मान्यता दी गयी है वह इस प्रकार है– "ज्ञानियो को इप्सित पुरस्कार देने वाला अर्बुद नामक पर्वत जो हिमालय का एक पुत्र है, पश्चिम मे है जहा सिद्धो को पूर्ण समाधि होती है। वहॉ विश्वामित्र ने बलात वशिष्ठ से उसकी धेनु छीनी। वशिष्ठ के बल से अग्निकुण्ड से एक बीर का उद्भव हुआ जिसने शत्रु सेना का सहार किया। शत्रुओ का वध करने के बाद जब वह धेनु ले आया तब ऋषि बोले तुम परमार नाम से (राजाओ) के अधिपति होगे।"

उदयपुर प्रशस्ति एव नव सहसाक चरित की अग्निकुण्ड से परमार राजवश की उत्पत्ति सबधी मान्यता अनेक अभिलेखो से प्राप्त होती है। इस वश के प्राचीनतम् अभिलेखो मे से एक पूर्णपाल का वसतगढ शिलालेख है जिसका कथन है कि "वशिष्ठ के क्रोध से एक वीर पैदा हुआ जिससे परमार वश की उत्पत्ति हुई।"[19]

महान वीर परमार की अग्नि उत्पत्ति की कथा वर्णन करते हुए आबू पर्वत से प्राप्त एक शिलालेख बतलाता है कि 'वीर परमार के वशजो मे एक कन्हाड था जिसके परिवार मे आबू पर्वत के चन्द्रावती नगरी का राजा धुध उत्पन्न हुआ। धुध का तादाम्य बसतगढ शिलालेख के पूर्णपाल के पिता से किया जा सकता है।[20]

बसतगढ शिलालेख के अनुसार आबू पर्वत के परमार शासका के वशजो मे कन्हाड नामक किसी राजा का नाम नही है अत यह सभाव्य प्रतीत होता है कि वह उत्पल राज के पूर्व हुआ। गागुली का मत है कि कन्हाड और कृष्णराज नाम पर्याय वाची है।[21]

आबू पर्वत शिलालेख तिथ्याकित विक्रम सवत 1287 मे एक स्थान पर सोमसिह के पुत्र और उत्तराधिकारी का नाम कन्हाड दिया हुआ है और दूसरे स्थान पर कृष्णराज।[22]

वाक्पतिमुज के उज्जैन पट्ट मे इस वश के प्राचीनतम् शासक का नाम कृष्णराज दिया हुआ है।[23]

वाक्पतिमुज के उज्जैन पट्ट मे इस वश के प्राचीनतम् शासक का नाम कृष्णराज दिया हुआ।[24] जिसका तादात्म्य समस्त आधुनिक विद्वान ने उपेन्द्र से किया है जो मालव मे इस वश के अधिपत्य का सस्थापक था।[25]

प्राचीन अभिलेखो मे आबू पर्वत शिलालेख के कल्हाड की तरह उपेन्द्र का वीर परमार वश मे उत्पन्न होने तथा वश के प्रथम राजा के रूप मे वर्णन के कन्हाड का तादात्म्य वाक्पति मुज के उज्जैन दान पत्र के कृष्णराज से है।[26]

अपने ग्रथ मे सी0वी0 वैद्य ने परमारो का मूल स्थान आबू पूर्वत से माना है और कहा कि आबू पर्वत से वे मालवा आये जहा उन्होने एक स्वतत्र साम्राज्य खडा किया।[27]

गौरी शकर हीराचन्द ओझा ने भी सी0वी0 वैद्य के मत का समर्थन किया है।[28]

इस राजवश की उत्पत्ति के विषय मे पौराणिक स्रोतो से जो जानकारी उपलब्ध होती है वह भी परमारो की अग्निकुल उत्पत्ति की जानकारी देती है। अभिलेखो के माध्यम से जिनमे मुख्यत उदयपुर प्रशस्ति, नागपुर, शिलालेख, पूर्णपाल की बसतगढ अभिलेख तिथ्याकित 1042ई0, आबू पर्वत शिलालेख प्रथम एव द्वितीय, परमार चामुडाराज का अर्थुना शिलालेख, पाट–नारायण शिलालेख आब् पर्वत शिलालेख मुख्य है आदि शिलालेख परमारो की अग्नि कुल उत्पत्ति का वर्णन करते है।

हर्सोल के जिस अभिलेख को आधार मानकर गागुली अपने उपरोक्त मत को बल प्रदान करते है वह न केवल अपूर्ण है बल्कि हर्सोल अभिलेख मूलत राष्ट्रकूट अभिलेख है जिस पर सीयक द्वितीय ने अपने आलेख्य के रूप मे प्रकाशित करा दिया।[29] इस प्रकार डा0 गागुली की आपत्ति स्वत निरस्त हो जाती है।

आइने अकबरी के लेखक ने भी परमारो की उत्पत्ति अग्नि कुड से होने का स्वीकार करते है हालाकि इसमे ने अनुश्रुतियो को स्थान देते है किन्तु अग्निकुल उत्पत्ति की बात स्वीकार करते है।

अथर्ववेद मत्स्य पुराण जैसे पौराणिक ग्रथ भी परमारो की अग्निकुड या अग्निकुल उत्पत्ति स्वीकार करते है जिनका वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है। सबसे प्रमुख बात यह है कि ये सभी साधन अभिलेख वेद पौराणिक–ग्रथ इतिहासकार) परमारो की उत्पत्ति आबू के पर्वतीय क्षेत्रो और वशिष्ठ ऋषि से जोडते है। परमार अपना गोत्र सम्बन्ध वशिष्ठ से जोडते है।

परमारो के मूल को उद्घाटित करने वाले महत्वपूर्ण साक्ष्य है हलायुध की पिगलसूत्रवत्ति जिसका लेखक अपने आश्रयदाता वाक्पति मुज को व्रह्मक्षत्रकुलीन कहता है।[30] इसकी परिभाषा देते हुए मत्स्यपुराण स्पष्ट कहता है,[31] "ब्रह्मक्षत्र की योनि जाति कलियुग मे राजाओ की क्षेमकारी सस्था बनकर देवर्षियो द्वारा सत्कृतवश होगी"।[32] पुराणो और महाकाव्यो मे ब्रह्मबल और क्षत्रबल की परस्पर प्रतियोगिता के अनेक कथानक आते है किन्तु आदर्श यह माना गया है कि लोक कल्याण के लिए वे दोनो ही साथ–साथ काम करे।

क्षत्र के प्रतीक विश्वामित्र से लडने के लिए ब्रह्म के प्रतीक वशिष्ठ की परमार रूपी जो शक्ति तैयार हुई वही ब्रह्मक्षत्र थी जो आगे चलकर राजत्व ग्रहण कर क्षत्रिय बन गई। परमार अपने गोत्रोच्चार मे स्वय को वशिष्ठ गोत्री मानते है जो वशिष्ठ से उनके मूल सबध का द्योतक है। अत परमारो को मूलत वशिष्ठ गोत्री क्षत्रिय स्वीकार करना चाहिए।[33] "उपेन्द्रराजो द्विजवर्ग्गरत्न शैर्याजितोत्तुग्नृपत्वमाण"।[34]

सी0वी0 वैद्य ने इगित किया है कि 'ब्रह्मक्षत्र शब्द का प्रयोग उन क्षत्रियो के सबध मे किया जाता था जो ब्रह्मगुण से युक्त थे अर्थात जिनका सम्बन्ध वैदिक ऋषियो से था।

परमार उपेन्द्र के मालव सिहासनरोहण की तिथि अब निश्चित की जा चुकी है। परमार उपेन्द्र का वशज वाक्पति मुज तो सातवा नृप था। 971 और 972 ई0 के बीच सिहासनरूढ हुआ। यदि प्रत्येक नृप के लिए

सामान्यत 25 वर्ष की अवधि निश्चित की जाय तो उपेन्द्र का राज्यारोहण नवी शताब्दी के प्रथम चरण मे होना माना जायेगा।[35] ऐसा ही मानना इतिहासकार बुल्हर का भी है – उपेन्द्र मालव सिहासन पर 808ई के कुछ पश्चात् गद्दी पर बैठा।[36]

सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि प्रतिहार वश की पराजय के बाद सन् 808 और सन् 812 ई0 के बीच के वर्षो मे प्रशासन का भार एक नये शासक माण्डलिक ने ग्रहण किया। इसका उपेन्द्र के जीवनकाल की अवधि मे तादात्म्य बैठता है। किसी निश्चित साक्ष्य के अभाव मे उपरोक्त तथ्य उस माण्डलिक से उपेन्द्र के तादात्म्य के पक्ष मे है। जिसको गोविन्द तृतीय ने मालव प्रदेश पर शासन करने के लिए नियुक्त किया था। सम्भवत वह राष्ट्रकूट सेना के उत्तरी प्रयाण मे साथ था और उसकी मूल्यवान सामरिक सेवा के बदले मे उसको यह पद सौपा गया था।[37]

उदयपुर प्रशस्ति का कथन है कि "परमार उपेन्द्र ने अपने शौर्य से राजपद प्राप्त किया था।[38]

उपेन्द्र के बाद परमार राजाओ की एक वशावली चली जिसने लगभग 500 वर्षो तक शासन किया उस समय तक जब तक कि यह राजवश मुसलमानो द्वारा अतिम रूप से पराजित नही कर दिया गया।

मालवा के परमारो के अलावा इनके चार और शाखा वश थे आबू शाखा, बागड शाखा, जालौर शाखा, और भिनमाल शाखा। जिनका आधिपत्य क्रमश आबू पर्वत बासवाडा राजपूताना के जोधपुर राज्य और भिनमाल के क्षेत्रो पर था।

चामुण्डराज के अर्थुनाशिलालेख तिथ्याकित 1080 ई0 तथा माण्डलिक के शिनेहरा शिलालेख तिथ्याकित 1059 ई0[39] से बागड या वासवारा के परमारवश के इतिहास का पता चलता है। इस वश की उत्पत्ति

वीर परमार से रेखाकित की जाती है जो आबू पर्वत के अग्निकुड से उत्पन्न हुआ था। इस वीर के वश मे वैरिसिह पैदा हुआ जिसका छोटा भाई डम्बर सिह था। उपरोक्त अतिम राजकुमार के वश मे कक्कदेव नाम का एक राजा था जिसके बाद युवराजो की एक लम्बी वशावली चली। डा0 बार्नेट और डी0सी0 गागुली दोनो ही इस बात से सहमत है कि वैरि सिह का उपेन्द्र कृष्णराज के पुत्र और उत्तराधिकारी वैरि सिह प्रथम से तादात्म्य है । अत इससे यह प्रमाणित होता है कि यह परमारवश धारा के मुख्य वश का एक सपिण्ड शाखा था जो नवी शताब्दी ईसवी के मध्य बासवारा से बसा।

पूर्णपाल का बसतगढ अभिलेख परमार वश का प्राचीनतम् ज्ञात अभिलेख है जिससे प्रमाणित होता है कि आबू पर्वत पर एक परमार वश ने बहुत समय तक राज्य किया तो राजपूताना मे आधुनिक सिरोही के पास है। बसतगढ अभिलेख का समर्थन अनेको अभिलेखो ने किया है। उक्त अभिलेख का कथन है कि "वशिष्ठ के क्रोध से एक बीर पैदा हुआ जिससे परमार वश की उत्पत्ति हुई।"[40]

महान वीर परमार की अग्नि उत्पत्ति की कथा वर्णन करते हुए आबू पर्वत[41] से प्राप्त एक शिलालेख बताता है कि 'बीर परमार के वशजो मे एक कन्हाड था जिसके परिवार मे आबू पर्वत के चन्द्रावती नगरी का राजा घघु उत्पन्न हुआ। घघु का तादात्म्य बसतगढ शिलालेख के पूर्णपाल के पिता से किया जा सकता है। डी0सी0 गागुली का यह मत है कि कन्हाड और कृष्णराज नाम पर्यायवाची है।[42] उन्होने इसका आधार यह माना है कि आबू पर्वत के वि0स0 1287 के दो तिथ्याकित शिलालेखो मे एक स्थान पर सोमसिह के पुत्र और उत्तराधिकारी का नाम एक स्थान पर कन्हाड दिया हुआ है और दूसरे स्थान पर कृष्णराज।

समस्त आधुनिक विद्वानो ने[43] वाक्पति मुज के उज्जैन दानपट्ट वर्णित इस वश के प्राचीनतम् शासक कृष्णराज का तादात्म्य उपेन्द्र

से किया है जो मालव मे परमार वश का सस्थापक था।

जालौर से प्राप्त एक शिलालेख तिथ्याकित वि0स0 1174 सन् 1117 ई0 से जालौर शाखा के परमारो की जानकारी प्राप्त होती है। इस अभिलेख की वशावली वाक्पतिराज से आरभ की गई है जिसका पुत्र चन्दन था। चन्दन प्रत्यक्ष दशवी शती ईसवी के अतिम चरण मे जीवित था जो वाक्पति मुज के शासनकाल (973–996 ई0 की भी अवधि थी।[44] डा0 गागुली एव डा0 भण्डारकर के अनुसार जालौर शिलालेख का वाक्पति स्पष्ट रूप से धारा वाक्पति मुज था[45] ।

भिनमाल शाखा के बारे मे मुख्य जानकारी केराडु के एक मदिर की दीवाल के एक उत्कीर्ण लेख से प्राप्त होती है। (यह अभिलेख अप्रकाशित है) जिसकी तिथि वि0 स0 1218 सन् 1161 ई0 है। इसमे सिधुराज का वर्णन इस वश के प्राचीनतम् पूर्वज के रूप मे किया गया है जिसका पुत्र और उत्तराधिकारी दसल था। इस सिन्धुराज का तदात्म्य सभवत वाक्पति मुज के कनिष्ठ भ्राता और उत्तराधिकारी से किया जा सकता है। यह प्रमाणित है कि वाक्पति मुज अपनी सामरिक अभियान यात्रा मे एकबार मारवाड प्रदेश तक गया था। सभव है उसी अवधि मे धारा के चक्रवर्ती वश के उपराजाओ के रूप मे चन्दन और दूसल जालौर और भीनमाल मे यथाक्रम नियुक्त किये गये हो।

उपरोक्त विवेचन एव साक्ष्यो के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि परमारो की उत्पत्ति आबूपर्वत पर अग्निकुण्ड से हुई। परमार अपनी उत्पत्ति का स्रोत ऋषि वशिष्ठ से मानते हुए स्वय को वशिष्ठ गोत्री क्षत्रिय स्वीकार करते है। वशिष्ठ ऋषि से परमारो की उत्पत्ति का तदात्म्य स्वीकार करते हुए पुराणो मे परमारो को व्रह्मक्षत्रिय कहा गया है।

परमारो का राजचिन्ह गरूड था।[46] उत्सवो, विजयो एव अन्य महत्वपूर्ण अवसरो पर ये अपना राज चिन्ह युक्त ध्वज 'गरूड ध्वज' स्थापित

होने का प्रमाण देते है। अधिकाश परमार शासक शैव थे किंतु शाक्र वैष्णव, सौर एव अन्य हिन्दू सम्प्रदायो की उपासना का उल्लेख अभिलेखो मे है जो उनके धर्म सहिष्णु होने का प्रमाण देते है। परमारो का राजचिन्ह सदैव गरूड ही था। जिसका उल्लेख इतिहासकारो द्वारा किया गया है।

परमारो के वशिष्ठ गोत्रीय क्षत्रिय होने का प्रमाण मनुस्मृति, यज्ञवल्वयस्मृति, उदयपुर प्रशास्ति मत्स्यपुराण एव पिगलाचार्य के छन्दशास्त्र एव अन्य समकालीन ग्रथो से मिलता है।

मालवा के अलावा परमारो के चारो प्रमुख वशो बागड शाखा, भिनमाल, आबू और जालौर के परमारो से सम्बधित साक्ष्यो से जो जानकारिया मिलती है उनके अनुसार वाक्पतिराज मुज ने जालौर भिनमाल और आबू पर्वत पर तीन नये अवस्थान बनाकर अपने परिवार के राजकुमारो को वहा के शासक नियुक्त किया। इन सब अवर परिवारो मे से आबू के परमारो की विशिष्ट राजनीतिक सफलताओ के कारण उनका वर्णन प्रथमत किया जाना उचित है।

जिस समय आबू शाखा का प्रभुत्व था वह अर्बुद मण्डल के नाम से विश्यात था।[48] इसका कम से कम विस्तार[49] पूरब मे दिलवारा, दक्षिण मे पालनपुर और उत्तर मे गाद्वा जनपद तक था।[50] पश्चिम की ओर इसकी सीमा पर भिनमाल के परमारो के प्रदेश थे। राजधानी चन्द्रावती थी।[51] जो राजपूताना के सिरोही राज्य के दक्षिण पूरब के समीप बनस नदी के तट पर स्थित था। इस समय यह नगर पूर्ण ध्वसावस्था मे है।'उत्पल का पुत्र अरण्यराज अपने वश का सर्वप्रथम राजकुमार था जो इस प्रदेश का अधीश्वर बना। उसके बाद महान कीर्तिवान अद्‌भुत कृष्णराज सिहासनासीन हुआ। हेमचन्द्र कृत द्वयाश्रयमहाकाव्य[52] वर्णन करता है कि अर्बुद के राजा ने सौराष्ट्र के माण्डलिक ग्रहरिपु के विरूद्ध युद्ध मे गुजरात के चौलुक्य मूलराज

(941–997 ई0) को सहायता दी। हो सकता है कि उपरोक्त आबू का राजकुमार उसका पिता अरण्यराज हो। (धारा के परमारो की वशावली प्रस्तुत अध्याय के अत मे सलग्न है) इस वश का सर्वाधिक प्रतापी शासक धारावर्ष था। बहुत वर्षों तक वह आबू के सिहासन पर आरूढ रहा। उसके शासनकाल के अनेक अभिलेख पाये गये है।

सिरोही राज्य के कयद्र नामक स्थान के मन्दिर के समीप छाजन मे एक शिलालेख पाया गया है जिसमे लिखा है कि सवत् 1220 वि0 ज्येष्ठ पूर्णिमा शनिश्चर को मई 1133 ई0 को महाराजाधिराज महामण्डेश्वरा धारावर्ष देव ने फुलह गाव को करो की छूट दी जिसका स्वामी मन्दिर का भट्टारक देवेश्वर था। मई 1133 ई0 से जनवरी 1217 ई0 तक आबू शाखा के धारावर्ष के सात अभिलेख पाये गये है। जो इस महान योद्धा की उपलब्धियो का उल्लेख करते है। धारा वर्ष स्वय शैव था और उसने अनेक शैव मठो एव मन्दिरो का निर्माण कराया।

धारावर्ष महान योद्धा था और वाणविद्या मे अपनी निपुणता के लिए विख्यात था एक अवसर पर उसने सफलता पूर्वक एक ही वाण से एकमात्र प्रहार से तीन भैसो को भेद दिया। इस निष्यत्ति का उत्सव मनाने के निमित आबू पर्वत पर अचलेश्वर मन्दिर के बाहर मन्दाकिनी सागर के किनारे उसकी एकमूर्ति बनाई गई जिसमे उसके हाथ मे एक धनुष था और उसके सामने तीन भैसे पडे थे जिनके कि पेट फटे थे। यह-मूर्ति अब भी पूर्व स्थिति मे है। राजा के शासन का मत्री कोविदास था।

आबू पर्वत राजपूताना मालवा रेल पथ पर आबू स्टेशन से 17मील उत्तर पश्चिम मे 24^0 36 उत्तर और 72^0 43 पूर्व है। समुद्रतल से यह 4000 फिट ऊँचा है और इसकी चोटी पर लगभग 12 मील लम्बा और लगभग 3 मील चौडा एक पठार है और यह अपने आकर्षक दृष्य के कारण अत्यत मनमोहक है। बनस और मन्दाकिनी नदिया इसमे से होकर बहती है

और 1/2 मील लम्बी ओर 1/4 मील चौडी नखी तालाब मे इस स्थान का सौन्दर्य और बढ गया है। यशोधवल और धारावर्ष का समकालीन हेमचन्द्र लिखता है कि अर्बुद देश मे जिस समय परमारो का शासन था 1800 ग्राम थे किन्तु अब तक ज्ञात तत्कालीन अभिलेखो से केवल 40 ग्रामो आर 3 नगरो चन्द्रावती, प्रहलादनुपुर और पटपुर का उल्लेख[53] मिलता है। इन ग्रामो के निवासी या तो हिन्दू धर्म को मानते थे या जैन धर्म को। आबू शाखा के परमार राजकुमारो की राजधानी चन्द्रावती एक बहुत महत्वपूर्ण नगर था पूर्व मे पहाडियो से दक्षिण मे शिववनन नदी से और उत्तर पश्चिम मे बनस नदी से घिरा है। प्राचीन काल मे इस नगर मे असख्यो बडे–बडे भव्य मन्दिर थे जो इस समय पूर्ण ध्वसावस्था मे है। यहा पूर्ण सुरक्षित अवस्थाये है। यह पूरा का पूरा श्वेत सगमरमर का बना वैदिक धर्मी वास्तुकला का सर्वोष्कृष्ट नमूना है। यह प्रचुर मात्रा मे अलकृत और इसके रूपाक ललित है। इनमे 138 मूर्तिया है जिनमे से सबसे छोटी गवाक्षो मे रखी है।

आबू पर्वत के बारे मे सोमेश्वर ने लिखा है, "यहा यह अर्बुद है जो पर्वत श्रेणी की एक चोटी है ओर गौरी पति के श्वसुर अर्थात् पर्वत का पुत्र है। मेघो से गथित यह अपने शीर्ष पर मन्दाकिनी को लिये हुए है और इस तरह से चद्रेश्वर अपेन भवनापति का वेश धारण किये हुए है (जिस तरह से शिव अपने जूट शीर्ष पर गगा को लिये हुए है)[54]

हेम चन्द्र का कथन है कि आबू पर्वत सस्कृत विधा का एक केन्द्र था जहा पर भारत के विभिन्न भागो से विद्वान अध्ययननार्थ आते थे। युवराज प्रहलादन एक महान कवि था और उसने 'यार्थपराक्रम' नामक एक नाटक की रचना की।

बागड शाखा वर्तमान बासवाडा और डूगरपुर राज्य राजपूताना के दक्षिणी सीमा पर स्थिति है। प्राचीन काल मे इन दोनो प्रदेशो को एक ही नाम था बागड।[55] वर्तमान अर्थुज्ञा ग्राम मे जो बासवाडा से 28 मील दूर पश्चिम मे है

एक प्राचीन नगर के भग्नावशेष तथा लगभग एक दर्जन हिन्दू और जैन मन्दिरो के अवशेष विस्तृत मिलते है। स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार इसका प्राचीन नाम अमरावती था और प्रत्यक्षत यही बागड शाखा परमारो की राजधानी थी। बागड के परमार राजकुमार उपेन्द्र कष्णराज के छोटे पुत्र डम्बर सिह के बशज थे।[56]

इस वश का प्राचीनतम् ज्ञात शासक धनिक[57] है जिसका समय दशवी सती ई0 के मध्य मे है। उसने महाकाल के मन्दिर के समीप उज्जैन मे धनेश्वर का मदिर बनवाया[58] था। उसका उत्तराधिकारी चच्च या कवक का कक मालवा थे सीयक हर्ष का समकालीन तथा एक वीर योद्धा था। मान्यखेट के राष्ट्रकूट खोट्टिग के विरूद्ध किये गये अभियान मे वह सीयक की सेनाओ के साथ गया था। चच्च के बाद चडप और चडप के बाद सत्यराज सिहसनारूढ हुआ। सत्यराज भोज का समकालीन था ओर परमार भोज की ओरे से गजरात के चालुक्यो के विरूद्ध लडा था।[59] गुर्जरो पर उसकी विजय का वर्णन पन्हेर अभिलेख मे है। उसने राजश्री नामक चाहमान राज कुमारी से विवाह किया जिससे लिम्बराज और मण्न्न या मण्डलीक नामक दो पुत्र हुए जो क्रमश उसके बाद सिहासन पर बैठे। मण्डलीय मालवा के राजा जय सिह 1059 ई0 का सामन्त था। वह एक महान योद्धा था। मण्डलीक के बाद उसका पुत्र चामुण्डराज सिहासन पर बैठा। उसके चार अभिलेखो का पता चलता है। विजय राज इस शाखा का अतिम ज्ञात शासन था जो (110–1175 ई0) तक था।[60]

जालौर शाखा – वाक्यतिराज से इस वश शाखा का आरम्भ होता है जिनका पुत्र चन्दन इस शाखा का प्रथम युवराज है। उसके बाद देवराज, अपराजित, विज्जल, धारावर्ष और बीसल हुए। वीसल के शासन काल का एक अभिलेख जालौर मे "तोपखाना" नामक भवन मे पाया गया है। बीएल की राज्ञी मल्लर देवी सिधुराजेश्वर के मन्दिर मे स्वण्र्र कलश की

स्थापना के अवसर पर स0 1174 विक्रमी सन् 1117 ई0 मे एक अभिलेख उत्कीर्ण कराया गया था। वीसल के उत्तराधिकारियो के बारे मे कुछ ज्ञात नही है।

भिन्नमाल शाखा – परमावश की भिन्नमाल शखा ने इस काल के इतिहास मे प्रचुर योगदान दिया। इस वश के राजाओ ने मरूमण्डल की उपाधि धारण की पश्चिम मे बालमेर (जोधपुर राज्य) तक उनका राज्य विस्तार था और उनकी राजधानी श्रीमाल थी जिसका वर्तमान नाम भिन्नमाल है। भिन्नमाल जोधपुर राज्य मे जोधपुर से एक सौ मील दक्षिण–पश्चिम मे है।

किरडु अभिलेख से इस वश शाखा के परमार शासको के बारे मे पता चलता है। सिधुराज के पुत्र दूसल ने दशवी शती के उत्तरार्द्ध मे अपने चाचा वाक्पतिराज से मरूमण्डल का राजय प्राप्त किया था। इस नृप का एक बार उल्लेख आने के बाद फिरडृ अभिलेख की कुछ पक्तिया खण्डित और अव्यक्त है। उसके नाम के बाद युवराज देवराज का नाम आता है। देवराज के शासन का एक अभिलेख मिला है।[61] इस पर स0 1059–1002 ई0 अकित है। यह उस समय प्रकाश मे लाया गया था जिस समय राजा श्रीमाल (भिन्नमाल मे रह रहे थे।

देवराज का नाम आने के बाद किरडू अभिलेख की कुछ और पक्तिया खण्डित है। सभवत इनमे धन्धुक का नाम रहा होगा। इसके बाद कृष्णराज नाम आया है। इसके शासन काल के दो अभिलेख मिल है, प्रथम अभिलेख भिन्नमाल नगर के एक विश्रामालय के स्तम्भ से प्राप्त होता है। यह अभिलेख परमार देवराज के पौत्र, धन्धुक के पुत्र मध्य राजाधिराज श्री कृष्णराज के शासन काल मे स0 1117 ई0 सन् 1060 मे प्रकट किया गया जब वह श्रीमाल मे शासन कर रहे थे। दूसरा अभिलेख तिथ्याकित स0 1123 सन् 1066 ई0 भिन्नमाल जगस्वामी के मन्दिर के एक स्तम्भ पर पाया गया

इसमे भी विख्यात किया गया है कि कृष्ण राज श्रीमाल मे राज कर रहे ओर उनकी उपाधि महाराजाधिराज है। भगवान चण्डीश महादेव की सेवा मे सलग्न धर्माधिकारियो के अनेक सेवको के नाम की इसमे पजीकृत है। कृष्णराज के बाद इस वश शाखा की शक्ति क्षीण होने लगी। इस वश के अतिम शासक जयसिह 1165—1183 ई0 थी।

परमारों की राजनीतिक उत्कर्ष

उपेन्द्रराज (लगभग 790–817 ई0) – परमार राजवश मे सर्वप्रथम शासक का नाम उपेन्द्रराज ज्ञात होता है। उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता हे कि उसने अपने निजी शौर्य से राजत्व का उच्च पद प्राप्त किया। उसने तत्कालीन क्षुब्ध राजनीतिक परिस्थितियो का लाभ उठाते हुए अपनी स्वतत्र सत्ता स्थापित की। उपेन्द्र ने अनेक यज्ञो का भी सम्पादन किया।

नवसहसाक चरित – (11वा, 76–78) उपेन्द्र को प्रजाओ पर लगने वाले करो मे कमी करने का श्रेय देता है। कदाचित् अपनी सत्ता के दृढीकरण के उद्देश्य से प्रजारजन के लिए उसने यह कदम उठाया । उसके राजदरबार मे सीता नाम कवयित्री रहती थी।

प्रथम वैरिहसह – (लगभग 818–842 ई0) उपेन्द्र की रानी लक्ष्मी देवी से वैरि सिह ओर डम्बरसिह नाम दो पुत्र हुए। वैरि सिह मालवा प्रथम जैसे उततराधिकारी हुआ। नागभट्ट द्वितीय और भोज प्रथम जैसे शक्तिशाली सम्राटो का समकालिक होते हुए उसे महत्वपूर्ण विजये प्राप्त करने का अवसर नही प्राप्त हुआ।

प्रथम सीयक और एक अन्य शासक – (लगभग 844–893 ई0) वैरि सिह के पुत्र और उत्तराधिकारी सीयक प्रथम के बारे मे कोई विशेष जानकारी नही है। या तो वह अत्यल्पशासा था अथवा वश् की प्रतिष्ठा को किसी प्रकार अघात पहुँचाने वाला था जिसका उल्लेख परमार कवि और प्रशस्तिकार नही करना चाहते थे।

प्रथम वाक्पति (894–920 ई0) – इसका नाम कृष्णराज और उपनाम वाक्पति हुआ/उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार शतमुख (इन्द्र) तुल्य वह अवन्ति की कुमारियो के नेत्रोत्पलो के लिए सूर्य था। अवन्ति पर उसका दृढ अधिकार था।

द्वितीय वैरि सिह – (लगभग 921–945 ई0) – वाक्पति का पुत्र वैरि सिह बज्रट स्वामी प्रथम ओर महेन्द्राल द्वितीय थे। उनकी कठिनाइयो से लाभ उठाते हुए उसने धारा की विजय की। थोडे समय बाद महीपाल प्रथम ने वैरि सिह को धारा से हटाकर पुन अपना अधिकार स्थापति किया। सोढदेव के कहल अभिलेख से ज्ञात होता है कि कलचुरि सामन्त गुणाम्बोधिदेव के पौत्र भायान ने धारा की विजय कर याश प्राप्त किया। गुणाम्बोधिदेव भोज प्रथम का सामन्त था। अत यह निश्चित है कि भामान ने धारा की विजय भोज के पौत्र महीपाल की ओर से ही की । यह मान्य है कि अवन्ति मे प्रतापगढ ओर मन्दसौर के आस–पास के प्रदेश प्रथम महीपाल द्वारा ही विजित किये गये होगे। पर यह निश्चित रूप से यह ज्ञात नही है कि माण्डू और धारा के आसपास के क्षेत्रो से निकाले जोने के बाद परमारो ने कहॉ जाकर अपनी रक्षा की।

हर्ष, सीयक द्वितीय – (लगभग 945–972 ई0) – महीपाल के कमजोर उत्तराधिकारी अपनी महान् विरासत की रक्षा नही कर सके। तत्कालीन अस्थिर राजनैतिक परिस्थितियो मे वैरिसिह के पुत्र और उत्तराधिकरी हर्षदेव, उपनाम सीयक को परमार सत्ता की नीव मजबूत करने का सुनहारा अवसर मिल गया। परमार राजवश के प्रारम्भिक शासको मे उसकी राजनीतिक उपलब्धियॉ सबसे अधिक और महत्पूर्ण थी। ये उपलब्धियॉ उसकी सैनिक प्रतिज्ञा और राजनीतिक सूझ–बूझ का परिणाम थी। सीयक अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों (949 ई0) मे महाहराजाधिराज पति और महामण्डलिक चूडामणि[62] की अर्द्धस्वतत्रता सूचक उपाधिया ही धारण करता था, किन्तु शीघ्र ही अनेक युद्धो के माध्यम से पूर्ण स्वतत्र होकर परमार सत्ता के चतुर्दिक विकास मे वह अग्रसर हो गया। उसका हार्सोल अभिलेख[63] योगराज नामक किसी शत्रु पर उसी विजय का उल्लेख करता है। अभियान की समाप्ति के बाद उसने यही नदी के तीर पर अपना खेमा डाला और खेटकमण्डल के अधिपति के कहने से मोहडवासक विषय के कुम्भारोहटक ओर सीहका नामक गॉवो का दान किया।

नवसाहसाकिचरित (11वा, 90) से ज्ञात होता है कि सीयक ने हूण राजकुमारे को मारकर उनके रनिवासो को वैधव्य ग्रहो मे परिवर्तित कर डाला। इस सदर्भ का हूण क्षेत्र सम्भवत परमार क्षेत्रो के दक्षिण पूर्व मे इन्दौर और महू के आस–पास का प्रदेश था जिसे जीतकर सीयक ने अपने राज्य मे मिला लिया।[64]

सीयक को सर्वप्रमुख सैनिक सफलता उसके शासकीय जीवन के अतिम भागो मे राष्ट्रकूट सत्ता के विरूद्ध प्राप्त हुई। सीयक का सबसे जबरदस्त प्रहार कृष्ण तृतीय के छोटे और उत्तराधिकारी खोट्िग (967–978 ई0) पर हुआ। उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार सीयक ने भयकरता मे गरूण की तुलना मे करते हुए राजा खोट्िग की लक्ष्मी यृद्ध मे छीन ली।[65] अर्युना अभिलेख के अनुसार राष्ट्रकूट सेनाओ के विरूद्ध नर्मदातीर पर लडे गये इस युद्ध मे बागड की परमार शाखा के ककदेव (कर्कदेव) ने लडते हुए वीरगति पायी[66] एक अन्य अभिलेख[67] से ज्ञात होता है कि परमार राष्ट्रकूट सेनाओ की इस मुठभेड का स्थान नर्मदा नदी के किनारे खालिघट्ट नामक स्थान था।

सीयक द्वितीय के साम्राज्य की सीमा उत्तर मे बासवाडा क्षेत्र, दक्षिण मे दर्मदा[68] पश्चिम मे महीनदी के किनारे खेटकमण्डल (खेडा और अहमदाबाद) तथा पूर्व मे भिलासा तक विस्तृत थी।

द्वितीय वाक्पति, मुणराज – (लगभग – 973–996 ई0) – सीयक द्वितीय का पुत्र वाक्पति द्वितीय लगभग 973 ई0 मे परमार राजगइद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।[69] वाक्पति मजराज और उत्पलराज के नामो से भी सस्कृत साहित्य मे ज्ञात है।[70]

वाक्पतिराजमुज परमार साम्राज्य का सस्थापक ही नही अपितु प्रशासकीय एव सास्कृतिक क्षेत्रो मे मालवा की बहुमुखी उन्नति का क्रियाशील प्रारम्भ कर्ता था। वास्तव में सास्कृतिक क्षेत्रो मे मालवा की बहुमुखी उन्नति

का क्रियाशील प्रारम्भ कर्ता था। वास्तव मे सास्कृतिक क्षेत्रो मे उसकी कीर्ति उसके भ्रातृज भोज के यश और गौरव से इतनी आच्छादित हो गयी कि उसका ठीक–ठीक मूल्याकन दब सा जाता है। व्यापक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भोज की बहुमुखी सफलताओ और बौद्धिक उपब्धियो की आधारशिला भुज ने ही रखी थी। राष्ट्रकूट उपाधियॉ धारण की।[71]

वाक्पति ने सम्भवत सबसे पहला सैनिक अभियान मेवाड के गुहिल राज्य के विरूद्ध किया। हस्तिकुण्डी (हपुण्डी) के राष्ट्रकूट शासक धवल के बीजापुर अभिलेख (वि0स0 1053 अर्थात 997 ई0) मे कहा गया है कि वाक्पति ने मेदपार के गर्वस्वरूप आघाट (नगर) को नठकर भागते हुए गुहिल राजा (शक्तिकुमार) को धवल के यहॉ शरण लेने हेतु विवश किया।[72] इस युद्ध मे गुहिल राज्य की ओर से कोई गुर्जर शासक (गुर्ज्जरेश) भी लडा था। किन्तु उसकी भी शक्तिकुमार जैसी ही दशा हुई थी। उसने भी हरिण की तरह भयभीत होकर अपनी सेनाए धवल के यहा शरण के लिए भेजी।[73] पद्यगुप्त इस गुर्जर शासक की विपन्नता की विशेष चर्चा करता हुआ अपने काव्यात्मक ढग मे उसके मारवाड की धूल फाकने तथा उसकी रानी की भयात्तक का उल्लेख करता है।[74]

गुजरात के अभिलेखो और जैन साहित्य मे जहॉ यह चर्चा है कि चाहमान आक्रमण की विपत्ति के समय वह कन्या दुर्ग मे छिपने को विवश हुआ, वहॉ वाक्पति से उसकी पराजय अथवा तजज्न्य विपत्तियो का कोई उल्लेख नही है। अत बीजापुर अभिलेख के गुर्जरेश की पहचान कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राज्य के किसी प्रतिनिधि से की जानी चाहिए। असम्भव नही है कि वह विजयपाल रहा हो।

मुजराज का चाहमानो से सघर्ष के अनेक साक्ष्य प्राप्त होत है। जिनमे मुजराज की चाहमानो पर विजय और पुन चाहयानो की मुंजराज के

विरूद्ध सफलता के उल्लेख है। नवसाहसाकचरित[75] के अनुसार वाक्पति के यशप्रताप से मारवाडी स्त्रियो के ह्रदयस्थली हारो के मोती नाचने लगते थे। कल्याणी के चालुक्य राजा पचम विक्रमादित्य के कौथेम अभिलेख का कथन[76] है कि उत्पलराज के आगमन से मारवाड के लोग कॉपने लगे। किन्तु नाडोली चाहमानो के निजी अभिलेख परमारो पर अपनी विजय का दावा करते है। निष्कर्ष यह निकलता है कि भुजराज के नेतृत्व मे प्रारम्भ की वह कई दशको तक चलती रही।[77] इस सघर्ष के आबू के परमार मालवा के परमारो के साथ थे।

द्वितीय वाक्पति ने हूणो का भी दमन किया । परमार इतिहास मे द्वितीय सीयक से लेकर सिन्धुराज के समय तक बराबर उनके सघर्षो के उल्लेख मिलते है।[78] गाओन्टी अभिलेख मे यह उल्लेख है कि उसने हूणमण्डलान्तर्गत स्थित वणिका ग्राम ब्राह्मणो के लिए दान किया।[79] हूणो की भजराज के हाथो पराजय और विनाशक का प्रमाणीकरण चालुक्यराज पचम विक्रमादित्य के कौथेम अभिलेख (इए0,जि0 16, पृ0 23) से भी होता है।

दक्षिण पूर्व मे वाक्पति मुन्जराज ने त्रिपुरी के कलचुरी राजा द्वितीय युवराज की युद्ध मे करारी मात देकर उसकी राजधानी पर थोडे दिना के लिए अधिकार कर लिया।[80] किन्तु कलचुरि राजधानी पर वाक्पति का अधिकार थोडे ही दिनो तक रहा और वाक्पति ने कलचुरियो से सधिकर उनका राज्य लौटा दिया[81] उदयपुर प्रशस्ति इस बात का दावा करती है कि 'लाट' कर्णट, चोल और केरल के राजे वाक्पति के पदकमल अपने शिरोरत्नो से सुशोभित करते थे।[82]

दक्षिणापथ (कर्णाट) के शासक द्वितीय तैलप के विरूद्ध युद्ध मे वाक्पति को असमान देखना पडा। सफल सैनिक विजेता के रूप मे प्राप्त उसकी यश कीर्ति दक्षिण मे लुप्त हो गया और वहॉ वह मारा गया। तैलप की मुज से छह बार मुथभेड हो चुकी थी और हर बार मुज ने उसे हराया

था। किन्तु छठी बार मुज का दु खद अत हुआ। आगे चलकर मुज का दुखद अत चिरस्थायी चालुक्य परमार शत्रुता का एक प्रमुख कारण बना।

सिन्धुराज – लगभग (996–1010 ई0) वाक्पति मजुराज के सम्भवत कोई पुत्र न था इसलिए उसने अपने छोटे भाई सिन्धुराज को अपना युवराज नियुक्त किया था जो उसकी मृत्यु के बाद राजा हुआ। वास्तव मे मुज और भोज जैसे दो महान् शासको के बीच मे पड जाने से उसका इतिवृत्त खुलकर सामने नही आ पाता।

दक्षिणी युद्ध के परिणामस्वरूप मुज की मृत्यु सारे परमार राजवश को कॉटे की भॉति चुभ रही थी। अत सिन्धुराज का पहला सैनिक अभियान तज्जन्य अपमान ओर भूमिहानि को दूर करने के लिए हुआ। पद्मगुप्त[83] कहता है कि उसने कुन्तलेश्वर द्वारा अधिकृत अपना राज्य (स्वराज्य) अपनी तलवार के बल से प्राप्त किया। ''कुन्तलेश्वर'' से कल्याणी के चालुक्य शासक सत्याश्रय से तात्पर्य है। जो तैलप द्वितीय का पुत्र और उत्तराधिकारी (997–1008) ई0 था। अपने पिता की ओर से मुज के विरूद्ध युद्ध मे वह भाग ले चुका था।[84] सत्याश्रय का अपने राज्य के दक्षिण मे चोल राजा राजराज (985–1014) से युद्ध मे फॅस जाना[85] सिन्धुराज की सफलता के लिए अच्छा अवसर साबित हुआ।

नवसहसाकचरित (11वा, 18) कोशल पर उसकी विजय का उल्लेख करता है। उससे पराजित राजा की पहचान कलचुरिवशी कलिगराज से की गयी है।[86] अपने राज्य के पश्चिम और दक्षिण पश्चिम मे सिन्धुराज ने लाट, अपरात और पुरल की विजये की । नवसहसाकचारित (10वा, 17) उसकी लाट विजय का उल्लेख करता है। लाट से समुद्र के किनारे होता हुआ दक्षिण–पश्चिम मे और आगे बढकर कोकण (अपरात) के शिलाहार राजा को भी सिन्धुराज ने पराजित किया।[87]

सिन्धुराज का दक्षिणी पश्चिमी अभियान एक दिग्विजय जैसी

उपलब्धि प्रतीत होती है। पद्मगुप्त[88] उस दिशा मे जिस विजित अतिम राज्य का उल्लेख करता है वह मुरल था। सिन्धुराज की मुरलविजय धर्मविजय मात्र प्रतीत होती है।

उत्तर मे सिन्धुराज की सर्वप्रमुख उपलब्धि हूणो का दमन प्रतीत होती है। इसका उल्लेख नवसहसाकचरित (10वा, 14) के अतिरिक्त उदयपुर प्रशस्ति (एइ0, जि01,पृ0 235) मे भी मिलता है।[89]

सिन्धुराज की सैनिक उपलब्धिया प्रभूत थी। किन्तु गुजरात के चालुक्य शासक चामुण्डराज (997–1009 ई0) से उसका युद्ध हुआ और उसमे उसकी पराजय हुई।[90] राजनैतिक और सैनिक सफलताओ मे सिन्धुराज मुज ओर भोज के बीच की योग्य कडी था।

आबू पर्वत से प्राप्त शिलालेख भी परमारो की आबू पर्वत से अग्निकुण्ड (अग्निकुल) उत्पत्ति का साक्ष्य देते है। पूर्णपाल के बसन्तगढ अभिलेख के अनुसार "वशिष्ठ के क्रोध से एक वीर उत्पन्न हुआ जिससे परमार वश की उत्पत्ति हुए। बसन्तगढ अभिलेख का अनेको अभिलेखो ने समर्थन किया है। भिनमाल, जालौर एव बागड के अभिलेखीय एव अन्य स्रोतो से भी इसकी पुष्टि होती है।

आबू शाखा के परमार शासको मे धारावर्ष सबसे प्रमुख एव प्रतापी शासक थे। इन्होने 54 वर्ष से अधिक समय तक शासन एव परमारो की कीर्ति विस्तार किया एव विद्वानो को सरक्षण दिया। आबू शाखा जालौर, बागड एव भिनमाल शाखा की राजनैतिक उपलब्धियॉ उनकी उत्पत्ति के साथ ही इसी परिच्छेद मे दी गई है।

महान भोज – (लगभग 1010–1055 ई0) मोडासा ताम्रफलक से ज्ञात होता है कि वि0स0 1067 अर्थात 1011 ई0 के कुछ पूर्व सिन्धुराज की मृत्यु और उसके पुत्र भोज का राज्यारोहण हो चुका था।

भोज के इतिहास की जानकारी के प्रचुर साधन है। 1011 ई0 से 1046 ई0 तक के उसक काम से कम आठ अभिलेख प्राप्त होते है। जो उसके दानो के सिलसिले मे उसकी अन्य राजनीतिक उपलब्धियो सहित उसके राज्यविस्तार का परिचय देते है। विद्या और सस्कृति के क्षेत्र मे वह अपने निजी कृतिव्यो और कृतियो एव लेखको को दिये जाने वाले राज्याश्रय से इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसकी तुलना का भारतीय इतिहास मे ही क्या सारे विश्व के इतिहास मे शायद ही कोई शासक हुआ।

उदयपुर प्रशस्ति के उन्नीसवे श्लोक मे भोज की विजयो का वर्णन हुआ है। कल्याणी के चालुक्य राज्य से भोज का सघर्ष उसके सैनिक जीवन की सबसे प्रथम घटना प्रतीत होती है। उसने कर्णाट प्रदेशो से होते हुए कोकण की विजय की थी। भोज के सामन्त यशोवर्मा का कल्वन अभिलेख भी उसकी कर्णाट, लाट, ओर कोकण, विजय का उल्लेख करता है।[91] भोज ने बारज के पौत्र कीर्तिराज पर आक्रमण कर उसे आत्मसमर्पण के लिए विवश कर दिया।[92] उदयपुर प्रशस्ति और भोज के सामन्त यशोवर्मन के कल्वन अभिलेख से भी लाट पर भोज की विजय प्रमाणित है।[93] यशोवर्मन के अभिलेख मे कहा गया है कि वह नासिक जिले मे 1500 गॉवो पर भोज की ओर से शासन करता था।

उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार भोज ने इन्द्ररथ को हराया। यह इन्द्ररथ सम्भवत वही है जिसकी चर्चा राजेन्द्र चोल (1012–1042 ई0) के तिरूवालगाडु और तिरूमले अभिलेख[94] से उसके विजित के रूप मे आई है।

उदयपुर प्रशस्ति भोज की विजयो मे तोग्गल और तुरूष्क की भी गिनती करती है। उदयपुर प्रशस्ति (एइ0, जि01 पृ0 235, श्लोक 19) और यशोवर्मा के कल्वन अभिलेख (एई0, जि0 19, पृ0 69–75) भोज की चेदीश्वर पर विजय का उल्लेख करते है।

विद्याधर चन्देल भोज जैसा ही महत्वाकाक्षी और शक्तिशाली

शासक था। जो मालवा के पूर्व मे बुन्देलखण्ड पर राज्य करता था। भोज ने विद्याधर से सीधी मुठभेड से सम्भवत बचने की कोशिश की। एक चन्देल अभिलेख[95] इस बात का दावा करता है। कि 'कलचुरि चन्द्र' और भोज ने विद्याधर की वैसी ही पूजा की जैसे कोई शिष्य अपने गुरू की करता है। विक्रम सिह के दूबकुण्ड अभिलेख[96] से ज्ञात होता है कि जिस अर्जुन ने विद्याधर चन्देल की ओर से कन्नौज राजपाल का वध किया था उसी के पुत्र अभिमन्यु की अश्वो और रथो के नियन्त्रण तथा युद्ध के शास्त्रो और धनुषबाण के प्रयोग की कुशलता भोज ने प्रशसित की।

भीम प्रथम भोज का दूसरा चालुक्य प्रतिद्वन्द्वी था। भीम भोज सघर्षो की चर्चा गुजराती जैन लेखको के बहुत ग्रन्थो मे नही मिलती। मेरूतुगकृत प्रबधचिन्तामणि[97] से उस पर विशद प्रकाश पडता है।

भोज अपनी सैनिक दक्षता, कूटनीतिक पहलो, और राजनीतिक प्रभावो द्वारा प्राय सभी दिशाओ मे विजये प्राप्त कर उसने परमार सत्ता को बेजोड बना दिया। अपनी उन्नति की चरमावस्था मे उत्तर भारत और दक्षिणापथ की शायद ही कोई सत्ता रही, जिसे कभी न कभी भोज ने मात न दी हो। उदयपुर प्रशस्ति उसका यशोगान करती हुई कहती है कि पृथु की तुलना करने वाले उस भोजन ने कैलाश पर्वत से लेकर मलयागिरी तक एक विशाल साम्राज्य का भोग किया तथा अपने धनुषबाणो से पृथ्वी के सभी राजाओ को उखाडते हुए उन्हे विभिन्न दिशाओ मे बिखेरकर पृथ्वी का परम प्रीतिदाता बना।

पाद टिप्पणी

1 नवसहसाक चरित (परिमलकृत) 11वा अध्याय पृ0 64–76।

2 धनपालकृत तिलक मजरी – प्रथम – पृ0 29।

3 अथर्ववेद पचम 18 वा0 रा0 प्रथम 54–56 वा अध्याय, आदिपर्व 175 वा अध्याय वन पर्व 82 वा अध्याय

राजबली पाण्डेय–भारती जिल्द–1–पृष्ठ 1–8

वि0 श0 पाठक–भारती जिल्द 6 (1962–63) पृष्ठ–33 और आगे

4 विशुद्धानन्द पाठक–उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृष्ठ 55

5 मनुस्मृति –10वा –43–44 पी0 वी0 काणे धर्मशास्त्र का इतिहास जिल्द 1 भाग 2 पृष्ठ–16

6 वा0 ग0 जिल्द नवी0 पृष्ठ 495

7 वही पृष्ठ 495

8 ब्लाकमन और जेर्टट कृत अग्रेजी अनुवाद जिल्द दूसरी पृष्ठ 214 और आगे।

9 राजपूताना का इतिहास–जिल्द 1 पृष्ठ 79 श्री धूमराज प्रथम वभूवभूवासवसतत्र नरेन्द्र वशे –एइ0 जिल्द 8 पृष्ठ 2101

10 विशुद्धानन्द पाठक –उत्तरभारत का राजनैतिक इतिहास पृष्ठ 553

11 डी0सी0 गागुली –परमार राजवश का इतिहास पृष्ठ 5

12 ए0 इ0 जिल्द 19वी पृष्ठ 237

13 अंग्रेजी अनुवाद जिल्द 2 पृष्ठ 214 और आगे।

14 प्रतिपाल भाटिया–दि परमाराज पृष्ठ 16

15. डी0 सी गागुली, परमार राजवश का इतिहास, पृ07

16 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास –555 पृष्ठ

17 विशुद्धानद पाठक उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृष्ठ–556

18 प्रतिपाल भाटिया–दि परमाराज पृष्ठ 16–17

19 AE VOL I , P 236 डी0 सी0 गागुली – परमार राजवश का इतिहास–पृष्ठ–3

20 A E VOL IX P 10

21 A E VOL IX, P 155

22 डी0सी0 गागुली, परमार राजवश का इतिहास, पृ0 15

23 A E VOL VIII, P 211

24 A E VOL VIII, P 52

25 A I Vol I P 225, VOL XXXVI, P 167

26 A I VOL IX, P 155, (श्लोक 55)

27 C V Vaıdya - History of Hındu Medıeval Indıa Vol II Page 117

28 Introductıon C I I Vol VII Part II, P-4

29 प्रतिपाल भाटिया दि परमाराज पृष्ठ–16

30 विशुद्धानद पाठक–उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृष्ठ 556

31 ब्रहमक्षय कुलीन जयति–पिगला चारिकृत हस्ताक्षर

32 ब्रहमक्षस्य ग्रो योनिर्वर्शो देवर्षिसत्कृत। क्षेमक प्राप्त राजान सस्था प्राप्स्थति है वे कलौ–मत्स्य 50वा अध्याय 88वा श्लोक

33 उदयपुर–प्रशस्ति मे–ए0 इ0 जि0 1 पृष्ठ–234

34 उदयपुर–प्रशस्ति मे–ए0 इ0 जि0 1 पृष्ठ–234

35 डी0 सी0 गागुली परमार राजवश का इतिहास पृष्ठ 14

36 A E VOL I, P 225

37. डी0सी0 गागुली परमार राजवश का इतिहास–पृष्ठ–14

38 A E VOL I, P 237, (श्लोक–7)

39. A S.I 1916-17, VOL I, P 19

40 A E VOL IX, P 10

41 वही पृ0 155, जर्रेट कृत अग्रेजी अनुवाद जिल्द दूसरी पृष्ठ 214 आगे।

42 डी0 सी0 गागुली—परमार राजवश का इतिहास—पृष्ठ 15
43 J A S B VOL XXXI, P 114, AE VOl P 225, IA, VOl 36, P 167
44 Progress Report of the Archaeologıcal Survey of Indıa (Western cırcle) 919 पृष्ठ 54
45 डी0 सी0 गागुली परमार राजवश का इतिहास—17
46 डी0 सी0 गागुली—परमार राजवश का इतिहास पृ0 64
47 E I Vol- XIX P 177 VOl XX P 236
48 A.E VOL XIX, P 13
49 पार्थ पराक्रम द्वितीय (गायकवाडकी की आरियटल सीरीज न0 4)
50 J B B R A S VOL XXIII, P 75
51 A I.VOL XI, P 155, श्लोक 5
52 द्वयाश्रयमहाकाव्य 5वा सर्ग श्लोक 37
53 डी0 सी0 गागुली—परमार राजवश का इतिहास पृष्ठ 228—230
54 डी0 सी0 गागुली परमार राजवश का इतिहास पृष्ठ 232
55 Emperial Gazelıer of Indıa vol XI Page 380
56 E I vol XIV Page 304
57 E.I Vol XXI Page 47.
58 E.I Vol XXI Page 47
59 वही चौदहवा पृष्ठ 296
60 E.I VOL XIV, P 305-307
61 श्री मालाव स्थित महाराजाधिराज श्री देवराज (अप्रकाशित)
62 A.E VOl. XIX, P 242
63 वही, पृ0 238—242, श्लोक 9 और 12
64 प्रतिपाल भाटिया, पूर्वनिर्दिष्ट पृ0 40
65. A.E. VOL I, P 235 श्लोक 12,
66 A E. VOL 14, P 295-96
67 A S R I , 1996-17, P 19-20

68 डा0 गागुली का विचार है कि दक्षिण मे सीयक की सीमाए गोदावरी नदी तक विस्तृत थी। किन्तु यह अनुमान मात्र है। खोट्टिग के विरूद्ध उसके युद्ध सम्बन्धी साक्ष्यो से स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट राजा नर्मदा तक आकर ही उससे भिडा। अत वही उसकी उत्त्तरी सीमा थी। उसकी हारने पर सीयक मे मान्यखेट लूआ, किन्तु नर्मदा के दक्षिण राष्ट्रकूटो का कोई प्रदेश उसके अधिकार मे नही आया प्रतीत होता। (पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 31–32)

69 द्वितीय वाक्यपति का प्रथम अभिलेख (ए0ई0जिल्द 6, पृ0 50) वि0स0 1031 अर्थात 974 ई0 मे उज्जैन से प्रकाशित हुआ था। सीयक 972 तक (खलिघट्ट के युद्ध की तिथि) शासनस्थ था। अत द्वितीय वाक्पति इन्ही दोनो तिथियो के बीच राज्यासीन हुआ होगा।

70 नागपुर प्रशस्ति, ए0इ0जिल्द 2, पृ0 184, श्लोक 23, प्रबन्ध चिन्तामणि (द्विवेदी), पृ0 7 । अर्जुनवर्माकृत अमरूशतक की रसिक सजीवनी नामक टीका के अनुसार वाक्पति का दूसरा नाम मुज था– 'अस्मत्पूर्वजस्य वाक्पतिराज अपरनाम्नो मुजदेवस्य।' डा0 गागुली (पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 34, नोट 7) द्वारा उद्धृत। नवसाहसाकचरित, प्रथम 6–7 और 11वॉ, 98–101, वल्लभदेवकृत सुभाषितावली, श्लोक 34

71 A E VOl VI, P. 51, VOl XIV, P 107, VOl VIII, IInd Apendix, P 2

72 भक्त्वाघाट घटाभि प्रकटमिव मद भेदपाटे भटाना -
जन्ये राजन्येजन्ये जनयति जनताज रण मुजराजे श्लोक 9, ए0 इ0, जि0 10, पृ0 20,

73 (श्री) माणे प्रणण्टे हरिण इव भिया गुर्णरेशे विनष्टे तत्सैन्यानास (श) रण्यो हरिर् इव शरणो य सुराणा व (ब) भूव वही, श्लोक 10

74. J A S O., बम्बई शाखा, जि0 16 पृ0 173–174

75 J A S.O , बम्बई शाखा, जि0 16 पृ0 174

76 A.E VOl XVI, P 23

77 दशरथ शर्मा, पूर्वनिर्दिष्ट पृ0 122–123 प्रतिपाल भाटिया पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 50

78 नवसाहसाक चरित, 10वा 160, और 11वा 90, ए0 इ0, जि0 23, पृ0 101–103, ए0 इ0 जि0 1, पृ0 235, श्लोक 16

79 A E VOL XXIII, P 101-103

80 युवराज विजित्यासौ हत्वातद्वाहिनीपतीन,
खडग्मूहर्वोकृत येन त्रिपूयॉ विलीगीषुणा, उदयपुर प्रशस्ति ए0ई0 जिल्द 1, पृ0 235

81 वा0 वि0 मीराशी, कार्पस, जि0 4, पृ0 87

82 कर्णाप्लाट केरल चोल शिरोरत्न रागिपद कमल यश्चप्र

83 नवसाहसाक चरित्र, प्रथम, 74

84 A E VOL XXXIII, P 131-133

85 नीलकान्त शास्त्री, दि चोलज्, पृ0 175–177

86 डी0सी0 गागुली, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 56, वा0 वि0 मीराशी, कार्पस, जि0 4 भूमिका, पृ0 118 वा, ए0 इ0, जि0 1, पृ0 33 किन्तु हाल मे इसे कोशलपति की पहचान सोमवशीराजा ययातिमहाशिवगुप्त से की गयी है। देखिये, क्वार्टर्ली रिव्यू ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज, कलकत्ता, 1961–62, पृ0 128

87 इण्डियन कल्चर जि0 2, पृ0 402, नवसाहसाकचरित, 10वा, 19 नरसाहसाक चरित, 10वा, 16

88 इण्डियन कल्चर जि0 2, पृ0 402, नवसाहसाकचरित, 10वा, 19 नरसाहसाक चरित, 10वा, 16

89 तस्यानुजोनिर्ज्जिहूणराज श्री सिन्धुराजो विजयार्जित श्री श्लोक 16

90 जयसिह सूरिकृत कुमारपाल भूपाल चरित, प्रथम, 31, बाडनगर प्रशस्ति, ए0 इ0, जि01, पृ0 297, श्लो0 6

91 A.E VOl XIX, P 71-72, वा0 वि0 मीराशी, कार्पस, जि0 4, स0 50, पृ0 256

92 E A VOL XII, P 201-203, कीर्तिराज का एक अभिलेख (पाठक कममोरेशन वाल्यूम, पृ0 287–303) 1018 ई0 का0 प्राप्त है।

93 A E VOl I, P 235, श्लो0 19, ए0 इ0, जि0, 19, पृ0 69–75 साउथ इण्डियन इन्स्कृप्शन, जि0 3, भाग 3, पृ0 424, ए0 इ0 जि0 9, पृ0 233

94 साउथ इण्डियन इन्स्कृप्शन, जि0 3, भाग 3, पृ0 424, ए0 इ0 जि0 9, पृ0 233

95 विहितकन्याकुब्ज भूपालभग समरगुप्त उपास्त प्रौढ भीत्तल्पभोज स कलचुरिचन्द्र शिष्यवत् भोजदेव

96 यसयातद्भुत वाहवाहनमहाशस्त्रप्रयोगादिष प्रावीण्य कविकीत्थत पृथुमति श्री भोजपृथ्वीभुजा ए0 इ0, जि0 2, पृ0 237–8, पक्ति 18,

97 प्रचिद्वि, पृ0 37 और आगे

❑❑

परमार शासकों के अभिलेख

मालवा के परमार

(1) वि0स0 1005 के हर्सोल से प्राप्त दो ताम्रपत्र जो सीयक द्वितीय से सम्बन्धित है।

(2) वि0स0 1026 अहमदाबाद ताम्रपत्र सीयक द्वितीय से सम्बन्धित है।

(3) वि0स0 1031 सन् 974 ई0 धरमपुरी प्रशस्ति जो परमार राजवश के सातवे शासक वाक्पतिराजमुज से सम्बन्धित है।

(4) वि0स0 1036 सन् 979 ई0 का उज्जैन दानपत्र भी वाक्पतिराजमुज से सम्बन्धित है।

(5) गौनरी ताम्रपत्र वि0स0 1038 सन् 981 ई0 का अभिलेख वाक्पतिराजमज से सम्बधित है।

(6) वि0स0 1043 सन् 986 ई0 का गौनरी ताम्रपत्र वाक्पतिराजमुज से ही सम्बन्धित है।

(7) वि0स0 1067 सन् 1010 ई0 का मोदसा ताम्रपत्र यह अभिलेख परमार भोज से सम्बन्धित है।

(8) वि0स0 1074 सन् 1017 ई0 का महौदी ताम्रपत्र। परमारवश के प्रतापी शासक भोज से सम्बधित है।

(9) वि0स0 1076 सन् 1019 ई0 का बेतमा ताम्रपत्र। परमार भोज से सम्बन्धित है।

(10) वि0स0 1076 सन् 1019 ई0 का बासवाडा ताम्रपत्र परमार नरेश से सम्बन्धित है।

(11) वि0स0 1078 सन् 1021 ई0 का उज्जैन ताम्रपत्र। परम प्रतापी परमार भोज से सम्बन्धित है।

(12) वि0स0 1079 सन् 1022 ई0 का देपालपुर ताम्रपत्र। प्रस्तुत अभिलेख भोज परमार से सम्बन्धित है।

(13) वि0स0 1091 सन् 1034 ई0 की सरस्वती प्रतिमा जो अब ब्रिटिश सग्रहालय लदन मे है। परमार भोज से समय मे उत्कीर्ण की गई।

(14) वि0स0 1103 सन् 1046 ई0 का तिलकवाडा ताम्रपत्र। भोजपरमार से सम्बधित है।

(15) भोजदेव के काल का कल्वन प्रस्तर अभिलेख तिथि अज्ञात है।

(16) भोजदेव का भोजपुर प्रस्तर लेख तिथि अप्राप्त ।

भोज परमार के प्राय सभी अभिलेख ॐ नम व्योमकेशा या ॐ नम समरादति के उद्बोधन से आरभ होते है इन दोनो ही सम्बोधनो का अर्थ शिव से है। इससे स्पष्ट होता है कि परमार नरेश भोजदेव शिव जी के परम भक्त थे।

(17) वि0स0 1112 सन् 1055 ई0 का मान्धाता दानपत्र। परमार नरेश जयसिह से सम्बन्धित है।

(18) वि0स0 1137 सन् 1060 ई0 का उदयपुर प्रस्तर अभिलेख परमार नरेश उदयादित्य से सम्बधित है।

(19) वि0स0 1138 सन् 1061 ई0 का धार प्रशस्ति उदयादित्य के शासनकाल का है।

(20) कामद स्तम्भ अभिलेख वि0स0 1140 सन् 1063 ई0 का यह अभिलेख परमार नरेश उदयादित्य के शासनकाल से सम्बद्ध है।

(21) वि0स0 1143 सन् 1066 ई0 झालरापाटन का यह अभिलेख परमार नरेश उदयादित्य से सम्बन्धित है। प्रस्तुत अभिलेख का आरभ 'ॐ नम शिवाय' की स्तुति से हुआ है।

(22) शेरगढ का वि0स0 11xx का प्रस्तर अभिलेख उदयादित्य से सम्बद्ध है।

(23) उदयपुर प्रस्तर अभिलेख तिथि अज्ञात 'ॐ नम शिवाय' से आरम्भ यह अभिलेख परमारो की अग्निकुल उत्पत्ति की उस कथा का वर्णन करता है जिसमे विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ की कामधेनु के हरण की बात कही गई है। अभिलेख की छठवी पक्ति मे – विश्वामित्रो वशिष्ठादहरत व (ब) ल तो यत्र गा ----- उवाच परमारा U, U, र्थिवेदो भविष्यति। मे यह वर्णित है। इसी अभिलेख मे परमार भोज को 'भर्गभक्त' कहा गया है।

(24) महाकाल मदिर (उज्जैन) अभिलेख तिथि अज्ञात। उदयादित्य के काल का यह अभिलेख महाकाल ज्योतिर्लिंग को समर्पित है। इस अभिलेख की प्रमुख विशेषता देवनागरी लिपि का वर्णन है जो अ से ह तक की वर्णमाला एव क्ष त्र ज्ञ छोड सभी सयुक्ताक्षरो को वर्णित करती है।

(25) धारा प्रशस्ति तिथि अज्ञात।

(26) सर्पबन्ध अभिलेख तिथि अज्ञात

(27) जगददेव के शासन काल का डोगरगाव प्रस्तर प्रशस्ति वि0स0 1034

(28) जगददेव का जैनद प्रस्तर अभिलेख।

(29) वि0स0 1151 नरवर्मन का अमेरा प्रस्तर अभिलेख।

(30) विक्रम स0 1152 का नरवर्मन का देवास ताम्रपत्र।

(31) वि0स0 1157 का नरवर्मन का भोजपुर प्रशस्ति।

(32) वि0स0 1161 का नरवर्मन का नागपुर सग्रहालय अभिलेख।

(33) वि0स0 1167 का नरवर्मन का कदम्बपद्रक प्रशस्ति।

(34) वि0स0 1191 का शेरगढ से प्राप्त जैन अभिलेख।

(35) (तिथि अज्ञात) नरवर्मन के समय का विदिश प्रस्तर लेख।

(36) (तिथि अज्ञात) सूर्यदेव की स्तुति मे चित्तपा की प्रशस्ति।

(37) वि0स0 – 1192 का यशोवर्मन का उज्जैन ताम्रपत्र अभिलेख।

(38) जयवर्मन का उज्जैन ताम्रपत्र अभिलेख।

(39) वि0स0 1191 और 1200 का महाकुमार लक्ष्मीवर्मन का उज्जैन तामपत्र अभिलेख।

(40) महाकुमार लक्ष्मीवर्मन का भोपाल स्तम्भ अभिलेख।

(41) वि0स0 1216 का त्रिलोकवर्मन का विदिशा प्रस्तर अभिलेख।

(42) त्रिलोकवर्मन का ग्यारसपुर स्तम्भ लेख।

(43) वि0स0 1214 का महाकुमार हरिश्चन्द्र का भोपाल तामपत्र अभिलेख

(44) वि0स0 1235 और 1236 के महाकुमार हरिश्चद के पिप्पलिनगर ताम्रपत्र अभिलेख।

(45) वि0स0 1256 का महाकुमार उदयवर्मन का भोपाल ताम्र पत्र अभिलेख।

(46) विक्रम स0 1267 का अर्जुनवर्मन का पिप्पलिनगर ताम्रपत्र अभिलेख।

(47) वि0स0 1270 का अर्जुनवर्मन का सिहोर ताम्रपत्र अभिलेख।

(48) वि0स0 1272 का अर्जुनवर्मन का सिहोर ताम्रपत्र अभिलेख।

(49) वि0स0 1275 का देवपाल का हरसूद प्रस्तर अभिलेख।

(50) वि0स0 1282 का देवपाल का मान्धाता ताम्रपत्र अभिलेख।

(51) वि0स0 1286 का देवपाल का उदयपुर प्रस्तर अभिलेख।

(52) वि0स0 128(9) का देवपाल का उदयपुर प्रस्तर अभिलेख।

(53) वि0स0 1312 का जयसिह का राहतगढ प्रस्तर अभिलेख।

(54) वि0स0 1314 का जयसिह का अत्रु प्रस्तर अभिलेख (शिलालेख)।

(55) वि0स0 1314 का जयवर्मन का मोदी प्रस्तर अभिलेख

(56) वि0स0 1317 का जयवर्मन का मान्धाता ताम्रपत्र।

(57) वि0स0 1320 का जयसिह का विदिशा प्रस्तर अभिलेख।

(58) वि0स0 1326 का जयसिह II का पथरी प्रस्तर अभिलेख।

(59) वि0स0 1331 का जयवर्मन II का मान्धाता ताम्रपत्र अभिलेख।

आबू–चन्द्रावती के परमारों के अभिलेख

(60) वि0स0 1099 पूर्णपाल का वर्मन शिलालेख।

(61) वि0स0 1099 पूर्णपाल का वसतगढ शिलालेख।

(62) वि0स0 1102 पूर्णपाल का भरुन्द शिलालेख।

(63) वि0स0 1202 यशोधवल का अजारी शिला अभिलेख।

(64) वि0स0 1207 यशोधवल का अचलगढ शिलालेख।

(65) वि0स0 1210 यशोधवल का बाघ अभिलेख।

(66) वि0स0 1220 का धारावर्ष का केदार प्रस्तर लेख।

(67) वि0स0 1237 का धारावर्ष का हाथल ताम्रपत्र लेख।

(68) वि0स0 1237 का धारावर्ष का नाना प्रस्तर लेख।

(69) वि0स0 1240 का धारावर्ष का अजारी प्रस्तर अभिलेख।

(70) वि0स0 1245 का धारावर्ष का मन्थल प्रस्तर अभिलेख।

(71) वि0स0 1249 का धारावर्ष का वामनर जी प्रस्तर अभिलेख।

(72) वि0स0 1255 का धारावर्ष का जलोढी प्रस्तर अभिलेख।

(73) वि0स0 1271 का धारावर्ष का बुतरी प्रस्तर अभिलेख।

(74) वि0स0 1274 का धारावर्ष का कातल प्रस्तर अभिलेख।

(75) चन्द्रावती के परमारो का रोहेरा ताम्रपत्र अभिलेख।

(76) वि0स0 1277 का सोमसिह का धता छाया अभिलेख।

(77) वि0स0 1290 का सोमसिह का नाना प्रस्तर अभिलेख।

(78) वि0स0 1293 का सोमसिह का देवश्वेतर प्रस्तर अभिलेख।

(79) वि0स0 1300 का अल्हणदेव का कलाजर प्रस्तर अभिलेख (प्लेट अनुपलब्ध)

(80) वि0स0 1321 का भुला प्रस्तर अभिलेख।

(81) वि0स0 1344 का प्रतापसिह का गिरवर प्रस्तर अभिलेख।

बागड़ शाखा के परमारों के अभिलेख

(82) वि0स0 1116 का माण्डलिक का पन्हेरा प्रस्तर अभिलेख।

(83) वि0स0 1136 का चामुण्डराज का अर्थुना प्रस्तर अभिलेख।

(84) वि0स0 1137 का चामुण्डराज के समय का अर्थुना प्रस्तर अभिलेख।

(85) वि0स0 1159 चामुण्डराज के समय का अर्थुना प्रस्तर अभिलेख।

(86) वि0स0 1159 का चामुण्डराज के समय का अर्थुना प्रस्तर अभिलेख।

(87) चामुण्डराज के समय का अर्थुना प्रस्तर अभि0 (तिथि अज्ञात)।

(88) वि0स0 1165 विजय राज के समय का अर्थुना प्रस्तर अभिलेख।

(89) वि0स0 1166 विजय राज के समय का अर्थुना प्रस्तर अभिलेख।

भिनमाल के परमारों के अभिलेख

(90) वि0स0 1159 देवराज का रोपी अभिलेख।

(91) वि0स0 1117 कृष्णराज के समय का भिनमाल प्रस्तर अभिलेख

(प्लेट अनुपलब्ध)

(92) वि0स0 1123 का कृष्णराज के समय का भिनमाल प्रस्तर अभिलेख।

(93) वि0स0 1218 सोमेश्वर का किराडु प्रस्तर अभिलेख।

(94) वि0स0 1239 जयसिह का भिनमाल प्रस्तर अभिलेख।

जालौर के परमारों का अभिलेख

(95) वि0स0 1174 वीसल का जालौर प्रस्तर अभिलेख।

---

* अहमदाबाद के हर्सोल से सीयक द्वितीय के दो अभिलेख एक ही साथ प्राप्त हुए है और दोनो का उल्लेख प्रथम अभिलेख के रुप मे हुआ है। इस प्रकार अभिलेखो की कुल स0 96 होती है।

** परमार शासको के अतिरिक्त कुछ अन्य अभिलेख भी पाये गये है जैसे–चुनार के किले से प्राप्त राजा भतृहरि (जो परमार भोज के अग्रज थे और सन्यासी हो गये थे) इनकी गुफा उज्जैन मे है जहा इन्होने तपस्या किया था) से सबधित अभिलेख इस अभिलेख से भी परमारो के वशिष्ठ गोत्री एव अग्निकुल उत्पत्ति का साक्ष्य देते है। प्रस्तुत अभिलेख को अन्य साक्ष्यों के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।
(कुछ प्रमुख अभिलेखो की छाया प्रति सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के साथ सलग्न है)

परमार शासको का वश वृक्ष

मालवा के परमार (C 850–1310 ई0)

परमार उपेन्द्र

|

वाक्पतिराज @ कृष्णराज (895–920 ई0)

|

वैरिसिह (920–945 ई0)

|

सीयक (सिया) @ हर्ष (हर्षसिह) (945 73 ई0)

|

वज्रट 949–969 ई0

- वाक्पति उत्पलराजमुज अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, श्री वल्लभ मृणालवति 974–95 975, 979, 982, 986
- सिधुराज @ नवसहसाक या कुमारनारायण (995 – 1000)

- भोजदेव (1000–1055) 1011, 1018, 1020, 1021, 1022, 1034–35 1049
- उदयादित्य (1070–93) 1080–1081, 1082

- जय सिह 1055–56–1059)
- नरवर्मन 1093–1134
- लक्ष्मीवर्मन
- जगददेव (1112) (जगद देव मालवा की गद्दी पर नही बैठे)
- श्यामलदेवी

- मोमलदेवी 1094, 1101, 1104–05, 1110, 1134
- गयाकर्ण 1151

- जयवर्मन (1142–43) 1134
- लक्ष्मीवर्मन (1143–55) 1144
- त्रिलोकवर्मन 1158–59

विन्ध्यवर्मन
(1187–94)
हरिश्चन्द्र (1156–86)
1157–1178–79, 1186
सुभटवर्मन (1194–1209)
अर्जुनवर्मन (1210–15)
उदयवर्मन
1186–1215
देवपाल
1215–35
जयतुगि (1235–55)
जयसिह
जयवर्मन (1255–75)
अर्जुनवर्मन II
(1275)
भोज द्वितीय
जय सिह IV
(ज्ञात वर्ष 1310)

आबू के परमार

(सन् 900 से 1300 ई0)

उत्पलराज 910—30

|

आर्यन राज 930—50

|

कृष्णराज I 950—70

|

धरणीवर्ष 970—90
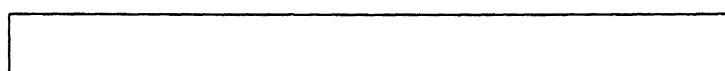
ध्रुवभट 990—1000

पूर्णपाल
(1040—50)
योगराज
|
रामदेव
|

दन्तिवर्मन
1050—60
कक्कलदेव III
(1090—1115)
|
विक्रम सिह 1115—45

महिपाल (1000—20 ई0)

धन्धुक (1020—40 ई0)
कृष्णदेवराज II 1060—90

यशोधवल (1145—1160)
1146, 1150, 1154

प्रहलादन

धारावर्ष (1160—1220) 1180,
1183, 1188, 1192, 1198,
1214, 1216, 1219
सोमसिह (1220—40)
1221, 1232, 1235
कृष्णदेव III (1240—1260 ई0)

प्रताप सिह (1260—1285)

अर्जुन (1285—95) 1290

वागड़ शाखा के परमार

(925–1110 ई0)

वैरिसिह	डम्बरसिह	(नाम अज्ञात है)
	930–55	चच्च (कक) (955–70)
		चन्डप (970–1000)
		सत्यराज (1000–1025)
	लिम्बराज	माण्डलिक
	(1025–1040)	(1040–70
		1059
		चामुण्डराज (1070–1105)
		1080, 1101
		विजयराज (1105–1110)
		1108, 1109

किराडु भिनमाल के परमार

(950–1185 ई0)

सिधुराज

दूसल या (ऊसल)

धरणीवर्ष

|

रेवराज–1002 या (1012)

धन्धुक

कृष्णराज 1060, 1067

|

सुच्चिराज (1100–1125)

उदयराज (1125–45)

|

सोमेश्वर (1145–1165)

जयसिह 1183

जालौर के परमार

(960—1125 ई0)

वाक्पतिराज (960—985)

|

चन्दन (985—1010)

|

देवराज (1010—35)

|

अपराजित (1035—60)

|

वीजल (1060—1085)

|

धारावर्ष (1085—1109)

|

वीसल (1109—1119)

1109, 1119

* सभी तिथिया ईसवी सन् मे है। कोष्ठक मे दी गयी तिथि शासको के सम्पूर्णशासन काल, बिना कोष्ठक की तिथिया अभिलेखिक एव अन्य साक्ष्यो की उपलब्धता वर्ष पर आधारित है।

** सन् 850 से 1310 ई0 तक परमार शासको का वश वृक्ष सलग्न करने का तात्पर्य केवल यह है कि परमार शासको का आधिपत्य चौदहवी शताब्दी के आरम्भ तक रहा। इसके बाद भी परमार क्षत्रियो का वश वृक्ष निरन्तर पुष्पित पल्लवित होता चला आ रहा है। परमार क्षत्रियो का विस्तार पूरे देश मे हुआ। वर्तमान मे परमार क्षत्रिय मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलो एव पूर्वी जिलो मे सुलतानपुर, जौनपुर, मिर्जापुर, वाराणसी, सोनभद्र, फैजाबाद, गोण्डा सम्पूर्ण अवध, मऊ, गाजीपुर सहित भारतवर्ष के सभी राज्यो मे है।

TWO HARSŌLĀ COPPER PLATE GRANTS OF SĪYAKA (VIKRAMA) YEAR 1005 GRANT A

I

II

From Facsimiles

PLATE I

TWO HARSOLĀ COPPER-PLATE GRANTS OF SĪYAKA
(VIKRAMA) YEAR 1005: GRANT B

i

ii

DHARAMPURI GRANT OF VĀKPATIRĀJA (VIKRAMA) YEAR 1031

i

ii

From Facsimiles

MAHAUDĪ COPPER-PLATE INSCRIPTION OF BHŌJADĒVA
(VIKRAMA) YEAR 1071

2
4
6
8
10
12
14

Scale. Seven-tenths

PLATE XI

MAHAUDĪ COPPER-PLATE INSCRIPTION OF BHŌJADĒVA (VIKRAMA) YEAR 1074

Scale Seven tenths

UJJAIN COPPER-PLATE INSCRIPTION OF BHŌJADĒVA
(VIKRAMA) YEAR 1078

I

II

From Facsimiles

UDAIPUR STONE INSCRIPTION OF THE PARAMĀRA RULERS OF MĀLWĀ (UNDATED) — **PART A**

2 4 6 8 10 12 14 16 18 20 22 24

Scale: Five-eighths

UDAIPUR STONE INSCRIPTION OF THE PARAMĀRA RULERS OF MĀLWĀ (UNDATED)—**PART B**

Scale Five-eighths
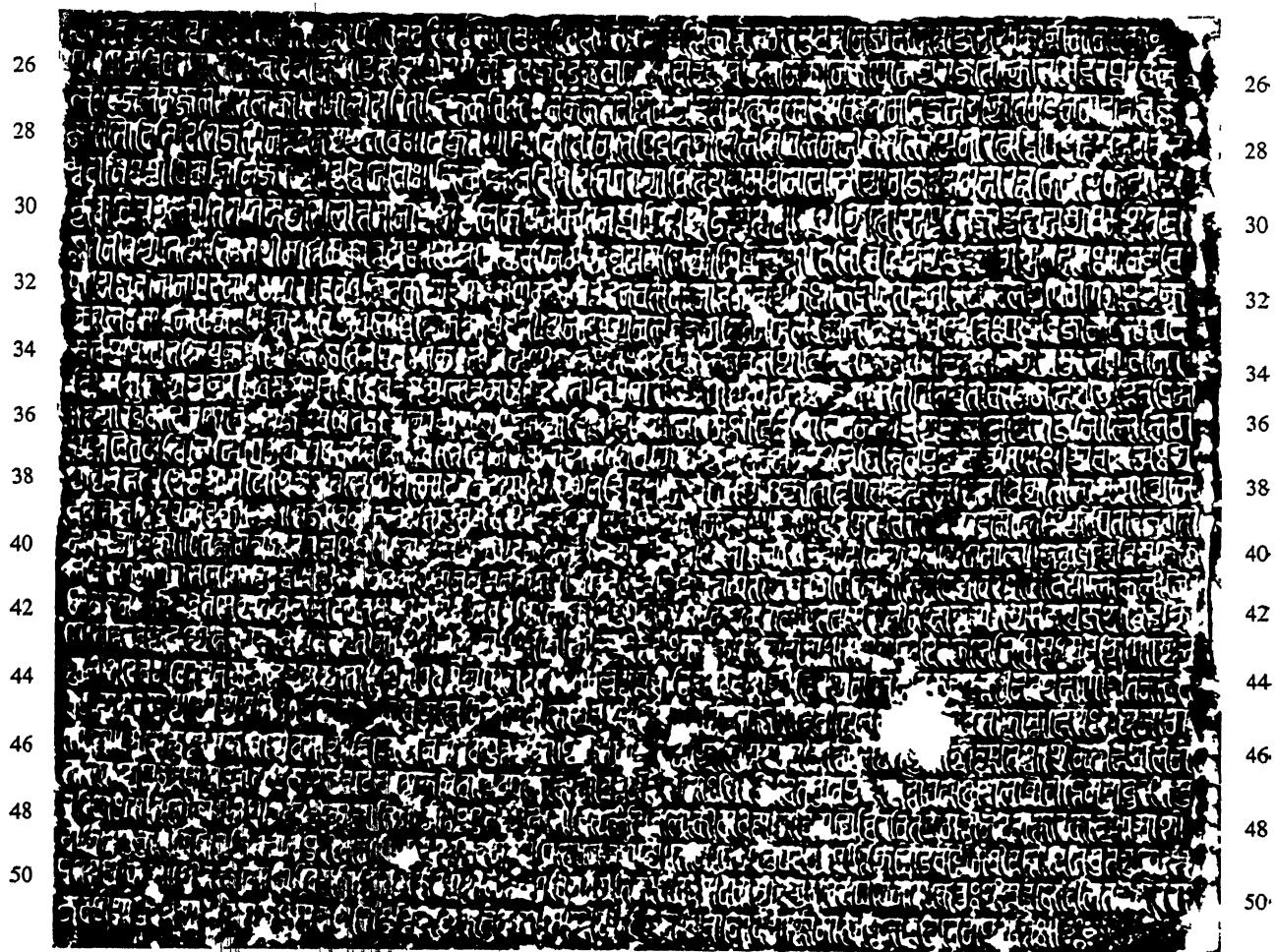
ŪN *ŚARPA-BANDHA* INSCRIPTION (UNDATED)
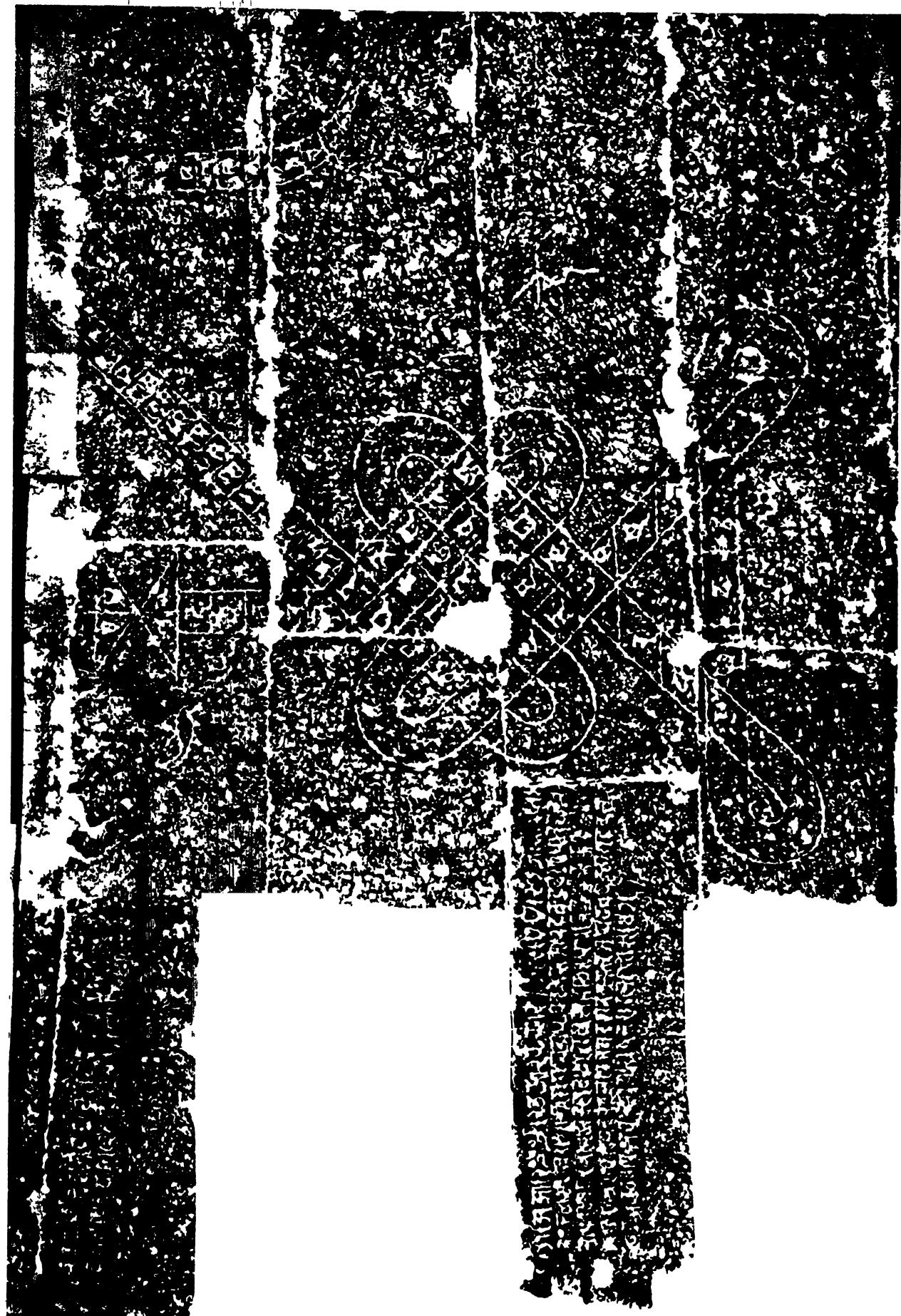
DONGARGĀON STONE INSCRIPTION OF THE TIME OF JAGADDĒVA (SAKA) YEAR 1034

Left side

2
4
6
8

Right side

2
4
6
8

From Facsimiles
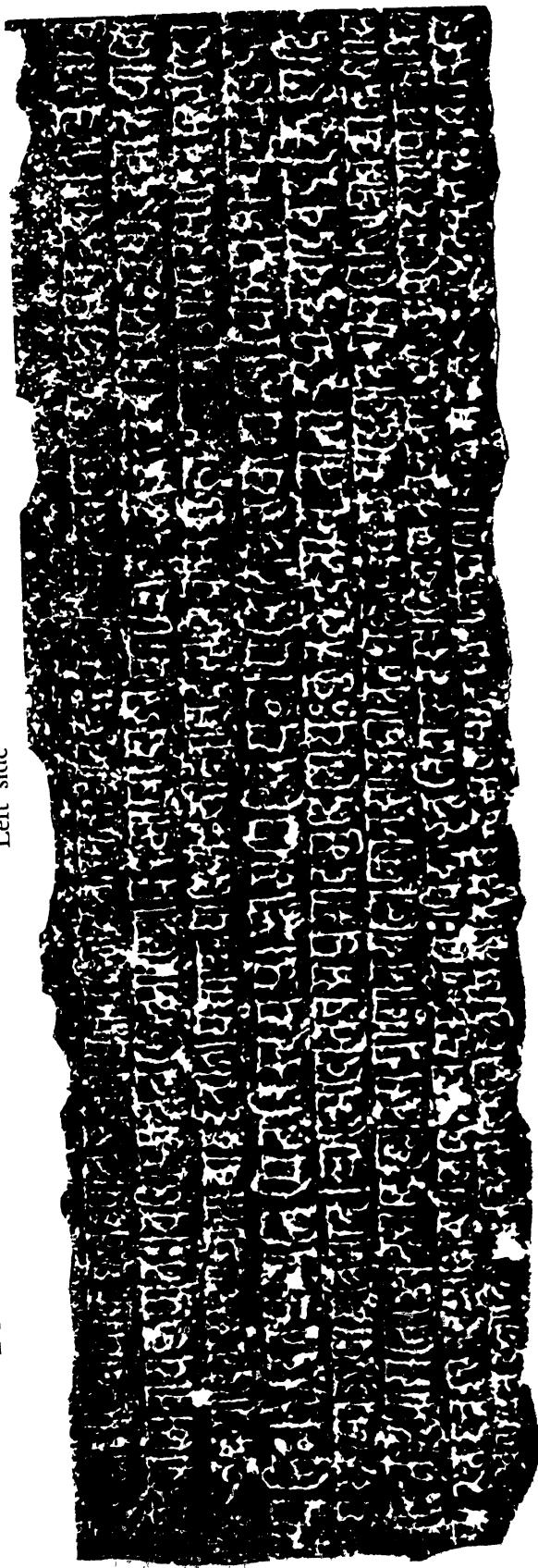
DHAR *SARPA-BANDHA* INSCRIPTION **B** (UNDATED)
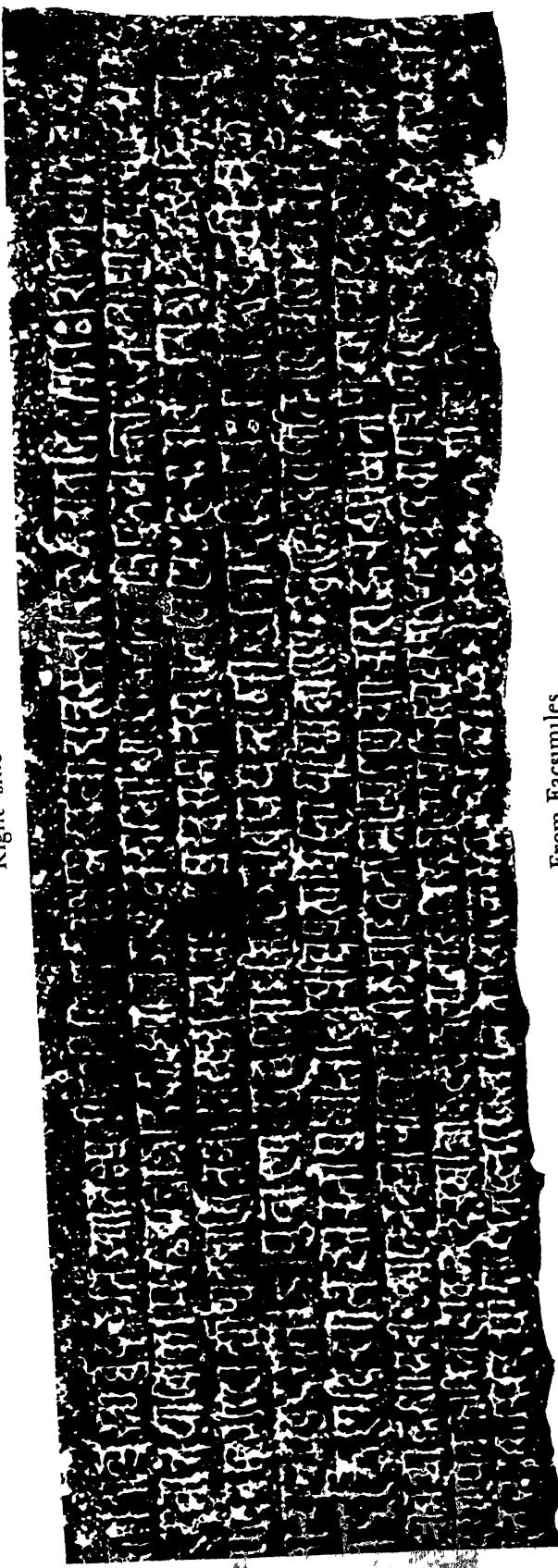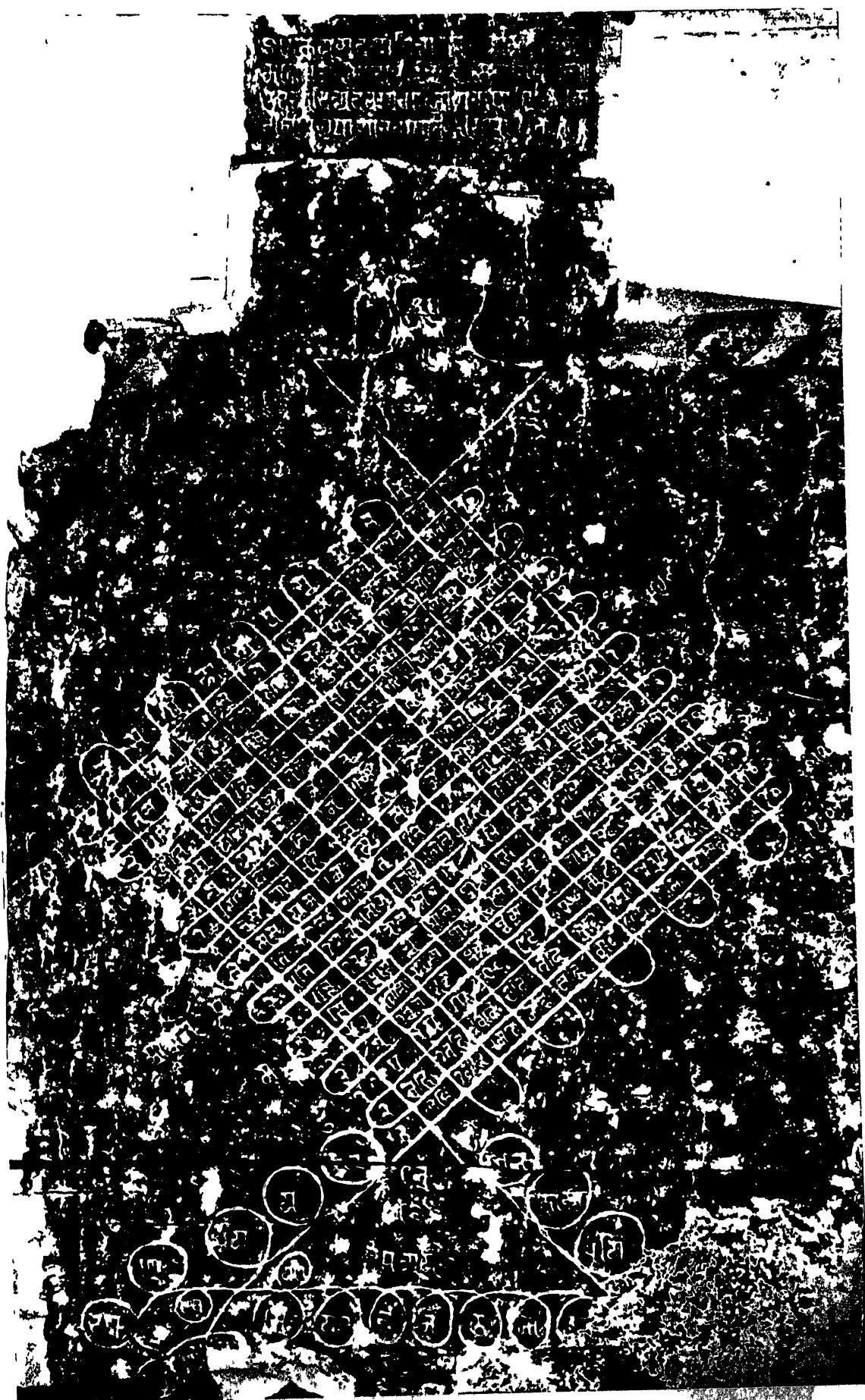
From Facsimile

MAHĀKĀLEŚVARA TEMPLE *SARPA-BANDHA* INSCRIPTION (UJJAIN) (UNDATED)
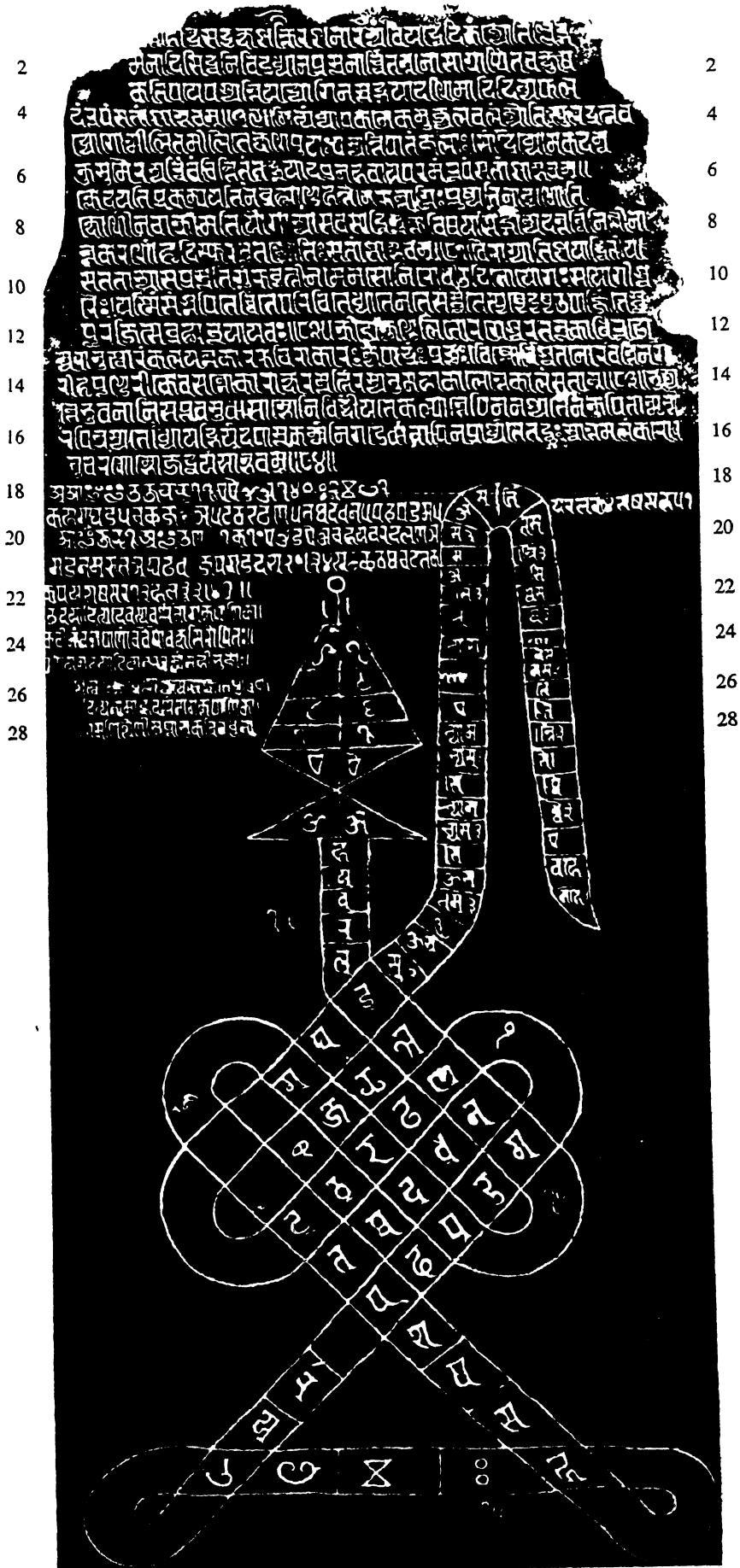
From Facsimile

PLATE

DHĀR *SARPA-BANDHA* INSCRIPTION A (DUPLICATE AND UNDATED)

अध्याय–2
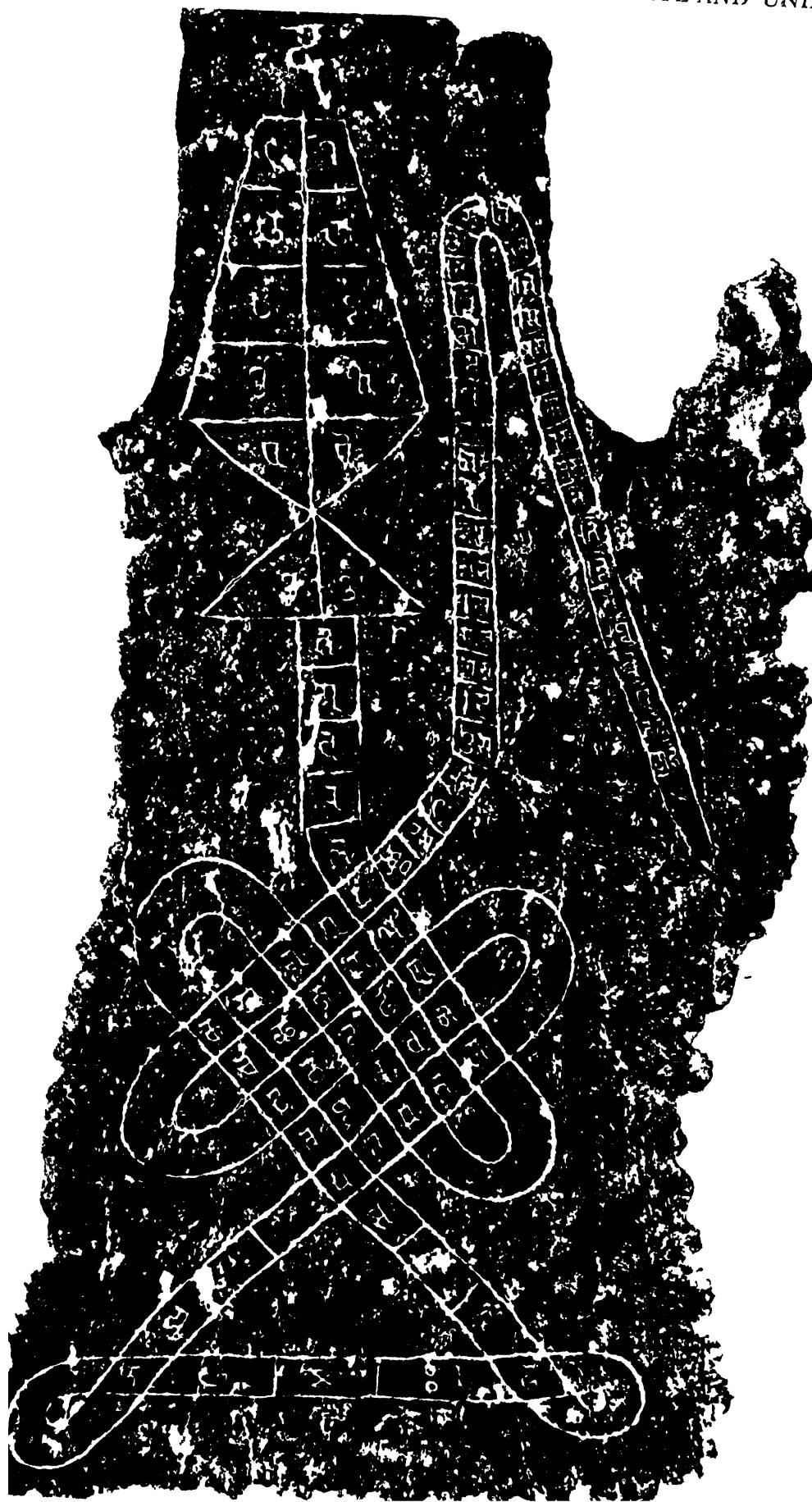
परमार कालीन सामाजिक जीवन

सामाजिक जीवन

सामान्यत किसी काल का सामाजिक जीवन उस काल की सास्कृतिक एव राजनैतिक स्थिति का परिचायक होता है। इस काल का सामाजिक जीवन मुख्यत गुप्तकाल की सामाजिक विशेषताओ को लिए हुए नवीन आयामो के साथ प्रस्तुत होता है। समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था।

वर्ण अवधारणा मूलत सास्कृतिक थी, सिद्धान्तत इससे व्यक्ति की नैतिक एव बौद्धिक योग्यता का आभास होता था। स्मृतिकारो ने वणो के सामाजिक कर्तव्यो पर बल दिया है, न कि जन्म से प्राप्त अधिकारो एव विशेषाधिकारो पर इसके विपरीत जाति व्यवस्था जन्म तथा आनुवाशिकता पर बल देती है। इसमे कर्तव्यो के पालन पर जोन न देकर विशेषाधिकारो पर बल दिया गया है।[1]

धर्मशास्त्रो तथा स्मृतियो के अनुसार वेदाध्ययन करना, यज्ञ करना तथा दान देना ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य के आवश्यक कर्तव्य थे। वेदाध्ययन यज्ञ करवाना एव दान लेना ब्राह्मणो के, युद्ध करना एव जनरक्षा क्षत्रियो के, तथा कृषि कर्म, पशुपालन एव व्यापार करना वैश्यो के विशेषाधिकार माने गये थे।[2] शूद्रो का कर्तव्य द्विजातियो की सेवा करना माना गया है।[3]

साधारणतया वर्णशब्द रग अक्षर और जाति के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। सामाजिक दशा के सदर्भ मे वर्णशब्द जाति के अर्थ मे रूढ है किन्तु यह 'वर्ण' शब्द जातिशब्द का पर्याप्त नही है। प्राचीन काल से ही वर्ण चार है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। परन्तु जातिया एव उप जातिया अनेक है – जैसे कायस्थ, तेली, अग्रवाल आदि। वर्ण व्यवस्था की परम्परा का उद्‌गम ऋग्वेदिक काल मे हुआ।[4] जो परमार काल तक आते–आते

अनेक जातियो एव उपजातियो मे विभक्त हो गया। यह वृद्धि देशकाल एव रीतिरिवाजो, व्यवहारो के कारण हुई। परमार नरेश वर्णाश्रमधर्म की रक्षा करना अपना कर्तव्य मानते हुए प्रशासन चलाते थे। इसी कारण वे व्यवस्थित वर्ग विमधर्म आदि विशेषणो से अलकृत थे।[5] उदयादित्य और नरवर्मन की तो यह घोषणा थी "मेरे खड्ग वर्ण की रक्षा के लिए सदैव तैयार है।"[6]

ब्राह्मण – समाज के चारो वर्णो मे ब्राह्मणवर्ण का सर्वोच्च स्थान था। दशवी शताब्दी के अरब यात्री अलबरूनी ने लिखा है, "समाज मे ब्राह्मणो का सर्वोच्च स्थान होता था।[7]

ब्राह्मणो की कई उपजातिया थी यथा गुगली[8] अवस्थी कर्नाट[9] श्रीमाली[10] और नागर[11] आदि। गुगली लोग वैष्णव धर्म को मानने वाले एव कृष्ण मदिर के पुजारी थे। गुगली उपाधि धारी ब्राह्मण आज भी द्वारिका मे पाये जाते है[12]। डी0आर0 भण्डारकर के अनुसार – गुगली ब्राह्मण मूलत नागर जातीय ब्राह्मण थे"[13] परन्तु गौरी शकर ओझा और सी0पी0 वैध के मतानुसार वे क्षत्रिय थे।[14]

हलायुध ने अपनी पिगलसूत्रवृत्ति मे वाक्पतिराजमुज को ब्राह्मक्षत्रिय शब्द से अभिहित किया है।[15] हमारे प्राचीन ग्रथ विष्णु पुराण[16] और वायु पुराण[17] आदि मे भी ब्रह्मक्षत्रिय शब्द का उल्लेख मिलता है। किन्तु ये ब्रह्मक्षत्रिय मूलत कौन थे इस बारे मे साधारणतया कुछ भी कहना कठिन है। इस सदर्भ मे विविध विद्वानो के विविध मत है। डी0आर0भण्डारकर के अनुसार "ये मूलता ब्राह्मण थे किन्तु बाद मे क्षत्रियो का व्यवसाय अपना लेने के कारण ब्रह्मक्षत्रिय कहलाये।[18] आर0सी0 मजुमदार के अनुसार 'ये ब्रह्मक्षत्रिय कुल वैवाहिक सम्बन्धो के परिणाम थो अर्थात ब्राह्मण और क्षत्रिय स्त्री पुरूषो के विवाह से जो सताने उत्पन्न हुई वे ब्रह्मक्षत्रिय कहलायी।[19] कीलहार्न महोदय ने मजुमदार महोदय का समर्थन करते हुए कहा कि ब्रह्मक्षत्रिय ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णो की मिश्रित सतान थे।[20] सी0वी0 वैध के

अनुसार "जिन क्षत्रियो को अपने गोत्र और प्रवर्तक ऋषि का नाम स्मरण था कालातर मे वे ब्रह्मक्षत्रिय कहलाये।[21]

ब्राह्मण जातियो की विविधता के विविधकारण प्रतीत होते है उनके भेद स्थानकृत गोत्रकृत तथा वैदिक शास्त्रकृत आदि थे। इस समय मगध, मध्य देश दक्षिणराढ (बगाल) पौण्डरिक (उत्तरकुरू), लाटदेश, मथुरा, अहिच्छत्र, मान्यखेट और कर्नाटक आदि क्षेत्रो से आकर ब्राह्मणो ने मालवा मे शरण ली थी।[22] कर्नाटक आदि स्थानो के नामो से अविहित ब्राह्मणो की उपजातिया आज भी मिलती है। महाभष्यकार पतजलि के अनुसार वेदो की कुल 1121 शाखाओ का उल्लेख पाया जाता है किन्तु परमार इतिहास के स्रोतो से हमे कुछ ही शाखाओ का सकेत मिलता है जैसे व्रहवृच,[23] वाजसनेयमाध्यदिन[24] कठ, कॉघुम, शाखायन, राणायनीय,[25] जोरअ आश्वलायम[25] आदि।

इसी प्रकार ब्राह्मणो के भिन्न भिन्न गोत्र भी होते थे जिनका उल्लेख अभिलेखो मे मिलता है जैसे – भारद्वाज[27], गर्ग[28], भृगु, गौतम[29], कात्यायन, पाराशर[30], अभि[31], अगस्त्य[32], वशिष्ठ[33], शाण्डिल्य, मारकण्डेय[34], कश्यप, वत्स, धैमेय, चापलिय[35] और गोपालिय[36] आदि। नागर जाति के ब्राह्मण गोपालिय गोत्र के होते थे।[37]

परमारकालीन ब्राह्मण भी अपने नाम के आगे पदविया लगाते थे। उनकी ठाकुर, अवस्थी, द्विवेदी[38], शर्मा[39], स्वामिन[40], उपाध्याय[41], दीक्षित[42] आदि पदवियो का उल्लेख मिलता है। कुछ ब्राह्मण शुद्ध पडित जैसे विशेषण भी धारण करते थे। कुछ पदविया वैदिक कर्मो के अनुसार ही बनती थी। जैसे श्रोत्रिय। श्रोत्रिय ब्राह्मण वेद द्वारा निर्दिष्ठ 6 कर्तव्यो का पालन करते थे। इसी प्रकार अग्निहोत्रीय वे होते थे जिनके घरो मे रात दिन एक अग्नि कुण्ड मे यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित रहती थी।[43]

धर्मशास्त्रो के आदेशानुसार[44] अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना एव कराना तथा दान देना और दान लेना ब्राह्मणो के प्रमुख छह कर्तव्य माने जाते थे। वेदो के विभिन्न शाखाओ के अध्ययन के कारण ही द्विवेदिन, त्रिवेदिन और चतुर्वेदिन आदि ब्राह्मणो की अनेक उपाधिया मानी गयी।[45]

राज्य की ओर से ब्राह्मणो को भूमिदान मिलता था। परमारवश के शासको के अभिलेख इस दान व्याख्या के प्रत्यक्ष प्रमाण है। सीयक द्वितीय ने गोपालीय गोत्र के नागर जातीय ब्राह्मण लल्लोपाध्याय को कुम्मारोटक गाव[46] वाक्यपतिराज मुज ने बसताचार्य को पिप्परिका (तडार)[47] नामक गाव भोज ने देल्ह को नलतडाग एव अत्रिगोत्री ब्राह्मण वच्छल को किरिकैका[48] और यशोवर्मा ने भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण धनपाल को वडोड और उथवणक नामक गावो का दान दिया था।[49] प्राय इस तरह की दान व्यवस्थाओ से ही ब्राह्मणो का जीवनयापन होता था।

ब्राह्मण लोग पुरोहितो के रूप मे कार्य करते थे तथा विशेष परिस्थितियो मे राजाओ को धार्मिक सलाह दिया करते थे।[50] परन्तु आपत्तिकाल मे ब्राह्मण क्षत्रिय एव वैश्य वर्गों के व्यवसाय भी अपना सकते थे। अलबरूनी के अनुसार ये कपडे और सुपाडी के व्यापार का कार्य अपना सकते थे परन्तु वास्तवित विक्रय कार्य वे स्वय न करके अपने नाम से वैश्यो के माध्यम से करते थे।[51] किन्तु इस बात के भी प्रमाण है कि ब्राह्मण लोग स्वय भी व्यापार करते थे। इस प्रकार का एक व्यापारी ब्राह्मण सिघलदीप से विभिन्न प्रकार के व्यवसायो के बाद उज्जैन वापस लौटा था।[52] विभिन्न प्रकार के व्यवसायो मे कुछ व्यवसाय ब्राह्मणो के लिए यथा – पका हुआ चावल, मास, दूध, दही, साग तरकारी और शराब आदि बेचना आपत्तिकाल मे भी वर्जित थे।[53]

ब्राह्मण लोग मत्री बनकर अपने परामर्श से राजा एव राष्ट्र की सेवा करके अपने राजनैतिक कार्यों का भी सपादन करते थे। आबू के परमार

शासक प्रताप सिह का ब्राह्मणमत्री बेल्हण था।[54] इसी प्रकार मालव के परमार शासक अर्जुनवर्मन एव जयवर्मा द्वितीय के सधि विग्रहिक (मत्री) क्रमश पडित विल्हण[55] और मालाधार थे।[56] युद्ध आदि विषयक जो सभाये होती थी उनमे भी ये लोग भाग लेते थे। सभा मे राजा के दाहिनी और ये अपना स्थान ग्रहण करते थे।[57] कही–कही ब्राह्मणो के भी शासको के पद पर आसीन होने के उल्लेख मिलते है।[58]

कुछ ब्राह्मण दूतक का भी कार्य करते थे। ठक्कुर विष्णु सीयक द्वितीय के हरसोल ताम्रपत्र[59] के तथा ठाकुर वामन स्वामी पुरूषोत्तम यशोवर्मा के कात्वन शिलालेख के दूतक[60] थे।

शासको द्वारा प्रकाशित अभिलेखो की रचना एव उन्हे उत्कीर्ण करने का कार्य भी प्राय ब्राह्मण ही करते थे। आबू शासक पूर्णपाल के बसतगढ शिलालेख को मातृशर्मन[61] ने, मालवशासक भोज के काल्वन लेख को योगेश्वर[62] ने और देवपाल के मान्धाता शिलालेख को हरसुदेव ने लिखा था।[63] इसी प्रकार अर्जुनवर्मन के भोपाल शिलालेख को पडित वप्पैराज ने उत्कीर्ण किया था[64]

समाज के अन्य वर्णो की अपेक्षा ब्राह्मणो को कुछ विशेष सुविधाये प्राप्त थी। अन्य वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मणो का राज्य को कम कर देना पडता था। आबू शासक सोमसिह के एक शिलालेख से विदित होता है कि इन्होने ब्राह्मणो को कर मुक्त कर दिया था।[65] अलबरूनी के अनुसार भी ब्राह्मण वर्ग कर से पूर्णत मुक्त था।[66] बागड के परमारशासक चामुण्डराज ने भी अन्य वर्गों की अपेक्षा ब्राह्मणो के साथ अत्यधिक उदारता का व्यवहार किया था। किसी भी अपराध के बदले ब्राह्मणो को प्राणदड नही दिया जाता था। ब्राह्मण यदि किसी की हत्या कर देता था इसके लिए उसे दडस्वरूप गरीबो को भिक्षादान करना, स्वय उपवास करना तथा ईश्वर प्रार्थना करनी पडती थी। लेकिन यदि वह किसी मूल्यवान वस्तु का अपहरण करताा तो उसे अन्धा

करके उसका दाहिना हाथ और बाया पैर कटवा दिया जाता था।[67] पी०वी० काणे महोदय ने भी ब्राह्मणो के इन विशेष सुविधाओ का उल्लेख किया है।[68]

क्षत्रिय— ब्राह्मणो के बाद दूसरा स्थान क्षत्रियो का था। इसके मुख्य कर्तव्य दान देना, यज्ञ करना, विधध्ययन तथा समाज के अन्य तीन वर्णों की रक्षा करना था। शिक्षा के क्षेत्र मे इनको ब्राह्मणो के ही समान वेद वेदागो एव अन्य शास्त्रो के अध्ययन का अधिकार प्राप्त था। वे स्वय तो वेदाध्ययन कर सकते किन्तु दूसरो को वेदाध्ययन कराने का अधिकार नही प्राप्त था।[69]

परमार चाहमान, चौलुक्य शासक व उनके सामन्त ब्राह्मणो को प्राय हलाबाह भूमि खेत आदि दान देते तथा गोचर भाूमि सुविधा प्रदान करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि बहुत से ब्राह्मणा कृषि तथा पशुपालन भी करते थे।

आब् के धारावर्ष परमार के विष्सठ 1237 के आथक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि शैवधर्म के आचार्य भट्टारक हीसल उग्रदमके को साहिलावाडा ग्राम तथा गोचर भूमि की सुविधा दी गई थी।[70]

प्रशासन सामान्यत क्षत्रिय वर्ग द्वारा ही सचालित होता था। प्रशासक, सेनापति और योद्धा प्राय क्षत्रियवर्ग से हीं चुने जाते थे। उदयपुर प्रशस्ति मे उपेन्द्र कृष्णराज को द्विजो मे श्रेष्ठ कहा गया है।[71] इसी प्रकार एक शिलालेख मे यशोवर्मन को क्षत्रिय शिरोमणि कहा गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि सामान्यत क्षत्रिय वर्ग के सदस्य ही शासक पदो पर अधीन होते थे।

परमारकाल तक क्षत्रियो के भी कई भेद हो गये जिनमे, हथुण्डी[72], देवण[73] प्रागवाट, यवर्कुट, ओइसवाल, श्रीमाल[74], परमार, प्रतिहार, चालुक्य, चाहमान, सोलकी आदि का उल्लेख मिलता है।

इस काल मे और इससे कुछ समय पूर्व एक नई जाति का उदय हुआ। यह जाति राजपूत राम से प्रसिद्ध हुई। प्राचीन क्षत्रियो के समान देश के वर्णाश्रमधर्म तथा हिन्दू सस्कृति की रक्षा करना उन्होने अपना कर्तव्य समझा। ललिताविग्रहराज के अनुसार चतुर्थ विग्रह राज अपने मित्र राजाओ, ब्राह्मणो, देवस्थानो और तीर्थों की तुर्कों से रक्षा करना अपना विशेष कर्तव्य समझता था।[75] यद्यपि कर्तव्य की दृष्टि से यह जाति क्षत्रिय ही थी तथापि इसे प्राचीन क्षत्रियो की सतान मान लेना उचित नही होगा। जैसे ही इस जाति की प्रधानता समाज मे स्वीकृत होने लगी धर्माधिकारियो, ब्राह्मणो, विद्वानो एव चारणो (भाटो) ने इनका सम्बन्ध सूर्य, चन्द्र, इन्द्र अग्नि इत्यादि हिन्दू देवताओ से जोड दिया।परन्तु यूरोपीय एव कुछ स्थानीय विद्वानो ने उनकी उत्पत्ति के दैवी सिद्धात को स्वीकार नही किया है।

सी0वी0 वैद्य राजपूतो को विशुद्ध क्षत्रिय की सतान मानते है। ओझा जी ने मध्ययममार्ग अपनाते हुए कहा कि राजपूतो की नसो मे क्षत्रिय रक्त तो था ही, परन्तु इसके साथ ही कुषाण, हूण शक आदि अनार्य जातिया भी इनमे धुलमिल गई थी। वि0स0 1226 के विजोलिया अभिलेख मे चाहमानो को वत्सगोत्री ब्राह्मण बताया गया है।[76] सूडा[77] व अचलेश्वर[78] अभिलेखो मे क्रमश जालौर और चन्द्रावती के चाहमानो को ब्राह्मण बताया गया है। इन राजपूतो को ब्राह्मण बतलाने के पीछे यह कारण रहा होगा कि "कुछ राजपूतो के गोत्र उनके पुरोहितो के गोत्रो के आधार पर माने गये थे।[79]

परमार राजा क्षत्रिय थे उन्होने अतर्विवाह द्वारा भारत के विभिन्न राजवशो से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किये। उदयादित्य की पुत्री का विवाह गुहिल राजा से हुआ था, जगद्देव ने अपनी कन्या का विवाह पूर्वी

बगाल के एक वर्मन राजा से किया। अर्जुनवर्मन की पहली राज्ञी कुतल नरेश की पुत्री थी और उसकी दूसरी राज्ञी एक चौलुक्य राजकुमारी थी। गगनरेश नरसिह प्रथम (1253–1286 ई0) ने मालव राजा की पुत्री सीता देवी से विवाह किया।[80] एक गुजरात राजकुमार ने परमार राजवश की एक राजकुमारी से विवाह किया था।[81]

मिताक्षरा के अनुसार जिन क्षत्रियो और वैश्यो के अपने गोत्र व प्रवर नही (ज्ञात) होते उन्हे अपने पुरोहितो के गोत्र व प्रवर अपना लेने चाहिए।[82] यह वर्ग शासक वर्ग था अत इन्हे भी कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थो आपत्तिकाल मे क्षत्रिय भी वैश्यो का व्यवसाय अपना सकते थे। भोज परमार के शासनकाल मे क्षत्रिय जातीय मेमाक के कृषि करने का अभिलेखीय उल्लेख मिलता है।[83]

चोरी करने पर इनका दाहिना हाथ एव बाया पैर काट लिया जाता था। बडे अपराधो के लिए इनके लिए मृत्युदड की सजा भी दी जाती थी।[84]

वैश्य– वर्ण व्यवस्था स्थापित होने के साथ ही वैश्य कृषि, व्यापार और वाणिल्य कर्म करते थे। वर्णाश्रम व्यवस्था मे इनका स्थान तीसरा था। परमार काल मे इन्हे वणिक भी कहा जाता था। क्योकि व्यापार करना इनका प्रमुख कर्तव्य माना जाता था।[85]

पुरातन प्रबन्ध सग्रह से ज्ञात होता है कि नाडोल राज्य के सस्थापक चाहमान लक्ष्मण ने किसी श्रेष्ठी की पुत्री से विवाह किया था इससे उत्पन्न पुत्र को कोषाध्यक्ष बनाया गया और उन्हे वैश्य कहा गया।[86] राजकीय भण्डारो के अधिकारियो को भण्डारी कहा जाने लगा और वे ओसवाल माने जाने लगे। अग्रवाल माहेश्वरी, जायसवाल और खण्डेलवालो का भी उद्भव इसी प्रकार (क्षत्रिय पुरूष और वैश्य स्त्री) क्षत्रियो से ही माना

जाता है।[87] शीलादित्य के अभिलेख[88] और कुबलयमाला तथा कन्हडदेव प्रबन्ध जैसे ग्रन्थो मे व्यापार करने वाले लोगो को वैश्य की सज्ञा दी गई है। श्रीमाल, किरातकूय और ओसिया जैसे नगरो की समृद्धि के कारण वैश्य ही थे। परन्तु वैश्यो के कुछ परम्परागत व्यवसाय यथा कृषि एव पशुपालन और धीरे धीरे शूद्र भी अपनाने लगे थे।[89] जबकि वैश्य इनसे विमुख होने लगे। सम्भवत वैश्य इन वरूवसायो का परित्याग इस कारण करने लगे क्योकि इसमे हिसा की सभवना बनी रहती थी वैश्य वर्ण मे भी व्यवसाय और स्थान विशेष के आधार पर अनेक जातिया व उपजातिया बन गयी। प्रागवाह[90] उपकेश[91] श्रीमाल[92] धर्कट[93] इत्यादि वैश्य जातियो ने धार्मिक और साहित्यिक जीवन को ठूसर[94] माहेश्वरी[95] आदि वैश्य जातिया प्राचीन वैदिक धर्म की ही अनुयायी बनी रही जबकि अन्य अनेक वैश्य जातियो ने जैन धर्म अपना लिया था। जिन वैश्यो की दशा सोचनीय हो गयी थी उस वर्ग को मनु एव वौधायन ने शूद्रो की श्रेणी मे रखा है।[96] अलबरूनी ने भी उपर्युक्त धर्मशास्त्रो का समर्थन किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि समाज मे वैश्यो एव शूद्रो की स्थिति मे बहुत अतर नही था। परन्तु वास्तव मे ऐसी बात नही है। समरागणसूत्रधार मे विभिन्न वर्गों के गृह निर्माण के सदर्भ मे वैश्यो का निवास स्थान ब्राह्मण और क्षत्रियो से निम्न श्रेणी मे किन्तु शूद्रो से श्रेष्ठ होना उल्लिखित है। अलबरूनी ने भी लिखा है कि शूद्रो के साथ वैश्यो को भी वेदाध्ययन का अधिकार नही था।[97] किन्तु अलबरूनी का यह विचार भी अनुमन्य नही है क्योकि लक्ष्मीधर ने वैश्यो के वेदाध्ययन क्रे अधिकार का स्पष्ट उल्लेख किया है।[98] समस्त परमार साक्ष्यो से स्पष्ट है कि वैश्यो की स्थिति शूद्रो से उच्च थी।

व्यापार एव कृषि पशुपालन वैश्यो के मुख्य व्यवसाय थे। ये अलग–अलग समूह बनाकर व्यापार करने के लिए ये वणिक एक देशा से दूसरे देश को जाते थे। व्यापारियो के ऐसे समूह को प्राचीन काल मे श्रेणी कहा जाता था। रास्ते मे अपने जीवन निर्वाह के लिए खाद्य सामग्री ले जाते

थे।[99] इन व्यापारियो के लिए दूध, दही, मक्खन, नील, नमक, मदिरा, शस्शास्त्र और विष आदि का व्यापार करना वर्जित था।[100]

एक स्थान पर स्थिर होकर व्यवसाय करने वाले कास्यकार और स्वर्णकार जैसे अनेक वैश्य जातियो के भी नाम मिलते है। विशेष पर्वो पर ये लोग राज्य को एक निश्चित धनराशि कर के रूप मे देते थे।[101]

राजनैतिक कार्यो मे भी वैश्यो का हाथ होता था। नगर शासन व्यवस्था मे उन्हे राजकीय कर्मचारियो के रूप मे नियुक्त किया जाता था।[102] वे मदिरो के सरक्षक के रूप मे धार्मिक कृत्यो की देखभाल करते थे, जिनका उल्लेख महाजन गोष्ठि के नाम से उल्लेख मिलता है।[103] समाज के अन्य वर्गो की अपेक्षा वैश्य वर्ग अधिक सम्पन्न होता था। देवपाल के शासन काल मे केशव नामक एक व्यापारी ने अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति से एक शिव मदिर एव उसी के समीप एक तालाब का निर्माण करवाया था।[104]

तत्कालीन अभिलेखो मे अग्रवाल थाखाट एव धनर्कुट नामक जातियो के उल्लेख मिलते है।[105] दशरथ शर्मा के अनुसार ये लोग वैश्यो की ही एक शाखा है।

शूद्र– प्राचीन आयाचर्यो के अनुसार शूद्रो का मुख्य कर्तव्य द्विजो की सेवा और सहायता करना था और इनके भरणपोषण का उत्तरदायित्व द्विजो पर था।[106] यदि शूद्र उच्च वर्गो की सेवा से अपनी या अपने कुटुम्ब की जीविका नही चला पाता था, तो वह बढईगीरी, चित्रकारी, पच्चीकारी और रगसाजी जैसे उद्योगो द्वारा जीविको पार्जन करता था।[107]

कथाकोष प्रबन्ध और देशी नाम माला जैसे मध्यकालीन ग्रथो मे दस्तकारी अथवा खेती मे लगी हुई कई जातियो की गणना शूद्रो मे की गयी है। इनमे कुम्हार, माली, तम्बोली, तेली, नाई, लुहार, खाती, सुनार, ठठेरे, दर्जी, गडरिये आदि प्रमुख है।[108] जब वैश्यो ने व्यापार वाणिज्य को अपनी जीविका का प्रधान आधार बना लिया तब शूद्रो ने खेती, पशुपालन और

दस्तकारी के पेशे भी अपना लिये। शैव और जैन धर्म के सुधारको ने शूद्रो के प्रति हीनभाव नही अपनया। इससे शूद्रो की स्थिति मे न्यूनाधिक सुधार हुआ। इस समय के कुछ तात्रिक गुरू स्वय शूद्र थे। नवी शताब्दी के टीकाकार मेघातिथि ने शूद्रो को द्विजो की सेवा से मुक्ति का समर्थन किया है और उन्हे व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार भी दिया है। उसने शूद्रो के लिए बिना मन्त्रोच्चारण के सस्कारो के पालन करने का प्रावधान भी किया है।[109] इस काल मे शूद्रो को मन्दिरो की व्यवस्था से सम्बन्धित किये जाने के भी उदाहरण मिलते है। उन्हे ग्राम और नगर की सुरक्षा समितियो का सदस्य भी बनाया जाता था।[110]

कालातर मे शूद्रो मे भी इनेक उपाजियो का विकास हुआ यथा मेहर जाति जिसका उल्लेख चाहमान अभिलेखो मे हुआ है। कामा से प्राप्त नवी शती के एक अभिलेख मे कुम्भ्कारो, शिल्पियो और मालियो की श्रेणियो का उल्लेख मिलता है।[111] स्थानीय सघो जिनके माध्यम से शिल्पियो, कुम्हारो रगसाजो, आदि के आर्थिक क्रिया कलाप सपन्न होते थे श्रेणी कहा जाता था।[112]

कायस्थ– पूर्वमाध्यमिक अभिलेखो से 'कायस्थो' की सामाजिक स्थिति का ज्ञान होता है। धर्मशास्त्रो एव गुप्तकालीन अभिलेखो मे कायस्थ लेखको के रूप मे उल्लिखित है।[113] लेखको के रूप मे कायस्थो का सर्वप्रमुख उल्लेख कनुसुआ अभिलेख मे हुआ है। इस प्रशस्ति की रचना रामिकान्गाज नामक कायस्थ ने की थी।[114] गो0ही0 ओझा के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि जातियो के जो लोग लेखक या अहलकारी का काम करते थे वे कायस्थ कहलाये। कालान्तर मे उनका विकास एक स्वतत्र जाति के रूप मे हुआ।[115] कायस्थ जाति की उत्पत्ति के विषय मे विद्वानो के विभिन्न मत है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने बगाल के कायस्थो को शूद्र माना है।[116] व्यास

स्मृति मे कायस्थ नाइयो, कुम्हारो इत्यादि शूद्रो के साथ परिगणित हुए है।[117] इलाहाबाद तथा पटना उच्च न्यायालय ने इनको द्विज बताया है।[118]

भविष्यपुराण तथा पद्मपुराण ने कायस्थो को क्षत्रिय की सतान कहा है।[119] 'उदयनसुन्दरी' कथा से ज्ञात होता है कि बालम कायस्थ क्षत्रिय जाति के है।[120] पूर्वमध्यकाल के अभिलेख लेखन का कार्य मुख्यत कायस्थो ने किया है। अल्कट के वि0स0 1010 के अभिलेख का लेखक कायस्थ पाल वेल्लक था।[121] वि0स0 1051 के बालेरा दानपत्र को लिखने वाला कायस्थ कचन था।[122] कायस्थ कवियो का भी उल्लेख मिलता है। चाहमानदुर्लभ राज के वि0स0 1056 के विणसरिया अभिलेख मे गौड कायस्थ कवि कल्पा का उल्लेख है।[123] वि0स0 1213 से नाडौल से प्राप्त प्रताप सिह के ताम्रपत्र मे गौड कायस्थ पण्डित महिपाल का उल्लेख हुआ है।[124] अनेक अभिलेखो मे इन्हे ठाकुर उपाधि से विभूषित किया गया है। नाडोल से प्राप्त वि0स0 1198 के अभिलेख मे ठाकुर पेथड का उल्लेख है।[125] नरहड से प्राप्त वि0स0 1215 के अभिलेख मे ठाकुर श्री श्रीचन्द्र का उल्लेख है।[126] नाणा से प्राप्त वि0स0 1257 के अभिलेख से ज्ञात होता है कि गौड कायस्थ उदय सिह ने ब्राह्मणो की कपिल मे 33 द्रम्म हौर 6 विशोपक उसकी व्यवस्यार्थ दिये थे।[127] ठाकुर उपाधि तथा दान से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल तक समाज मे इनकी स्थिति सम्मानपूर्ण हो गयी थी। कायस्थ परमार राजा विजयराज का सधि विग्रहिक था।[128] उदयपुर के विक्टोरियाहाल से प्राप्त परमार अभिलेखो मे रूद्रादित्य और उनके पौत्र कहिपाल को कायस्थ–कुजर कहा गया है।[129] शायद ऐसा कायस्थ अभिलेख लेखको के कारण है।

कालातर मे कायस्थो मे भी उनके निवास स्थानो के आधार पर अनेक क्षेत्रीय उपजातिया बन गई। यथा– मथुरा के निवासी माथुर, गौड (बगाल) के निवासी गौड कहलाये।

अन्त्यज– समाज का निम्नतम वर्ग अन्त्यज माजा जाता था। मनु ने शूद्रो के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया था। अत्रि ने निम्नलिखित सात अन्त्यजो का उल्लेख किया है– रजक (धोबी), चर्मकार, नट (बास का काम करने वाला) चाण्डाल, कैवर्त (मछली मारने वाला) मेद और भिल्ल।[130] व्यास स्मृति मे चर्मकार, भट, भिल्ल, रजक, पुष्कर, नट, विराट, मेद, चाण्डाल, दास, श्वपच तथा कोलिक इन 12 अन्त्यजो की सूची प्राप्त होती है।[131] अलबरूनी ने भी 12 अन्त्यजो का उल्लेख किया है– नट, बरूड कैवर्त, जलोपजीवी, व्याध, तन्तुवाय रजक, चर्मकार, हाडी, डोम, चाण्डाल व वघातु।[132] इनमे से प्रथम 5 की स्थिति अपेक्षाकृत ऊची थी। इनमे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध होते थे अतिम चार के साथ अन्य अन्त्यजो का सम्बन्ध नही होता था। इन्हे अपने – अपने व्यवसायो के आधार पर पृथक जातियो के रूप मे माना जाता था। मछुये जैसी कुछ जातियो का उल्लेख भोज ने भी किया है।

अन्त्यजो का सामाजिक स्थान उनके व्यवसाय तथा स्वतत्रता के आधार पर निश्चित होता था। भेद मेवाड के जगली व पहाडी क्षेत्रो मे रहते थे इस क्षेत्र मे इनका प्रभाव था। भील अन्त्यज भी अरावली के पहाडी क्षेत्रो मे रहते थे। इसी प्रकार दक्षिण पूर्वी क्षेत्र से मीना जाति थी। ये लोग लूट खसोट से जीविकोपार्जन करते थे। बावरी जाति का उल्लेख जालौर के वि0स0 1239 के एक अभिलेख[133] मे हुआ है। दशरथ शर्मा का मत है कि सभवत लक्ष्मण चाहमान को नाडोल राज्य की स्थापना मे मीना भील और बावरियो ने सहायता प्रदान की थी।[134]

'उपमितिभव प्रवचकथा' मे अन्त्यजो का यत्र तत्र उल्लेख है। मातगो के घर बहुत गदी बस्तियो मे होते थे।[135] यहा पर यह भी सकेतित है कि सामाजिक जीवन मे उच्चतम स्थिति महाराज की और निम्नतम स्थिति चाण्डालो की। यद्यपि अभिलेखो मे उनके जीवन से सम्बन्धित विस्तृत सूचनाये नही मिलती तथापि साहित्यिक ग्रथो मे इस पर प्रकाश डाला गया है।[136]

अन्त्यजो के अतिरिक्त शबर भील किरात आदि कुछ जगली जातियो के भी उल्लेख मिलते है। ये अपने हाथो मे सदैव धनुषबाण लिये समूह बनाकर जगल मे धूमा करते थे।[137] भील जाति के लोगो का मुख्य व्यवसाय कृषि एव चित्र बनाया था। इसके अतिरिक्त ये पथविचलित लोगो के मार्गदर्शक का भी कार्य करते थे। इस जाति मे जुआ का खूब प्रचलन था। शबर जाति का मुख्य व्यवसाय शिकार करना होता था। वे लोग सिह चर्म पहनते थे तथा स्त्रिया गुजाफल (घुमची) को तागे मे गूथकर आभूषण स्वरूप गले मे पहनती थी।[138]

स्त्रियो की दशा– समाज मे स्त्रियो का स्थान– परिवार रूपी रथ के सफल सचालन के लिए स्त्री और पुरूष रूपी दो पहियो का होना आवश्यक होता है। यद्यपि समाज मे स्त्रियो को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था तथापि पुत्री जन्म को अच्छा नही माना जाता था। ज्ञान पचमीकथा[139] तथा उपमितिभव प्रवचकथा[140] के अनुसार अधिक सख्या मे पुत्रियो का होना नरकवत था। साधारणतया लोग पुत्र प्राप्ति की ईच्छा करते थे।[141] पुत्र जन्म पर उत्सव इत्यादि मनाये जाते थे और देवताओ की पूजा की जाती थी।[142] परमारकाल मे मे यत्र नार्यस्तु पूर्ज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता[143] के सिद्धात का पालन किया जाता था। उनके कर्तव्यो की इतिश्री केवल पारिवारिक जीवन तक ही नही हो जाती थी। सामाजिक जीवन से भी इनका पूर्ण सम्बन्ध रहता था।

राजाभोज ने इनके कर्तव्यो के बारे मे कहा है कि "स्त्री प्रत्येक समय पुरूष की सहयोगी होती है। पुरूष के कार्यों मे कुशल सलाहकार का, कर्तव्यो मे दासी का, स्नेह देते हुए माता का, अपनी क्षमाशक्ति द्वारा मानो पृथ्वी का, धर्मकार्यो मे पत्नी का और शय्या पर मानो वेश्या का व्यवहार करती हुई, स्त्री कुल का उद्धार करती है।[144] पुत्र जन्म के समान पुत्री के जन्म पर भी नृत्यगान का आयोजन करके परमार लोग अपनी प्रसन्नताये मे प्रकट करते थे।[145]

नारी शिक्षा– उच्च परिवारो मे उत्पन्न कन्याओ की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था। उनकी शिक्षा मे सगीत, गायन, वादन, नृत्य और चित्रकला इत्यादि सम्मिलित थे। उनको धार्मिक व दार्शनिक विवादो मे भाग लेने का अवसर भी प्राप्त होता था परन्तु यह सामान्यत न होकर विरलता था। सामान्य परिवारो मे स्त्रिया अशिक्षिता रहती थी। कुछ ऐसी स्त्रियो के उदाहरण भी उपलब्ध है जो दर्शन, धर्म तथा साहित्य मे रूचि रखती थी। योगेश्वरी नामक महिला उज्जैन के एक शैव आश्रम की प्रमुख थी।[146] परमारशासक उपेन्द्रराज के दरबार मे सीता नामक कवियित्री रहती थी जिसने उस नरेश की प्रशसा मे अनेक गीत लिखे थे।[147] परमारशासक उदयादित्य के झालरापाटन अभिलेख की लेखिका पडिता हर्षुका थी।[148] गार्हस्य धर्म की शिक्षा के अतिरिक्त लडकियो को वेद पुराण, उपनिषद नाट्यकला एव सगीत कला की भी शिक्षा दी जाती थी।[149] कुछ स्मृतिकारो ने स्त्रियो के लिए वेदाध्ययन का निषेध किया है[150] परन्तु परमारकालीन स्त्रियो को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त था। इस काल मे कवियित्री सीता ने वेद पुराण, रघुवश महाकाव्य, वात्सायन कामसूत्र तथा चाणक्य राजनीतिशास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन किया था। विवाह पूर्व कन्याये अपने माता पिता के सरक्षण मे रहती थी।[151]

विवाह–

विवाह गृहस्थ आश्रम का आरम्भ एव सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण मान्यता है। विवाहोपरान्त पति ही कन्या का स्वामी होता था। व्यवस्थाकारो ने सगोत्र और सपिण्ड विवाह को वर्जित बताया है। वर परीक्षण मे जाति, गोत्र, पिण्ड, प्रवर, शिक्षा, आयु, गुण, धन जन्मस्थल इत्यादि प्रमुख विचारणीय बिन्दु थे। विवाह मे माता पिता बधू को सम्पत्ति आभूषण इत्यादि उपहार मे दते थे।[152]

ऐसे उदाहरण भी उपलबध है जब राजपरिवारो के वैवाहिक सम्बन्ध पारस्परिक युद्धो के उपरान्त की गई सन्धियो का परिणाम होते थे।[153] यथा परमार शासक उदयादित्य की पुत्री श्यामलदेवी का विवाह मेवाड के गुहिल शासक विजय सिह से इसी उद्देश्य से किया गया था।[154]

परमारशासक उदयादित्य ने चाहमान द्वितीय विग्रहराज से राजमती अथवा राजदेवी नामक एक राजकुमार का विवाह करके चाहमानो से मित्रता स्थापित की थी।[155]

मेघातिथि के अनुसार लडकी का विवाह आठ वर्ष की आयु मे होना चाहिये।[156] अभिलेखो मे विवाह योग्य वर्ष का विवरण उपलब्ध नही होता। सोमदेव ने पुत्री के विवाह की आयु 12 वर्ष बतायी है।[157] अर्णोराज की 18 वर्षीय पुत्री का विवाह कुमारपाल चौलुक्य से लुआ था।[158] तिलकमजरी से ज्ञात होता है कि कभी–कभी बालिकाओ के उत्पन्न होने के पूर्व ही उनके विवाह निश्चित कर दिये जाते थे।[159]

इस काल मे अतर्जातीय अनुलोम विवाह के भी कतिपय उदाहरण भी उपलब्ध होते है – नाडोल के शासक लक्ष्मण ने एक वैश्य कन्या से विवाह किया था।[160] स्वयवर प्रथा अपवाद स्वरूप ही अपनाई जाती थी।

अभिलेख से ज्ञात होता है कि रानिया धार्मिक तथा जनकल्याणकारी कार्यो के लिए दान देने मे रुचि लेती थी। परमारशासक पूर्णपाल की विधवा बहिन लाहिनी ने सूर्य मन्दिर का जीर्णोद्धार और वटपुर मे एक बावडी का निर्माण करवाया था।[161] धारावर्ष की रानियो श्रृगारदेवी व गीगादेवी ने एक बावडी बनवाकर शातिनाथ के मदिर को भेट की थी।[162]

समाज और परिवार मे 'माता' का अत्यधिक गौरवपूर्ण स्थान था।[163] पूर्वगामी युग के समान लोग अपने माता पिता के धार्मिक कल्याण एव पुण्यार्जन हेतु दान दिया करते थे। परमार शासक यशोवर्मन ने अपनी माता सोमलादेवी की जयन्ती के अवसर पर भूमिदान किया था।[164]

दहेज

परमारयुगीन अभिलेखो मे दहेज का कोई उल्लेख नही मिलता है।[165] ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान की तरह दहेज की माग नही की जाती थी। परन्तु कन्यापक्ष उपहार स्वरुप वर पक्ष को यथास्थिति धनधान्य से युक्त कन्या की विदाई करता था जिसे स्त्रीधन कहा जाता था।

बहुविवाह

परमार कालीन अभिलेखो से ज्ञात होता है कि राज परिवारो मे बहुपत्नीत्व का प्रचलन था। धनाढय और सामन्त भी इसका अनुकरण करते थे। उदयादित्य, भोज और अर्जुनवर्मन आदि राजाओ की कई रानियॉ थी।[166] परमार राजवश की आबूशाखा के शासक धारावर्ष के दो रानियॉ थी – गीगादेवी और श्रृगारदेवी।[167] अलबरुनी का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमश चार, तीन, दो और एक पत्नी रख सकते थे।

सतीप्रथा–

सतीप्रथा का प्राचीनतम् ज्ञात स्रोत भानुगुप्त का एरण अभिलेख है। परमारयुगीन अभिलेखो एव साहित्य मे सतीप्रथा का कोई उल्लेख नही मिलता है। इसकाल मे चाहमान शासक अजय पाल की मृत्यु होने पर उसकी तीन रानिया सती हो गयी थी।[168] राठौर भूवणि के पुत्र सलखा की मृत्यु होने पर उसकी तीन रानिया सलखण देवी चहुवाणी, सावलदेवी सोलकिणी और सेजड देवी गहलोतणी सती हुई थी।[169] धर्कट (वैश्य) जातीय और पोचस गोत्रीय समधर के पुत्र की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी सती हो गई थी।[170] धर्मशास्त्रो के अनुसार सतीप्रथा मुख्यत राजपूतो तक ही सीमिति थी। वह भी पूरे राजवशो मे नही। आगिरस के अनुसार ब्राह्मण पत्नी का सती होना आत्मघात के समान है। इससे न तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है न ही उसके पति को।[171] सती न होने पर विधवाये पारिवारिक सरक्षण मे रहती थी। परमार शासक पूर्णपाल के बसतगढ अभिलेख से ज्ञात होता है कि पूर्णपाल की विधवा बहिन लाहिनी अपने भाई के सरक्षण मे रह रही थी।[172] वे विधवा रानिया जो राजनैतिक कारणो से सती नही होती थी वे सत्ता का उपयोग करती थी यथा – पृथ्वीराज तृतीय के पिता सोमेश्वर की अल्पायु मे मृत्यु मे मृत्यु होने पर कुछ समय के लिए उसकी माता कर्पूरदेवी ने सरक्षिका के रुप मे शासन किया था।[173] ऐसा प्रतीत होता है कि सती प्रथा आवश्यक एव सामान्य प्रथा नही थी। यह राजपूतो के कुछ वशो तक ही सीमित थी। यदा कदा वैश्यो मे भी मिलता है। परमार वश मे इसका कोई उदाहरण नही है। ब्राह्मण भी इसके अनुयायी नही थे।

विधवा विवाह–

स्त्रियो का पुनर्विवाह नही होता था। विधवाये समाज मे साधारण रुप से जीवन व्यतीत करती थी। सामान्यतया वे धार्मिक कृत्यो मे अपना जीवन व्यतीत करती थी। आबू शासक पूर्णपाल की बहिन लाहिनी देवी ने अपने पति विग्रहराज

की मृत्यु के उपरान्त अपना जीवन साधारणरुप से बिताया। उसने वटपुर मे एक सूर्य मदिर का जीर्णोद्धार एव एक तालाब का निर्माण कराया।[174]

उत्तराधिकार—

परमार काल मे विशेषतया परमारवश मे स्त्रियो को आदरणीय स्थान प्राप्त थे। समाज मे आदरणीय स्थान के साथ ही स्त्रियो को कुछ कानूनी अधिकार भी प्राप्त थे। लडकिया भी अपने पिता सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी। उन्हे अपने भाइयो को प्राप्त सम्पत्ति की तुलना मे चौथाई हिस्सा मिलता था।[175] विधवा पत्नी अपने पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी तो नही होती थी किन्तु जो व्यक्ति उसके पति की मृत्यु पर उत्तराधिकारी होता था वह उस विधवा को आजीवन भोजन वस्त्र देने के लिए बाध्य होता था।[176] मनु जैसे स्मृतिकारो ने भी पत्नी को पति की सम्पत्ति का हकदार नही माना है।[177]

स्त्रियो को भूमिदान करने का भी अधिकार था। आबू शासक प्रह्लाद देव की पत्नी ने जेन विद्वान जयदेव को अजाहरी नामक गॉव की कुछ भूमिदान दी थी।[178] इसी प्रकार धारावर्ष की पत्नी श्रृगारदेवी ने भी शातिनाथ के मन्दिर के लिए भूमिदान किया था।[179]

गणिकाये और देवदासिया—

परमार काल मे गणिकाओ और देवदासियो का उल्लेख अभिलेखो मे मिलता है। बसतगढ अभिलेख मे उल्लिखित है कि वटपुर नगर पुराण पाठी ब्राह्मणो, गणिकाओ और सैनिको से सुसज्जित था।[180] प्राचीन काल मे साधारणतया उच्चकोटि की गणिकाये शिक्षिता तथा कामशास्त्र मे निष्णात होती थी।[181] अपने नृत्यगान तथा हावभाव से लोगो को आकृष्ट करने वाली उस समय की गणिकाओ की यह विशेषता थी कि वे केवल धन की ही लोभी नही थी बल्कि वे अपने सम्पर्क

से आने वाले पुरुषो के गुणो की ओर विशेषरुप से ध्यानदेती थी। वे गुणयुक्त एव कुलीन पुरुषो से ही अपना विशेष सम्पर्क रखती थी।[182] राजाओ के अत पुर मे भी कुछ गणिकाये रहती थी जो उसके महल मे प्रवेश करने पर उनका मगलाचरण आदि करती थी।[183] मनोरजनार्थ वेश्याये शासको के साथ कभी–कभी युद्धभूमि मे भी जाया करती थी।[184] गणिकाओ को समाज का अभिन्न अग माना जाता था और धनीवर्ग तथा राजसभाओ मे इनको सम्मान प्राप्त था।[185] वि0स0 1200 के नाणा मे प्राप्त ताम्रपत्र मे विलासिनी और मेहरी नामक देवदासियो का उल्लेख हुआ है।[186] जिस गधर्वशाला मे गणिका कन्याओ को शिक्षा दी जाती थी वहा सभ्य परिवार की कन्याये नही पढती थी।[187] सामान्त अपने स्वामियो को सुन्दर गणिकाये भेटकर उन्हे प्रसन्न करते थे। ऐसा विवरण हर्षनाथ अभिलेख[188] से प्राप्त होता है।

<u>व्रत–</u> अभिलेखो मे श्रावण की महाचर्तुर्दशी, एकादशी, शिवरात्रि इत्यादि व्रतो का वर्णन हुआ है।[189] अलवरुनी ने हिन्दू समाज मे प्रचलित निम्नलिखित व्रतो का उल्लेख किया है – (1) देवशयनी एकादशी व्रत (2) असाढ शुक्लपक्ष की अष्टमी का व्रत (3) देव उठनी एकादशी व्रत (4) पौष की षष्ठी को सूर्य का व्रत (5) मार्ग शीर्ष मे तीज को गौरी तृतीय का उत्सव[190] कर्पूरमजरी मे 'गौरी तृतीया' व्रत का वर्णन किया गया है।[191]

<u>उत्सव–</u>

परमारकाल मे त्योहार तथा उत्सव अत्यन्त उत्साह के साथ आयोजित किये जाते थे। भिनमाल के जगत स्वामी के सूर्य मन्दिर से प्राप्त अनेक अभिलेखो से इसकी पुष्टि होती है। भिनमाल मे अश्विन माह मे आयोजित एक उत्सव मे देवताओ के अराधनार्थ स्थायी व्यवस्था हेतु विभिन्न जातियो के लोगो द्वारा भेट प्रदान की जाती थी।[192] जालौर के समर सिह के अभिलेख[193] से ज्ञात होता है कि दीपोत्सव के दिन पूर्णदेवसूरि के शिष्य रामचन्द्राचार्य ने नवनिर्मित मण्डप मे स्वर्ण कलश निर्मित करवाया। आबू के लुनाबासी मदिर की प्रतिष्ठापना के समय से वहा

वार्षिक उत्सव आयोजित किये जाते थे।[194] यह उत्सव चैत के कृष्णपक्ष की तृतीया को आरम्भ होता था और आठ दिनो तक चलता रहता था। उत्सव के मध्य स्नान पूजा समारोह सम्पन्न किये जाते थे। अलबरुनी ने बसन्तोत्सव का वर्णन किया है।[195] पुत्र जन्मोत्सव भी मनाये जाते थे।[196] राजाओ द्वारा नये प्रदेशो की विजय के उपलब्ध मे उत्सवो का आयोजन किया जाता था। कई अभिलेखे से ज्ञात होता है कि भोज परमार ने कोकण विजय पर्व और कोकणग्रहण विजय पर्व मनाये थे।[197] मेलो का आयोजन भी किया जाता था ।

<u>तीर्थस्थल–</u>

प्राचीन काल से ही भरतीय समाज मे तीर्थयात्रा का महत्व था । मौर्य साहित्य मे तीर्थयात्रा को धम्म यात्रा कहा गया है। परमार काल मे धर्म अनुयायियो के पुष्कर, विजोलिया, मिनाल, रिवासा, घोटार्सी और हर्षनाथ इत्यादि प्रमुख तीर्थस्थल थे। मिनाल शैवधर्मावलम्बियो का प्रमुख स्थल था तथा महानाल मन्दिर के लिए प्रसिद्व था। वि0 स0 1226 के विजौलिया अभिलेख मे भी इसका उल्लेख एक तीर्थस्थल के रूप मे हुआ है।[198] विजौलिया भी शैवो का एक प्रमुख केन्द्र था । यहॉ लोग विभिन्न स्थानो से महाकाल के मन्दिर के दर्शन करने तथा मन्दाकिनी कुण्ड मे स्नान करने के लिए आते थे।

'विविधतीर्थकल्प' के अनुसार अचलेश्वर अर्बुदाचल, कुण्डुगेश्वर, अभिनन्दादेवी और उज्जयिनी इत्यादि प्रमुख जैनतीर्थस्थल थे।[199]

<u>वस्त्राभूषण–</u>

आधोवसन (धोती) और उत्तरीय (चादर) लोगो के वस्त्र होते थे।[200] स्त्रिया घाघरा और चोली भी पहनती थी।[201] इस समय चोली को कूपार्सक नाम से सबोधित किया जाता था।[202] पुरूष धोती चादर के अतिरिक्त अगरखा

(नेत्रकूपार्सक)[203] पहनते तथा सिर पर पगडी बाधते थे। पकडी अधिकाशत रेशमी होती थी।[204] धनी लोग कामदार वस्त्र पहनते थे।[205] चीन के बने हुए रेशमी वस्त्रो का धनी लोग अधिक उपयोग करते थे।[206] ऋतु के अनुकूल ऊनी, सूती एव रेशमी वस्त्रो के उपयोग किये जाते थे।[207] जाडे के दिनो मे ऊनी वस्त्रो के अतिरिक्त सिहचर्य भी धारण किये जाते थे।[208]

कुण्डल, हार, भुजबन्द, कगन, अगूठी और करधनी इस समय के मुख्य आभूषण माने जाते थे।[209] शरीर के विभिन्न अगो मे पहने जाने वाले ये आभूषण विभिन्न प्रकार के होते थे। कानो मे दन्तपत्र[210], क्यूयादि[211], कुण्डल[212] श्रवणपाश[213] और कर्णफूल[214] नामक आभूषण धारण किये जाते थे। कभी–कभी तालपत्र भी कानो मे पहना जाता था।[215] इसी प्रकार हार भी विभिन्न प्रकार के होते थे जैसे जालकठी[216] (मोती का बना हुआ हार) साधारण हार[217] एकावलीहार[218] (एक लडी की मोती की माला) सोना जाल[219] (स्वर्णहार) और चचलहार[220] (नाभि तक लटकता हुआ) कलाई एव भुजाओ मे कगन, कैमूर[221], चद्रहाड[222], रिया[223] और चूडिया[224] पहनी जाती थी। स्त्रिया पैरो मे नूपुर पहनती थी।[225] स्त्रीपुरुष दोनो ही अगुलियो मे रत्नजडित अगूठिया पहनते थे।[226]

लोग सिर पर बाल रखते थे तथा स्त्रिया अपनी वेणी को फूलो से अलकृत[227] करती थी। वे ललाट पर कुकम की बिन्दी तथा विवाहित स्त्रिया माग मे सिदूर लगाती थी।[228] स्त्री पुरुष दोनो अपने शरीर मे चदन आदि सुगन्धित द्रव्यो का विलेपन भी करते थे।[229] दातो को रगीन बनाने के लिए लोग पान खाते थे।[230]

<u>खान पान–</u>

इस समय के मुख्य खाद्य पदार्थ चावल, दाल गेहूँ, जौ, चना, फल, घी, दूध, दही, मट्ठा और मक्खन आदि थे।[231] मूग, मसूर, कोदौ, उरद और चने का उपयोग दाल के रूप मे किया जाता था।[232] चावल कई प्रकार से बनाया जाता था

विशेषकर दूध मे पकाकर खाया जाता था। किसी आगनतुक के आने पर उसके स्वागतार्थ लोग उसे खीर बनाकर खिलाते थे।[233] राजमार्तण्ड मे प्रमाण मिलता है कि गाय के दूध मे चावल पकाकर खाने से मुनष्य दीर्घायु होता है। और उस पर वृद्धावस्था का प्रभाव जल्दी नही होता।[234] चावल की तुलना मे गेहूँ कम खाया जाता था। इससे निर्मित विभिन्न प्रकार भगवान को नैवेद्य के रुप मे चढाये जाते थे।[235] गेहूँ के आटे के दीपक भी भगवान के सम्मुख जलाये जाते थे।[236]

अनेक पेय पदार्थो के भी उपयोग होते थे जिनमे नारियल का पानी, ईख का रस और मधु अधिक महत्वपूर्ण थे।[237]

राजमार्तण्ड के अनुसार प्राय सभी वर्णो के लोग एकादशी और पूर्णिमा जैसी तिथियो अथवा पर्वों को छेडकर मास भक्षण करते थे।[238] परन्तु ब्राह्मणो के मास खाने का उल्लेख केवल भोज के एक अभिलेख मे ही मिलता है।[239] अभिलेखो मे खाद्य पदार्थों के नामो का प्राय अभाव सा है। अभिलेखो मे आटा, चावल को घी मे पकाये जाने का उल्लेख है।[240] नैवेध तैयार करने के लिए दो सेर आटे मे आठ कलश घी की आवश्यकता पडती है।[241] द्वितीय भीमदेव के आबू अभिलेख[242] मे हीग, जायफल, जावित्री, मेथी, आवला, हरड, खाण्ड, गुड, कालीमिर्च, बहेडा, महुआ, नारियल और दालो के प्रयोग का वर्णन मिलता है।

अघूर्णा अभिलेख मे[243] गुड, मजिष्ठ, नारियल, सुपाडी, तेल, जव इत्यादि के व्यापार की मण्डियो का विवरण प्राप्त होता है।

अलबरुनी ने सूचित किया है कि ब्राह्मण को गैडे के मास खाने का विशेष अधिकार था।[244]

'समराइच्चकहा' मे चण्डिका की पूजा मे भैसे की बलि देकर उसका मास प्रसाद रुपेण ब्राह्मणो द्वारा खाये जाने का वर्णन है।[245] 'तिलकमजरी' से ज्ञात होता है कि स्त्रिया और पुरुष पान मे कर्पूर मिलाकर खाते थे।'[246]

बाउक की जोधपुर प्रशस्ति से स्पष्ट होता है कि आठवी शताब्दी मे क्षत्रिय सुरापान करते थे। अलबरुनी ने भी लिखा है कि क्षत्रिय वर्ग के लोग मद्यपान करते थे। यह प्रतीत होता हे कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ग सामान्यत मास भक्षण करता था किन्तु ब्राह्मण समय विशेष पर ही ऐसा करते थे।[247] यह भी उल्लेख मिलता है कि सूकर, हिरण, खरगोश, भेड, बकरी, मछली और कहुये जैसे जीवो का मास भक्षण किया जाता था।[248] अलबरुनी कहता है कि गाय, घोडे, खच्चर, ऊँट, हाथी, कौवे, तोते और बुलबुल का मास भक्षण होता था।[249] लोग मद्यपान भी करते थे।[250] किन्तु ब्रत आदि के दिन यह निषिद्ध था।[251] भोजन मे शुद्धता का विशेष ध्यान दिया जाता था। रसोईगृह मे भोजन बनाने के लिए एक स्वच्छ वस्त्र रखा जाता था, जिसे पहनकर ही रसोइया भोज्य पदार्थों को पकाता था।[252] भोजन और पेयो के वर्तन सोने, चादी, कासे, शीशे और मिट्टी के हुआ करते थे।[253]

सामाजिक प्रथाये एव अधविश्वास–

सामान्यत सामाजिक प्रथाओ के कारण ही साधारण विश्वास बनते है। परमार कालीन समाज मे भी अनेक विश्वास ज्ञात होते है। जिनमे कुछ अधविश्वास भी थी। उस समय तन्त्रमत्रो का खूब प्रचार था। स्त्रिया अपनी इच्छापूर्ति के लिये गले एव बाहो मे ताबीजे बाधती थी। झाडफूक करने वालो का एक अलग वर्ग ही था जो ताबीज आदि देते थे। स्त्रिया सतानोत्पत्ति के लिए जडी बूटियॉ पीसकर पीती थी।[254]

वशीकरण विद्या भी प्रचलित थी। इसमे विशेषत लोग गरुडमन्त्र का उपयोग करते थे।[255] अन्य उपायो द्वारा भी जैसे तिलक, अजन आदि लगाकर दूसरो को अपने वश मे किया जाता था।[256] इसके अतिरिक्त स्तम्भन, स्तोम (प्रवृत्त कार्यो मे प्रतिबन्ध), उच्चाटन तथा विद्वेषण आदि के भी प्रयोग प्रचलित थे।[257]

भूतप्रेत आदि अदृश्य योनियो मे भी लोगो का विश्वास था। उनसे

बचने के लिए लोग समयानुसार विविध प्रकार के धूपो को जलाते एव प्रसूतिगृह के चारो ओर मत्रमुक्त भस्म की एक रेखा खीचते थे।[258] प्रेतात्माओ की तृप्ति के लिए लोग श्राद्ध एव पिण्डदान आदि क्रियाये करते थे। यशोवर्मन ने अपनी माता मोमलदेवी के वार्षिक श्राद्ध के दिन ब्राह्मणो को कुछ भूमि दान दी थी।[259] कभी–कभी मन्त्रबल से लोग अदृश्य शक्रियो को उत्पन्न करके अपनी कार्यसिद्धि भी करते थे। चालुक्य शासक द्वारा धारानगरी के अधिकृत हो जाने पर यशोवर्मन के गुरु ने अपने मन्त्रो के बल से शत्रुओ का नाश करने के लिए एक कृत्या उत्पन्न की थी।[260] लोग कर्णापिशाचिनी विद्या मे भी विश्वास करते थे।[261]

स्वर्ग और नरक मे प्राय सभी लोगो की आस्था थी। धर्म स्वर्ग प्राप्ति का प्रधान साधन माना जाता था।[262] ऐसा विश्वास था कि किस प्रकार भूमिदान से मृत्यु के बाद स्वर्ग की प्राप्ति होती है उसी प्रकार दान की हुई भूमि का अपहरण करने तथा दूसरो को इसके अपहरण के लिये प्रेरित करने वालो को नरक मिलता है।[263]

ज्योतिषियो की भविष्यवाणी मे लोगो का बहुत बडा विश्वास था। लोग अपनी हस्तरेखाये दिखाते और उनके कथनानुसार किसी शुभफल की कामना से व्रत एव पूजा भी करते थे।[264] वाक्पतिराजमुज ने ज्योतिषियो की इस भविष्यवाणी पर विश्वास करके कि उसका भतीजा भोज चक्रवर्ती सम्राट बनकर भविष्य मे अधिक दिनो तक राज्य करेगा, उसे मार डालने की आज्ञा दे दी।[265]

मनोरजन के साधन–

जीवन मे श्रम एव अध्यावसाय का जितना महत्व है इससे जरा भी कम महत्व मनोरजन का नही है। विवेच्यकाल मे लोग भी विभिन्न प्रकार से अपना मनोरजन करते थे।

मनोरजन के लिए सास्कृतिक ढग की साहित्यिक गोष्ठियो का आयोजन किया जाता था, जिसमे साहित्यिक विषयो पर विचार और कठस्थ कविताओ का पाठ आदि होता था।[266] इसके अतिरिक्त बडे–बडे विद्वानो को आमत्रित कर शास्त्रार्थ आदि के आयोजन भी किये जाते थे।[267] कभी–कभी कुछ समस्याये भी रखी जाती थी जिनका विद्वद्वर्ग समाधान करता[268] था।

नाट्य एव अभिनय अवकाश के समय लोग नाटको द्वारा भी अपना मनोविनोद करते थे। कभी–कभी राज्य की ओर से भी नाटको के मचन की व्यवस्था भी की जाती थी। प्राय राजमहल अथवा देवमदिर ही रगमच के स्थल चुने जाते थे।[269] अर्जुन वर्मन के शासनकाल मे वसन्तोत्सव के अवसर पर राज्य की ओर से परिजातमजरी नामक एक नाटिका का मचन हुआ था।[270]

आखेट–

शिकार मनोरजन का एक प्रमुख साधन था।[271] वैदिककाल से ही शिकार की प्रथा प्रचलित है।[272] सिधुराज, भोज तथा आबू शासक धारावर्ष[273] आदि शिकार के अत्यधिक प्रेमी थी। राजाभोज की आखेट प्रियता पूर्णत स्पष्ट है। विख्यात है कि एक बार जब वह धनपाल कवि के साथ जगल मे शिकार करने के लिए गये थे। उनके हिरण के शिकार के बाद धनपाल ने निर्दोष हिरण मारने पर एक कविता बनाकर राजाभोज को सुनाया[274], जिससे परमार भोज के मन मे बडा क्षोभ उत्पन्न हुआ। लोग शिकार के लिए जाते समय उपकरणो के रुप मे शिकारी कुत्ते भी साथ ले जाते थे।[275]

घूत–

घूत लोगो के मनोविनोद का एक अन्य प्रमुख साधन था।[276] अलबरुनी के अनुसार इसके लिए एक अलग भवन होता था जिसमे पासा फेकने के लिए

एक विशेष नाप का फलक रखा जाता था।[277] घूतगृह से एक निश्चित धनराशि राजा को कर के रुप मे प्राप्त होती थी।[278] सारणेश्वर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि मन्दिर के निर्वाह के लिए जुआरी से एक पेटक (एक दाव की जीत का भाग) लिये जाने की व्यवस्था की गई थी।[279] शतरज के प्रति भी लोगो की रुचि थी।[280] किन्तु धार्मिक पर्वो पर लोग उसमे भाग नही लेते थे।[281]

सगीत और नृत्य–

सगीत और नृत्य द्वारा भी लोग अपना मनोरजन करते थे।[282] सगीत मे ढोल, मृदग, फाफ, तुरही और फल्लरी आदि कई प्रकार के वाद्यो का उपयोग किया जाता था।[283] वीणा और वासुरी बजाने के भी लोग शौकीन होते थे।[284] अर्जुन वर्मन स्वय वीणा वादन का विशेषज्ञ था।[285]

इसके अतिरिक्त लोग जल क्रीडा एव मद्यपान भी करते थे।[286] क्रीडा पर्वत पर भी जाते थे।[287] वृद्धजन सायकाल कथा वार्ताओ द्वारा अपना मनोविनोद करते थे।[288]

1 पी0वी0 काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ – 119

2 गौतम 10/1–3 द्र वशिष्ठ 2।13–19 मनु0 1/88–90

3 आपस्तम्ब – 1/1/7–8

4 ब्राह्मणोडस्य मुखमासीद बाहू राजन्य कृत ।
उदरूतदस्य यद्वैश्य पद्म्या शूद्रो अजायत ।।
ऋग्वेद सहिता – 10/90/12

5 ति0म0 पृष्ठ – 11

6 JBBRAS VOL XXI P 351

7 Elliot and Donson Vol I P 19

8 E I Vol VIII Page 206

9 I A Vol XIX Page 354

10 Bom GAZ Vol 1 part I Page 473

11 E1 Vol XIX Page 238

12 Bom GAZ Vol VIII Page 146

13 JASB VOL V 1909 PAGE 167

14 राजपूताने का इतिहास –1– पृष्ठ 69–88
History of Medieval Hindu India Vol II page 330-33.

15 ब्रह्मक्षत्रियकुलीन प्रलीनसामन्त चक्रनुतचरण ।
सकलमुकृतैकपुज श्रीमान मुजार्श्चरजयति ।। पिगलछदसूत्र वृत्ति पृ0 139

16. ब्रह्मक्षत्रस्य यौ योनिर्वशो राजर्षिसत्कृत ।
क्षेमक प्राप्य राजान सस्थान प्राप्स्यते क्लौ ।। विष्णु पुराण – 4/21/18

17 काले कृतयुगे चैव क्षीणै त्रेतायुगे पुन
वीजार्यन्ते भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वे पुन ।। वायुपुराण अध्याय

18 JASB Vol V 1909 page 186.

19. Champa page 215

20 E I. Vol. I page 305

21 History of the Hindu Medival India Vol.II page 62

22 I A Vol VI Page 51,53 E I Vol XXIII Page 202, 109 110 Vol XI page 183 Vol IX P 115-16 Pio Rep ASI, Vestern Circle 1920-21 P 54

23 IHQ Vol VIII P 312

24 I A Vol XLV page 77-90 Vol XVI Page 325

25 E I Vol IX P 115 16 Vol XXIV Page 256

26 Ibid Vol IX Page 122

27 I A Vol XIX Page 353

28 Ibid Vol XVI Page 255

29 E I Vol IX Page 122

30 JASB Vol VIII Page 737

31 1 HQ Vol VIII Page 312

32 I A Vol VI Page 54

33 E I Vol XI P 183

34 D C Ganguli History of the Paramara Dynasty Page 240

35 JASB Vol XI Page 221, E I Vol IX P 115-16 Vol XIX P 236 JBBRAS Vol XXIII P 76 IA Vol XLVP P 78

36 E I Vol XIX P 238

37 Ibid Vol XIX 243

38 1A Vol XIX P 353

39 JASB, Vol VII P 737

40 1A Vol XIX p 349

41 E1 Vol XIX P. 243 Vol XXXII page 140-41

42 Ibid Vol XXXII Page 140-41

43 Ibid Vo Vol XXIV P 231 Vol XXXII P 140-41

44 मनुस्मृति 10/75

45 E.I. Vol. XXXII Page 140-41

46 Ibid Vol XIX Page 236

47 IA.Vol VI p 48

48 IHQ Vol VIII Page 306,

EI Vol XVIII Page 320

49 1A Vol XIX Page 312

50 E 1 Vol XXXI P 81, 1A Vol XL III P 193

51 Sachau Vol II P 132

52 श्रृ० म० पृ० 28

53 Hıstoıy of Dharmashastı a Vol II Part –1 Page 126

54 1A Vol X LV P 77

55 JAOS Vol VII P 25-33 FI Vol IX P 109

56 EI Vol IX P 123

57 रेउ राजाभोज पृष्ठ 52

58 नृत्यमजरी पृष्ठ – 55

59 EI Vol XIX P 236

60 Ibıd Vol P 76

61 E/1 Vol IX Page 11

62 Ibıd Vol XIX Page 73

63 Ibid Vol IX Page 115

64 JAOS Vol VII Page 33

65 मुक्ता विप्रकरानरातिनिकरान्निर्जित्य तत्किचन।
प्रापत्सप्रति सोमसिह नृपति सोमप्रकाश यश।
E 1 Vol VIII Page 211

66 Sachau Vol II Page 149

67 1-1A, 43 Page 193-94

68 Sachau Vol. II Page 162

69 Hıstory of Dharmashastra Vol II Part I Page 138-54

70 Sachau Vol. II Page 136

71 उपेन्द्रराजो द्विजवर्गरत्न सौर्याज्जितोत्तग नृपत्वमान E1 Vol. I Page 234

72 I A Vol VI Page 51

73 Ibid Vol XLV P 77

74 E I Vol VIII P 220
75 Ibid Vol VIII p 206
76 1A 20 page 210
77 E I 26 page 80
78 J A S B 50 page 48 B I 5 page 83-87
79 डा0 एस0पी0 व्यास राजस्थन के अभि0 का सा0 अध्ययन पृष्ठ 113
80 एस0ई0 जिल्द पाचवी परिशिष्ठ पृष्ठ 53 स0 362
81 सकल विद्याचक्रवर्ति कृत 'गद्यकरणमृत'
Annual Report Myssor Aichaeological Dept 1929
82 याज्ञवल्क्यस्मृति 1,53 की टीका।
83 E I Vol I Page 154
84 Sachau Vol. II page 162
85 रा0थू0ए0 पृ0 439
86 E I Vol. XXI P 48 1A Vol XV P 162
87 डा0 एस0पी0 व्यास राजस्थान के अभि0का सा0 अध्य0 115
88 1-A, 29 page 189
89 Sachau Vol II page 136
90 कृ0क0 गृहस्थकाड पृ0 258
91 ति0 म0 पृ0 117
92 कृ0क0 गृहस्थकाड पृ0 258
93 E-1 Vol. XIV P. 298-303 Vol XXI P 48
94 Sachau Vol I page 101
95 मनु0 3/12 बौधयन धर्मसूत्र 1/11/13-14
96 A R.R M Ajmer 1927 page 3
97 बील Budhist record of the western world 1 page 64
98 वि0स0 1201 दिलवाडा (आबू) अभि0 E I 9 page 151
99 नाहर जे0ले0 स0 1 पृ0 248
100 वि0स0 1117 का भीनमाल अभि0 A C T of Rajasthan Page 395

101 वि0स0 1201 का दिलवाडा अभि0 E I 9 page 151
102 हर्ष स0 201 खण्डेला अभि0 अकबरनामा 1 पृ0 617
103 E I Vol XIV P 302 I A Vol XLV p 79
104 E I Vol VIII p 222
105 I A Vol XX p 312
106 Bom Gaz Vol I part I p 472
107 D Sharma P 246
108 आपस्तम्ब 1-1-1-7-8
109 पी0वी0 काणे धर्मशास्त्र का इतिहास 1 पृ0 148
110 जी0एन0 शर्मा राजस्थान का इतिहास पृ0 116
111 मेधातिथि – 3 पृष्ठ 156
112 डा0 व्यास राज0 के अभि0 का सास्कृ0 अध्य0 – 117
113 E I 24 page 329
114 राजुमदार Corporate lıfe ın Ancıent Indıa
115 गोपालचद्र सरकार A Trıtıse on Hındu Law p 143
116 द्र0 उदयनसुन्दरी कथा की भूमिका।
117 B I 2 Page 67-68
118 E I 10 page 20
119 मिताक्षरा 1 पृ0 335
120 1A 19 page 57
121 गो0ही0 ओझा मध्यकालीन भारतीय सस्कृति पृ0 48
122 पी0वी0 काणे धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0 128
123 व्याससमृति 1/10–11
124 P V Kane Hıstory of Dharmashstra – 128
125 E I 12 page 59
126 1A 41 page 203
127 EI 11 page 39.
138 Early chauhan dynastay page 203

139 P R A S W C 1907-8 page 49
130 वीर विनोद 2 पृ0 1197—98
131 A S I 1936-37 page 124
132 मनुस्मृति — 199
133 व्यास स्मृति 1—12—12
134 अलबरूनी का भारत 1 पृ0 101
135 1-E-I 11 पृ0 53—54
136 Early Chauhan Dynasty page 139-40
137 उपमितिभव प्रबन्च कथा — पृ0 —36
138 मनुस्मृति (10/51—56) मे आया है कि चाण्डालो को गाव के बाहर रहना चाहिए। उनकी सम्पत्ति कुत्ते व गदहे है। तथा शवो के कपडे ही उनके परिधान है। उन्हे टूटे फूटे बर्तनो मे भोजन करना चाहिए। उन्हे लगातार घूमते रहना चाहिए। वे रात्रि मे नगर या गाव के भीतर नही आ सकते उन्हे बिना सम्बन्धियो वाले शवो को ढोना चाहिए। वे राजाज्ञा से जल्लाद काा काम कर सकते है। वे फासी पाने वाले व्यक्तियो के परिधान, गहने एव शैया ले सकते है फाहियान (Record of Budhıst Kıngdom लेगे द्वारा अनुदित पृ0 43) ने भी लिखा है कि जब वे नगर या बाजार मे प्रवेश करते थे तोा लकडी के डडे से ध्वनि उत्पन्न करते चलते थे जिससे अन्यजन उनके स्पर्श से बच सके।
139 श्रृ0 म0 पृष्ठ 84
140 ति0म0 पृ0 163
141 ति0म0 पृ0 214
142 ज्ञान पचमी — 1, 14, 12
143 उपमितिवप्रवचनकथा पृष्ठ — 698
144 श्रृगारमजरी कथा — पृ0 85
145 तिलकमजरी — पृ0 — 17—18
146 मनुस्मृति 3/56
147 कार्येषु मत्री, करणेषुदासी, स्नेहेषु माता क्षमया धरित्री।
धर्म्मस्य पत्नी शयने च वेश्या षट्कर्मपि स्त्री कुलमुहरेतु।।
चाणक्य राजनीति शास्त्र 1/52
148 E I 11 page 221-22
149 नवसहसाक चरित 11वा पृष्ठ 76—78
150 J A.S.B 10 page 242.
151 तिलकमजरी पृष्ठ 214

152 समराइच्चकहा पृष्ठ 93—101

153 समुद्रगुप्त ने 'देवपुत्रषाहिषाहानुषाहिशकमुरुण्डै' एव सिहल तथा अन्य द्वीपो के शासको ने कन्याओ को प्राप्त किया था।

154 E I 2 Page 12

155 E I 26 Page 80

156 मनुस्मृति, 11, 4

157 प्रतिपाल भाटिया The paramaras P 286

158 द्वयाश्रय महाकाव्य 19 श्लोक 21—25

159 तिलकमजरी — पृष्ठ—52

160 पुरातन प्रबन्ध सग्रह पृष्ठ 102

161 E I 9 Page 12-15

162 ओझा—सिरोही राज्य का इतिहास पेज 24

163 मनुस्मृति (2/45) मे लिखा है कि आचार्य उपाध्याय से और पिता आचार्य से दश गुना सन्मान्य होता है। परन्तु पिता से भी माता हजार गुना सम्माननीया होती है।

164 E I 19 Page 351-52

165 Sachav vol II P 155

166 रास माला प्रथम पृ0 2 E I Vol XXI P 54, History of the Paramara Dynasty-242

167 प्रतिपाल भाटिया The Paramaras Page 178

168 E I 19 Page 8-9

169 एडमिनि वि0स01932 पृष्ठ71 अन्वेषण 1, पृष्ठ45 सती प्रथा पर द्रष्टव्य (1) धोलपुर अभि0वि0स0 898 Z DMG 40P-39

(2)उस्मा अभि0 वि0स0 1237 PRASWC 1911-12 Page 53

170 J P A S B. 12 पृष्ठ—106

(क) वि0स0 1243 का पुष्कर अभिलेख ARRM अजमेर 1919-20 पृष्ठ-3

(ख) वि0स0 1248 का उस्मा अभिलेख Ojha Gori Shanker Herachand जोधपुर राज्य का इतिहास 1-P-30

171 शर्मा–चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग–56

172 E I 9 Page 12-15

173 पृथ्वी राज विजय 9, 11, 34

174 E I Vol IX P-10

175 Sachau Vol II P 164

176 मनु0 9/185

177 History of Dharmashastra Vol III P 702

178 पार्थपराक्रम व्यायोग - Amendmus- 2

179 भारत के प्राचीन राजवश पृष्ठ – 79

180 E I 9 Page 12-15

181 Social Life in Ancient India P 199

182 बद्धरागाभिरपि नीचरतेप्व सत्लाभिर्लक्ष्मी मनोवृत्तिभिरिव पुरुषोत्तम गुणहार्याभिर्नपुनरेकान्ततोऽर्थानुरागिणीभि ससारेऽपि पारताबुद्धि निबन्धन – ति0म0 पृष्ठ 9 श्रृ0म0 कथानक 1–13

183 तिलकमजरी पृ0 53

184 ति0म0 पृष्ठ – 97

185 नाट्यशास्त्र (अ– 13 37) मे इन्हे विशेष शिक्षिता तथा सभ्य समझकर नाटको मे इनके द्वारा सस्कृतभाषा प्रयुक्त किये जाने की अनुमति प्रदान की गई है।

186 E I 33 Page 240

187 कामसूत्र पृ0 364

188 E I 2 Page 121-122

189 E I 11 Page 30 और 65 तथा द0कान्हडदेप्तबन्ध–1 पृष्ठ 159

190 अलबरुनी का भारत 2 पृष्ठ – 175 – 184

191 रा0श्रू0ए0 Page 469

192 E I XII Page 27

193 E I XI Page 55

194 E I VIII Page 204

195 Sachau 2 Page 178-79

196 तिलकमजरी पृ0 63–64

197 E I 18 Page 320-25 तथा E I 11 Page 181

198 E I - 26 Page 99-100

199 विविध तीर्थकल्प पृष्ठ 11, 15, 57, 79, 81 और 88

200 तिलकमजरी Page 57, 130, 186, 188

201 Prices of Wales Museum Line 38 52

202 तिलक मजरी पृ0–134 जनार्दन विनायक ने कूर्पासक का अर्थ चोली माना है (गीर्वाण लघुकोष पृ 165) क्षीर स्वामी ने इस शब्द का दो अर्थ माना है (अ) आप्रदी नर्वत्वुकस्य (घुटने तक लटकता कुर्ता) ब कूर्पर अस्यते दून्यास– स्त्रीणा – कुवलिकारयस्य (स्त्रियो के पहनने की चोली) अमर कोष छठा सर्ग श्लोक 118 ति0म0 पृष्ठ 134

203 वही पृ0 134 रासमाला I-Page 3

204 वही पृष्ठ 134, 189

205 श्रृगार मजरी पृष्ठ 74

206 ति0म0 पृष्ठ 130

207 युक्ति पृष्ठ 81–88 श्लो 19–25 ति0म0 पृष्ठ–83, श्लोक 32–38

208 दृयाश्रमहाकाव्य सोलहवा, 51–52

209 युक्ति पृष्ठ 81–88 श्लो0 19–25 वही पृष्ठ 83 श्लो0 32–38

210 ति0म0 पृष्ठ 301

211 Prince of Wales Museum Line 47

212 ति0म0 पृष्ठ 130

213 वही पृ0 226

214 वही

215 Prınce of Wales Museum - Lıne 68

216 Ibıd Lıne 5, 48

217 ति0म0 पृष्ठ – 301

218 Prınce of Wales Museum - Lıne 111

219 Ibıd Lıne 71

220 ति0म0 पृष्ठ 130

221 वही पृष्ठ 226

222 Prınce of Wales Museum Lıne 119

223 Ibıd Lıne 22

224 Ibıd Lıne 119, Sachau Vol I P 181

225 Prınce of Wales Museum Lıne 39

226 ति0म0 पृष्ठ 130

227 वही पृष्ठ 216, 239, श्रृ0म0 पृष्ठ 75, नवसहसाक चरित 14वॉ, 57

228 ति0म0 पृष्ठ 75, 189, 213 द्वयाश्रयमहाकाव्य 16वॉ, 54

229 श्रृ0म0 पृष्ठ 47, ति0म0 पृष्ठ–213 Prınce of Wales Museum Lıne 127

230 ति0म0 – पृ0 198

231 ति0म0 – पृ0 57

232 E I Vol V Page 295

233 ABORI Vol XXXVI P 313, Verse, 53

234 धर्म परीक्षा पृष्ठ 80, 81, 104

235 A K Majumdar P 134

236 ABORI Vol XXXVI Page 329 Verse 200

237 E I Vol XI Page 57

238 ABORI Vol XXXVI Page 313-14, Verse 53-54

239 ABORI Vol XXXVI Page 313-14, Verse 53-54

240 IHQ - Vol VIII Page 311

241 E I - 11 - Page 57

242 E I - 20 - Page 57

243 H I G 2 स0 170

244 E I - 14 - Page 207

245 अलबरुनी का भारत – पृष्ठ – 153

246 रा0 थू0 ए0 पृष्ठ – 467

247 E I - XVIII - Page 95

248 Socio Religious Condition of Northern India P 173

249 मानसोल्लास 3/13/1420, 1547, 1516, 1522–23, 1536–37

250 Sachau Vol II Page 151

251 तिलक मजरी पेज 8, 15

252 ABORI Vol XXXVI Page 313-14, Verse 54

253 ति0म0 पृष्ठ– 56–57

254 युक्ति0 पृष्ठ–57, श्लोक 86, ति0म0 पृष्ठ–55

255 ति0म0 पृष्ठ–53

256 ति0म0 पृष्ठ–139

257 वही पृष्ठ–191

258 वही

259 वही पृष्ठ 63

260 द्वयाश्रयमहाकाव्य 16वा0, 43 IA Vol XIX P 348

261 धाराशीश पुरोघसा निजनृपक्षोणी विलोक्यालिता,

चौलुक्याकुलिता तदत्ययकृते कृत्वा विलोत्पादिता।

सोमदेवकृत सुरथोत्सव काव्य पृ0 3

262 इस विद्या के द्वारा लोग भविष्य मे होने वाली घटनाओ को बताते है। भविष्य वक्ता के कानो मे एक अदृश्य शक्ति प्रश्नकर्ता के सभी प्रश्नो के उत्तर कह देती हे। ति0म0पृ0 53

263 प्राणास्तुणाग्रजलविन्दुसमा नराणाम्

धर्मसता परमहो परलोकयाने। IA Vol VI P 53, 54

EI Vol XI P 183 Vol III P 48-49

264 क–पष्टिवर्णसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिद ।

आच्छेता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत।।E I Vol IX P 123

ख–भूमि य प्रतिगृहणाति यस्य भूमि प्रयच्छति,

उमा तौ पुष्य कर्माणौ, नियत स्वर्ग गामिनौ। I A Vol XVI P 255

265 ति0म0 पृष्ठ 53

266 P C Tawney P 32

267 ति0म0 पृ0–85

268 Ain-E-Akbari- Zarrett Vol II P 216

269 सिधी जैन ग्रथमाला – ग्रथाक 42 पृष्ठ 13

270 प्रेक्षासगीतकानि स्युर्गन्धर्वे वासवेश्य च।

कार्यावैवस्वते शाला स्थाना दन्तिना तथा। स0पू0 15/33

271 E I Vol VIII Page 96

272 भोज प्रबन्ध – बल्लालकृत – जगदीशलाल पृ0 57

273 Rigvedic Culture P 221-22

274 नवसहसाक चरित ग्यारहवा सर्ग IA Vol L VI P 51

275 रसातल यातु तवात्र पौरुष कुनीतिरेषा शरणौ (शरणागत)

हयदोषवान्।

निहन्यतेयद्बलिनापि दुर्बलो हा हा महाकष्टमराजक जात।।

प्रचि मु पा – पृष्ठ–13 P C Tiwari P 55

276 हम्मीर महाकाव्य– IV पृ0–48

277 ति0म0 पृष्ठ 15

278 Sachau Vol I Page-182-85

279 E I Vol XIV. Page 302 Verse 75

280 B I 2 Page 67-68

281 ति0म0–पृष्ठ–13, 201

282 ABORI Vol XXXVI Page 313 Verse-51

283 ति0म0 पृष्ठ 149

284 वही पृष्ठ 192

285 ति0म0 – पृष्ठ 57, 151, 219

286 E I Vol IX Page 121 Verse 18

287 ति0म0 पृष्ठ 15, 137

288 वही पृष्ठ 15

अध्याय-3

परमार कालीन धार्मिक जीवन

परमार शासकों की धार्मिक नीति

धार्मिक –

सस्कृति का आधार धर्म है। सभ्यता एव सस्कृति की अध्ययन की पूर्णता के लिए सामाजिक आर्थिक एव सास्कृतिक स्थितियो का समग्र विवेचन आवश्यक है धार्मिक अवस्था स्वतत्रता, सौहार्द, सहिष्णुता से किसी राज्य की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। परमार नरेश वर्ण व्यवस्था के पोषक एव धर्मभीरु क्षत्रिय थे। परमार राजवश का राजचिन्ह गरुड और सर्प था।[1] किन्तु इस काल मे किसी एक देवता की पूजा प्रधान न थी। हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायो के अस्तित्व एव विकास के उल्लेख मिलते है जिनमे, शक्तिपूजा (शाक्य सम्प्रदाय) शैव सम्प्रदाय (शिव पूजा) सौर सम्प्रदाय (सूर्य पेजा), गणेश, कार्तिकेय, ब्राह्मण, हनुमान, क्षेत्रपाल आदि अनेक देवी देवताओ की उपासना के प्रमाण अभिलेखो से प्राप्त होते है।

परमार इस अभिलेखो के विश्लेषण एव आलोचनात्मक अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल मे शैव धर्म का अपेक्षाकृत् अधिक प्रचलन था। इस काल के शासको ने व्यक्तिगत रूप से न केवल शैवधर्म को प्रश्रय प्रदान किया था। अपितु वे उसके अनुयायी भी थ। अभिलेखिक साक्ष्यो से विभिन्न रूपो मे शिव की उपासना और शैव सम्प्रदायो के विकास का सकेत प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त शाक्तधर्म तथा सौर सम्प्रदाय को भी प्रमुखता प्राप्त थी जिनके विकास का परिचय अभिलेखिक साक्ष्यो से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। इस काल के धार्मिक जीवन की रूपरेखा यद्यपि अभिलेखो के आधार

पर स्पष्ट की जा सकती है क्योकि व्यवहारिक जीवन मे जिन धार्मिक सम्प्रदायो और उनसे सबधित उपासना का प्रचलन था उन सभी के विषय मे किसी न किसी रूप से अभिलेखो मे वर्णन अवश्य है परन्तु धार्मिक विकास की समग रूप रेखा प्रस्तुत करने के लिए साहित्यिक साक्ष्यो एव विदेशी यात्रियो के विवरणो का आश्रय ग्रहण करना अपरिहार्य है।

शक्ति पूजा (शाक्त मत) –

भारत मे शक्ति (देवी) पूजन के प्रमाण सैधवकाल से ही प्राप्त होते है। गुप्त काल मे शाक्त मत अन्य मतो की भाति प्रचलित हो गया था। पूर्व मध्यकाल मे शक्तिपूजा के प्रमाण अभिलेखो मदिरो तथा मूर्तियो के रूप मे प्राप्त होते है। मालव सवत 547 के भ्रमर माता (छोटी सादडी उदयपुर सभाग) अभिलेख का मगलाचरण असुर–सहारिणी शूलधारिणी दुर्गा की आराधना से सम्बन्धित है।[2] कामा की एक गुप्तकालीन मूर्ति मे शिव पार्वती परिणय भाव अत्यन्त विलक्षण रूप मे अभिव्यक्त हुआ है।[3] वर्मलात के वि0स0 682 के अभिलेख मे क्षेमकरी दुर्गामाता 'क्षेमार्या' की वन्दना की गयी है। क्षेमार्या सुवास्थ्य की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती थी।[4]

राजस्थान मे चाहमानो एव परमारो के शासन काल मे भी शाक्रधर्म का महत्व पूर्ववत बना रहा। आबू पर्वत शाक्त धर्म का प्रमुख केन्द्र और अर्बुदेश्वरी का निवास स्थान माना जाता था।[5] परमाल काल मे जैन धर्मावलम्बी भी चण्डिका की अर्चना करने लगे थे। जैनो ने उसे प्रतिरक्षक देवी के रूप मे स्वीकार कर लिया था।[6] परन्तु उन्होने देवी के उग्र रूप के स्थान पर ललिता रूप की अर्चना की उन्होने उसे सच्चिका (सचिया) माता कहा।

अन्य सम्प्रदायो की तरह शक्ति उपासको का भी एक अलग सम्प्रदाय होता है जिसे शाक्त सम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया जाता है। इस सम्प्रदाय के उपासक शक्ति को मूल तत्व मानते है। वे शक्ति द्वारा धारण किये गये विभिनन रूपो की विभिन्न विधियो से उपासना करते है।

शाक्त सम्प्रदाय अत्यन्त प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप मे प्रचलित था। पुराणो मे इस शक्ति की कृ पा से शुम्भ निशुम्भ जैसे विकट दैत्यो के देवताओ द्वारा परास्त किये जाने की कथाये प्राप्त है।[7] कतिपय अन्य कथाओं[8] मे यहा तक कहा गया है कि शक्ति ही मूलतत्व है तथा अन्य देवतागण उनके परिकर है। ''ओकार'' को शिव मे स्थित शक्तितत्व को हटा दिया जाय तो शिव केवल ''शव'' के अतिरिक्त और कुछ भी नही है।

इस समय समाज मे ऐसा कोई भी अलग सम्प्रदाय नही था जो केवल शक्ति की ही उपासना करता हो। लोगो मे धार्मिक सहिष्णुता थी। वे शिव विष्णु आदि देवाताअे के साथ–साथ शक्ति की सरस्वती और अम्बिका आदि विभिन्न नामो से उपासना करते थे। उदयादित्य के शासन काल मे लारबलिया ने धारा नगरी के एक मदिर मे पार्वती की प्रतिमा स्थापित की थी।[9] देवपाल के समय व्यापारी केशव ने शिव मन्दिर के समीप अम्बिका और नकुलिश[10] देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित करके पूजा की थी। इसी प्रकार आबू शासक पूर्ण पाल ने नारायण गणेश और सरस्वती का पूजन किया था।[11]

दुर्गा .–

शाक्त सम्प्रदाय की यह प्रमुख देवी थी। रौद्र और सौम्य दोनो रूपो मे दुर्गा की अराधना होती थी।[12] देवी के रौद्र स्वरूप का महिषासुरमर्दिनी नाम से उल्लेख मिलता है।[13] अश्विनी मास शुक्ल सप्तमी तिथि से प्रारम्भ होकर

दशमी तिथि तक दुर्गोत्सव चलता रहता था। देवी की पूजा और विसर्जन चलता रहता था। देवी की पूजा और विसर्जन के लिए कुछ विशेष नक्षत्र निश्चित होते थे। आद्रा नक्षत्र मे जागरणोत्सव, मूल एव उत्तरा मे पूजन और श्रवण नक्षत्र मे देवी का विसर्जन किया जाता था। नवमी तिथि को दुर्गा के उगृरूप और दशमी की सौम्य रूप की पूजा की जाती थी। उग्र रूप के पूजन मे पशु बलि भी दी जाती थी, परन्तु सौम्य रूप के पूजन मे यह बलि कर्म नही अपनाया जाता था।[14]

सरस्वती की भी मन्त्रो द्वारा स्तुति की जाती थी, इन्हे भारती और वाग्देवी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।[15]

इस समय लक्ष्मी पूजन मे लोगो की विशेष अभिरुचि थी।[16] लक्ष्मी की अधिकाश प्रतिमाए विष्णु के साथ ही मिली है।[17] दुर्गा की तरह लक्ष्मी का भी वार्षिकोत्सव मनाया जाता था। लोगो का विश्वास था कि लक्ष्मी पूजन का लोगो का एक प्रकार का ऋण रहता है जो इस उत्सव से पूर्ण हो जाता है।[18]

मातृका देवी :—

मातृकाओ की उपासना शक्ति पूजन का प्रमुख अश था। मातृकाए सस्था मे सात होती थी तथा एक ही शिलाखण्ड पर सातो प्रतिमाए अकित होती थी। इनके नाम क्रमश ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, इन्द्राणी, वैष्णवी, बाराही और चामुण्डा थे।[19] अलबरूनी के अनुसार चामुडा देवी के पुजारी बकरो भैसो आदि की बलिया चढाते थे।[20] नवमी और त्रयोदशी तिथि को इनकी इष्टादेवी विशेष रूप से पूजा होती थी।[21]

नकुलिश[22] की पूजा का उल्लेख आगम ग्रन्थो मे मिलता है। अलकारो से अलकृत तप्त सुवर्ण के समान आभावाली गरुड पर अधिष्ठित इनके

स्वरूप की कल्पना की गयी है। इन्हे वाणी की अधिष्ठात्री देवी भी कहा गया है। इन्हे वाणी की अधिष्ठात्री देवी भी कहा गया है।[23] सन्तानोत्पत्ति के छठे दिन इसी शक्ति तत्व का षष्ठीदेवी के नाम से पूजन किया जाता था।[24]

शैव सम्प्रदाय –

शिव को सार्वकालिक उपास्यदेव मानने वालो का समूह शैव सम्प्रदाय कहलाता है। अधिकाश परमार राजा शिव के परम भक्त थे। सीयक हर्ष, वाक्पति राज मुज, भोज, जयसिह, अर्जुनदेव वर्मन, देवपाल और जयवर्मन द्वितीय आदि ने दान द्वारा शिव पूजा को प्रोत्साहन दिया। उदयदित्य ने उदयपुर मे एक शिवमदिर का निर्माण कराया। सर्व प्रथम विमकैडफिसस के सिक्को पर शिव प्रतिमा अकित मिलती है।[25] कुषाण शासको ने इनका अनुसरण किया। इसके बाद गुप्तो ने भी शैव उपासना का प्रसार किया। इसके बाद गुप्तो ने भी शैव उपासना का प्रसार किया। इस समय शिव प्रतिमाओ का निर्माण बडे पैमाने पर होता था।[26]

परमार वशी शासको के समय यह सम्प्रदाय अपने विकसित अवस्था मे था तथा इस सम्प्रदाय को अनेक परमार शासको का पूर्ण सरक्षण मिला। प्रमुख परमार राजाओ के अभिलेख शिव स्तुति से आरम्भ होते है। परमार भोज के अभिलेख ऊँ नम व्योमकेशम या ऊँ नम समरारति से आरम्भ होते है। जिनका अर्थ शिव है।[27] परमार जगददेव का झालसपाटन एव डोगरगॉव अभिलेख ऊँ नम शिवाय से प्रारम्भ होता है।[28]

परमार वशीय शासको के समय यह सम्प्रदाय अपनी विकसित अवस्था में था तथा उसे तत्कालीन अनेक राजाओ का पूर्ण प्रश्रय प्राप्त था। सीयक, वाक्पतिराजमुज, सिन्धुराज, भोज, उदयादित्य और नरवर्मा आदि सभी मुख्य परमार शासक शिवभक्त थे।

परमारो ने परम भट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर[29] की उपाधिया धारण की थी। उदयपुर प्रशस्ति मे राजा भोज को भर्ग्गभक्त के नाम से सम्बोधित किया गया है।[30] उपर्युक्त प्रमाणो से भी प्रमाणित होता है कि इस वश के शासक शिव भक्त थे। यद्यपि विभिन्न प्रकार के मन्त्रोत्त्चारणो से शकर की स्तुतियॉ की जाती थी, परन्तु "ॐ नम शिवाय"[31] इस समय का सर्व प्रधान एव प्रचलित मन्त्र था। शिव के साथ सलग्न रहने वाले अन्य देवताओ मे गगा, सर्प आदि की भी स्तुतियॉ की जाती थी।[32] तत्कालीन अभिलेखो[33] मे शकर की अनेक प्रकार की स्तुतियॉ मिलती है।

पूजा उपासना आदि की दृष्टि से शकर के अनेक नाम थे जैसे– व्योमकेश, स्मरारातिि, भवानीपति, शम्भू,[34] मारकण्डेश्वर, महाकाल, नीलकण्ठेश्वर[35] शूलपाणि, पीनाकपाणि,[36] कोटेश्वर, कनखलनाथ, अतुलनाथ, वलक्लेश्वर, सिद्धनाथ, मनेश्वर, वैद्यनाथ, उथलेश्वर और गोहेडेश्वर[37] आदि। कही–कही अचलेश्वर[38] के नाम से भी शिव का उल्लेख मिलता है।

अधिकाशत लिग रूपो मे ही शकर की पूजा होती थी। कभी–कभी यह लिग मुख के आकार का होता था। जिसका ऊपरी हिस्सा ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना जाता था। इसके पूर्वी हिस्से मे सूर्य, उत्तर मे ब्रह्मा, पश्चिम मे विष्णु और दक्षिण भाग मे रुद्र की आकृतियॉ बनी होती थी। यह लिग शैव धर्म के दार्शनिक तत्व की पुष्टि करता है। जिसमे रुद्र सूर्य, विष्णु और ब्रह्मा एक ही सार्वभौम ज्योर्तितत्व के भिन्न–भिन्न प्रकाश स्वरूप माने गये है। वह सार्वभौम ज्योति सदाशिव तत्व है। भोज ने अपने तत्वप्रकाश[39] नामक ग्रन्थ मे सदाशिवतत्व के विषय मे विस्तृत उल्लेख किया है। चारमुख वाले शिव लिगो की भी उपासना होती थी। जिन्हे चतुर्मुख मार्कण्डेश्वर के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। महाकुमार हरिश्चन्द्र ने इसी लिग की पूजा की थी।[40]

परमारो के समय अनेक शिव मन्दिरो का निर्माण हुआ। इन मदिरो के नाम प्राय उनमे प्रतिष्ठित महादेव की मूर्तियो के नामो पर नीलकण्ठेश्वर, अचलेश्वर, आदि रखे जाते थे। इस वश के सबसे प्रतापी एव धार्मिक शासक भोज ने अपने शासन काल मे विभिन्न शिव मदिरो का निर्माण कराया था।[41] चित्तौड किले के मन्दिर मे इसने अपने नाम पर भोजस्वमिदेव नामक शिवलिग की प्रतिष्ठा[42] की थी। इसी तरह एक अन्य मन्दिर मे त्रिभुवन नारायण देव नामक एक दूसरे शिवलिग की स्थापना की थी।[43] इस मदिर के भग्न हो जाने पर इसका पुन जीर्णोद्वार वि0 स0 1458 मे महाराणा मौकल ने कराया था। आजकल वही मन्दिर अदबदजी (अद्भुत जी) का या मौकल जी का मदिर कहलाता है।[44] उदयादित्य ने उदयपुर मे नीलकण्ठेश्वर महादेव के मदिर का निर्माण कराया था। इसी प्रकार निमार और ऊणा नामक स्थानो पर सिद्धेश्वर, महाकालेश्वर वल्लभेश्वर, नीलकण्ठेश्वर और गुप्तेश्वर नामक उस समय के शिव मदिरो का उल्लेख मिलता है।[45]

परमार शासको के अतिरिक्त उनके सामन्तो ने भी अनेक मदिरो का निर्माण कराया था। जयसिह के सामन्त वागड के परमार शासक माडलिक ने पाशुलाखेटक गाव मे मडलेश्वर नामक शिव मदिर का निर्माण कराया। उसका खर्च चलाने के लिए जयसिह ने उस मार्ग से गुजरने वाले प्रत्येक व्यापारी के लिए यह निश्चित कर दिया था कि वह एक निश्चित बोझ के बदले मे एक विशोयक (सिक्का) मदिर को दे। माडलिक ने भी कुछ भूमि, धान के खेत और एक बगीचा इस मदिर के लिए दान दिया था।[46]

परमार अधिपतियो एव सामन्तो के अतिरिक्त शिवभक्त प्रजा भी मदिर निर्माण मे सहयोग देती थी। मालव शासक उदयादित्य के कार्यकाल मे जन्न नामक एक तेली पटेल ने एक मदिर बनवाकर उसमे सैन्धव देव नामक

शिव प्रतिमा की स्थापना की। इस मदिर के वार्षिकोत्सव पर वह चार पैली तेल व कुछ मिष्ठान नैवेद्य के निमित्त देता था।[47] इसी प्रकार देवपाल के शासन काल मे हर्षपुर मे केशव नामक एक व्यापारी ने एक शिव मदिर का निर्माण कराया। साथ ही उसने उसके समीप एक तालाब और अन्य देवताओ, हनुमान, गणेश, कृष्ण और अम्बिका देवी की प्रतिमा को प्रतिष्ठित किया।[48] मीनमाल के परमार शासक कृष्णराज के शासनकाल मे जैनक नामक एक ब्राह्मण ने शिव मदिर पर अपनी व्यक्तिगत सम्पति से एक स्वर्णकलश लगवाया था।[49] इसी तरह शैव तापस केदाररासी ने कोटेश्वर नामक शिव मदिर का जीर्णोद्वार करवाया था।[50] तत्कालीन शासको एव प्रजा की शैव सम्प्रदाय सम्बन्धी कृतियो को देखने से ऐसा मालूम होता है कि वे केवल मदिरो का निर्माण तथा जीर्णोद्वार ही नही करवाते थे, बल्कि भविष्य मे उनका खर्च चलाने के लिए उनकी पूर्ण व्यवस्थाये भी करते थे।

शैव सन्यासियो के रहने के लिए मठो की भी व्यवस्थाये थी। आबू शासक धारा वर्ष के राज्यकाल मे शैव सन्यासी केदाररासी के सरक्षण मे चलने वाले नूतन नामक उज्जैन स्थित एक विशाल मठ का उल्लेख मिलता है। चडिकाश्रम नामक भी एक दूसरा विशाल मठ था। इन मठो मे शैव सन्यासिनी स्त्रियो के भी रहने की व्यवस्था रहती थी। शैव सन्यासिनी योगेश्वरी तो नूतन मठ की कुछ समय तक प्रधान सचालिका रही।[51]

शैव सम्प्रदाय की शाखायें– शैवागम के अनुसार शैव सम्प्रदाय चार शाखाओ मे विभक्त है।[52] शैव अथवा वीर शैव, पाशुपत, कापालिक और कालमुख ।

परमारवशीय नरेशो के राज्यकाल मे केवल पाशुपत और कापालिक नामक दो शाखाओ के ही उल्लेख मिलते है।

पाशुपत – पाशुपत (सम्प्रदाय) शाखा वाले शैव लोग अपने ललाट पर भस्म लगाते एव हाथो मे रूद्राक्ष की माला रखते थे।[53] इस शाखा वाले लोग दिन मे तीन बार स्नान करते एव अपने सम्पूर्ण शरीर मे भस्म लगाते थे। ये लोग सदैव अह–अह शब्द करते और शकर की स्तुति से सम्बन्धित गीत गाया करते थे। शकर की ही तरह ताण्डव नृत्य तथा कुछ पागलो सा व्यवहार भी करते थे। ये सभी उनके दैनिक कार्य समझे जाते थे। परन्तु इन विचित्र प्रकार के कार्यों का प्रदर्शन सर्व साधारण लोगो के सामने नही किया जाता था। ये लोग भिक्षाटन द्वारा प्राप्त वस्तुओ से अपनी क्षुधाग्नि तृप्त करते थे।[54]

इस शाखा के सस्थापक लकुलीश नामक एक व्यक्ति था। जिसे शिव का अवतार माना जाता था। यह सदैव अपने हाथ मे लकुटि (घडी) लिये रहता था।[55] सम्भवत इसीलिए इसे लकुलिश कहा जाता था। कुछ लोगो के अनुसार पाशुपत और लकुशि ये दोनो भिन्न–भिन्न नाम थे।[56] डॉ0 भण्डारकर[57] के अनुसार पाशुपत सम्प्रदाय के सस्थापक लकुलिश थे। अत इस सम्प्रदाय को लकुलिश सम्प्रदाय कहा जाता था।

कालान्तर मे लकुलिश के स्थान पर पाशुपत (शिव) के नाम पर इसे पाशुपत सम्प्रदाय कहा गया। इन उपर्युक्त विचारो विमर्शों से स्पष्ट होता है कि लकुलिश पाशुपत एक ही शाखा का नाम था। धारा वर्ष के लिए शिलालेख से चापलगोत्रीय किसी पाशुपत धर्म के अनुयायी का ज्ञान होता है।[58] धारा वर्ष आबू का शासक था वो पाशुपत शाखा वाले शैवो का मुख्य केन्द्र माना जाता था। अशोक कुमार मजूमदार के अनुसार पाशुपत शाखा वाले लोग चापलगोत्रीय होते थे।[59] चापलगोत्रीय शैव लोग अपने नाम के अन्त मे रासी शब्द जोडते थे। जैसे–वाकलरासी, योगेश्वररासी, मौनिरासी और केदाररासी आदि।[60] आबू के अतिरिक्त मीनमाल की पाशुपतो का केन्द्र था। वहॉ के शासक कृष्णराज ने पाशुपताचार्य नावल को भूमि दान दी थी।[61]

कापालिक –

यह शैव सम्प्रदाय की दूसरी शाखा थी, जिसे पाशुपतो की तुलना मे द्वितीय स्थान प्राप्त था। इस शाखा के अनुयायी भी अपने शरीर मे भस्म लगाते थे। ये लोग मृत व्यक्तियो के कपालो को खप्परो के रूप मे लिए रहते थे एव उसमे भोजन भी करते थे। इसी से इन्हे कापालिक कहा जाता था। ये लोग नग्न रहते हुए शिवलिग सदैव अपने साथ रखते थे। कापालिको की गतिविधियो को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उन पर तात्रिको का प्रभाव था। ये लोग अपने नाम के साथ ''महाव्रतधर'' शब्द लगाते थे। उनका एक प्रकार का नाम सस्कार होता था जिसमे ये महाव्रतधर की उपाधि प्राप्त करते थे।[62] भोज ने इस शाखा के दिनकर मुनि नामक महाव्रतधर को भूमिदान दी थी।[63]

वैष्ण सम्प्रदाय :–

शिव की उपासना के साथ–साथ विष्णु की भी उपासना होती थी। विष्णु मूलत वैदिक देवता है, परन्तु पौराणिक काल मे मुख्य रूप से नारायण, विष्णु और वासुदेव नामो से लोग उनकी उपासना करते थे। इस प्रकार के उपासक वैष्णव के नाम से विख्यात हुए और इस उपासना मे विहित विधियो के अनुयायी परम्परा को वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया गया।

यह परम्परा अति प्राचीन काल से ही अनुकृत है। महाभारत के नारायणी पर्व मे छ अवतारो की कल्पना की गई है।[64] वायु पुराण के दो अध्यायो मे भी इसका वर्णन किया गया है।[65] प्रथम अध्याय मे बारह अवतारो की और द्वितीय मे दस अवतार (शूकर, सिह, वामन, राम, रामदशरथी, वासुदेय, कृष्ण, दत्तात्रेय, अनाम, वेदव्यास और कल्कि) का उल्लेख मिलता है।

परमार वशीय राजाओ के कार्यकाल मे इस सम्प्रदाय की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। महाभारत एव पुराणो मे वर्णित आधार पर इस समय विष्णु के विभिन्न अवतारो को लोग मानते थे, जिनमे विशेषत नृसिहावतार,[66] एव बारहावतार[67] की प्रधानता थी। आबू शासक प्रताप सिह को सम्मान मे वाराह की उपाधि से विभूषित किया गया था। नागपुर प्रशस्ति[68] मे विष्णु के मत्स्यावतार का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस अवतार की भी उपासना होती थी। मत्स्य तथा कूर्म आदि अन्य जीवो के रूप मे अवतार लेकर विष्णु के विश्व सम्भालने की कल्पना की गयी है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि ईश्वर इस विश्व की रचना अपने से भिन्न रूप मे नही करता, अर्थात यह ससार कोई भिन्न तत्व नही, बल्कि ईश्वरमय ही है। विष्णु के वाहन गरुड का चिह्न तत्कालीन वैष्णव सम्प्रदाय की ओर भी अधिक स्पष्ट करता है। सीयक द्वितीय वाक्पतिराजभुज और भोज के ताम्रपत्रो पर यह चिह्न अकित पाया गया है।[69] भोज के एक शिलालेख[70] मे जो गरुडध्वज का उल्लेख मिलता है वह ध्वज सम्भवत विष्णु मदिर के समीप ही लगा था।

लोग अनेक नामो से विष्णु की उपासना करते थे जो नारायण[71] कृष्ण (मुररिपु)[72], शाहिर्ग्गण,[73] हरि,[74] वासुदेव,[75] वामन और पुरुषोत्तम आदि। शिव के समान विष्णु की भी "ओम नम पुरुषार्थचूडामणै" और "ॐ नम श्री नारायणाय"[76] के मत्रो से स्तुति की जाती थी।

मूर्ति रचना शास्त्र मे विष्णु के मत्स्यावतार की आकृति के विभिन्न विचार उपलब्ध होते है। कुछ लोगो के अनुसार शरीर का निचला भाग मछली का तथा ऊपरी हिस्सा मनुष्य के आकृति का होता था।[77] शिल्पशास्त्र मे इस अवतार को प्रदर्शित करने के लिए मछली की ही आकृति मिलती है। इसी प्रकार विष्णु के कच्छपावतार[78] को भी लोग मानते थे। परन्तु इस समय इनकी

चतुर्भुजी प्रतिमा ही अधिक प्रचलित थी। इनके चार हाथो मे शख, चक्र, गदा और पद्म रहते थे। भोज ने चतुर्भुज विष्णु का उल्लेख किया है।[79]

इस समय अनेक विष्णु मदिरो के निर्माण और जीर्णोद्वार कराये गये। पाटनारायण शिलालेख[80] से स्पष्ट होता है कि आबू के परमार शासक प्रताप सिह के ब्राह्मण मत्री वेल्हण ने विष्णु के एक मन्दिर का जीर्णोद्वारा कराया था। मान्धाता नामक स्थान के समीप दैत्यसूदन (विष्णु) के मदिर,[81] निभार मे एक अपूर्ण विष्णु मन्दिर,[82] तथा चन्द्रावती मे बारह अवतारी विष्णु के मन्दिर[83] का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार मुगथला स्थान स्थित मधुसूदन के मन्दिर का भी विवरण मिलता है।[84]

विशेष तिथियो को वैष्णवोत्सव मनाये जाते थे। भाद्रमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को कृष्णजन्माष्टमी आषाढ मे शयनोत्सव और कार्तिक मास मे विष्णु का जागरणोत्सव मनाया जाता था।

सौर सम्प्रदाय :–

हिन्दू देवताओ मे शिव और विष्णु के बाद इस समय तृतीय स्थान सूर्य को ही प्राप्त था। वैदिक काल से ही भारत मे सूर्योपासना प्रचलित है। डॉ0 भण्डारकर के अनुसार यह प्रथा वैदिक नही बल्कि सीथियनो की देन है।[85] भविष्यपुराण मे भग जाति द्वारा सूर्य मन्दिर निर्माण का उल्लेख मिलता है।[86] इसी भगजाति के लोगो का बाद मे शाकद्वीपीय ब्राह्मण के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। बाराहमिहिर के अनुसार सूर्य प्रतिमा और मन्दिरो का निर्माण सर्व प्रथम भग अथवा शाकद्वीपीय ब्राह्मणो ने ही किया।[87] अलबरूनी ने चर्चा की है।[88]

परमार कालीन समाज मे भी सूर्य पूजा प्रचलित थी। इसके उपासको का एक अलग सम्प्रदाय था। जिसे सौर सम्प्रदाय कहा जाता था।[89] सूर्य की स्तुतियाँ भिन्न–भिन्न प्रकार के मन्त्रो से की जाती थी। जिनमे "ॐ नम सूर्याय" मन्त्र[90] सर्वाधिक मान्य था। मीनमाल के परमार शासक कृष्णराज का एक शिलालेख सूर्य स्तुति से ही आरम्भ होता है।[91] इस समय सूर्य पूजा की विधि भी कुछ भिन्न प्रकार की ही थी। भोज[92] के निर्देश से स्पष्ट होता है कि सूर्य उपासक लाल वस्त्र पहनकर लाल ही चन्दन तथा नीम के पुष्प एव पत्तो से सूर्य की पूजा करते थे।[93] रविवार के दिन विशेष प्रकार से सूर्य की पूजा की जाती थी। इस समय के मुसलमान यात्रियो ने भी सूर्य पूजा का उल्लेख किया है। अलबरूनी के अनुसार मुल्तान मे सूर्य की भव्य प्रतिमा थी, जहॉ दर्शनार्थ हजारो व्यक्ति हर वर्ष आते एव उपहार आदि समर्पित करते थे।[94]

लोग नित्य स्नानादि के बाद सूर्य को अर्ध्य भी देते थे। सिन्धुराज ने अपनी अजुली मे जल और पुष्प लेकर अर्ध्य दिया था।[95] कुछ विशेष तिथियो पर सूर्य व्रत किया जाता था। जिनमे शुक्ल और कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथिया विशेष मान्य थी किन्तु सम्पूर्ण दिन सप्तमी होने पर ही सूर्य का व्रत किया जाता था। यदि सप्तमी अष्टमी से युक्त हो अर्थात एक ही दिन दोनो तिथियो का योग हो तो उस दिन उपवास नही किया जाता था। ऐसा योग होने पर षष्ठी के दिन व्रत एव पूजन करके अष्टमी तिथि को धारण किया जाता था।[96]

सूर्य भक्त राजाओ ने अनेक मन्दिरो का निर्माण कराया था। आबू के परमार शासक पूर्णपाल की विधवा बहिन लाहिणी देवी ने वाटपुर मे नदी के किनारे एक सूर्य मन्दिर बनवाया था।[97] इसी प्रकार मालव शासक जगदेव के मत्री लोलार्क की पत्नी पद्मावती ने निम्बादित्य नामक एक सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया था।[98] शासको के अतिरिक्त प्रजा भी इस कार्य मे सहयोग देती

थी। मीनमाल के शासक कृष्णराज के कार्यकाल मे व्यापारी धन्धुक ने जगतस्वामी नामक एक प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर का निर्माण करवाया था तथा जेजक नामक एक ब्राह्मण ने अपने व्यक्तिगत धन से इस पर स्वर्ण कलश लगवाया था।[99]

अन्य उपास्य देवगण –

गणेश – छोटे देवताओ मे गणेश की उपासना मुख्य थी। जो अभिलेखो से स्पष्ट है।[100] परन्तु यह सूर्य, विष्णु और शिव की तरह वैदिक नही बल्कि पौराणिक देव है। उदयपुर प्रशस्ति[101] मे शिव पार्वती के साथ गणेश की वन्दना की गयी है। इन उपर्युक्त प्रभावो से मालुम होता है कि इस समय पचदेवताओ (विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति और गणेश) की प्रधानता थी। आजकल की तरह उस समय भी कोई शुभ कार्य आरम्भ करने से पूर्व गणेश की स्तुति की जाती थी। इसके लिए भी गणेशाय नम का मत्र अधिक प्रचलित था। इसके अतिरिक्त हेरम्ब आदि नामो से भी इनकी उपासना होती थी।[102]

कार्तिकेय[103] – फाल्गुन मास की पूर्णिमा को सूर्य के कुम्भ राशि पर स्थित होने पर कार्तिकेय विशेष पूजा की जाती थी। कार्तिकेय प्रतिमा को रथ आवेष्ठित करके जुलूस भी निकाला जाता था।

वरुण ·– जल के देवता माने जाते है। आबू के शासक पूर्णपाल के एक शिलालेख[104] मे इनका उल्लेख मिलता है।

क्षेत्रपाल ·– इनकी भी पूजा होती थी।[105] प्राचीन ग्रन्थो मे क्षेत्रपाल की सख्या 49 मानी गयी है। दही, ऊर्द और भात इनका नैवेद्य माना जाता था।[106] ये भूत, प्रेत, पिशाचिनी, डाकिनी एव बैताल आदि से सदैव घिरे रहते थे।[107] विवेच्ययुग मे क्षेत्रपाल नामक देवता खेत का सरक्षक समझा जाता था।

देवपाल के राज्यपाल मे व्यापारी केशव ने शम्भू मन्दिर के समीप ही इनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी।[108]

हनुमान – इस समय हनुमान जी की पूजा के भी प्रमाण मिलते है।[109]

अगस्तय[110] – अगस्त्य की भी पूजा की जाती थी। सायकाल जलपूर्ण कलश पर कासपुष्प के रूप मे अगस्त्यदेव की प्रतिमा स्थापित कर पुष्प, धूप, चावल दही आदि से पूजा की जाती थी। पूजा के दिन रात्रि मे जागरण भी किया जाता था। दूसरे दिन सुबह प्रतिमा की किसी जलाशय के समीप रखते थे तथा दिन भर उपपास कर रात्रि मे सुगन्धित पुष्प, मुनक्का, वेर, खजूर, नारियल आदि फलो, पचरत्नो सात प्रकार के अन्नो, दही और चन्दन का अर्ध्यपात्र मे रख कर अगस्त्यदेव का अर्ध दिया जाता था। अर्ध्यक्रिया के बाद लोग उस वर्ष के लिए एक–एक प्रकार के अन्न फल और रसो के परित्याग की प्रतिज्ञा करते थे। अन्त मे खीर, लड्डू और घी से बने हुए भोज्य पदार्थ ब्राह्मण को खिलाकर कुछ द्रव्य वस्त्र और प्रतिमायुक्त कलश दक्षिणारूप मे दान दिये जाते थे।[111]

बलिवैश्वदेव :–

उपर्युक्त देवताओ की पूजा और उपासना के अतिरिक्त बलिवैश्वदेव की क्रियाए भी की जाती थी।[112] भोजन तैयार हो जाने के बाद सर्व प्रथम पाक का कुछ हिस्सा अलग कर किसी पवित्र स्थान पर बैठकर तीन बार आचमन किया जाता था। तत्पश्चात् सकल्प किया जाता था। कि "पचगूनाजनित समस्त दोष परिहार के लिए बलिवैश्वदेव करता हूँ।" पचगूना का तात्पर्य पाच प्रकार की अहिसाओ से चूल्हा (अग्नि जलाने से), चक्की (पीसने से) झाडू (झाडने से), ओखली (कूटने) और जल के स्थान (जलपात्र) के नीचे दबने से था। इन सब का सम्बन्ध भोज्य पदार्थों की तैयारी से होता है। उनके

दोष निवारार्थ ही यह बलि विधि की जाती थी। सकल्प के बाद अग्नि मे पाच आहुतिया देकर गाय, कौआ और कुत्ते को बलि दी जाती थी। यह क्रिया अधिकाशत ब्राह्मण वर्ग मे ही प्रचलित थी।

इसके अतिरिक्त विश्वकर्मा, मर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, यम, आदि की भी भिन्न–भिनन प्रकार के पुष्पफलो से अर्चनाये होती थी। सुगन्धित पुष्प चन्दन से विश्वकर्मा, घी, दूध, दही, से कार्तिकेय, चावल, उरद, गेहूँ आदि धान्यो से पर्जन्य, आम्र, द्राक्षा, खजूर, जैसे फलो से जयन्त, मालती और मल्लिका के पुष्पो से इन्द्र, लाल चन्दन और पुष्पो से सूर्य, जम्बीर, नीबू और नारगी के पीले पुष्पो से सत्य नारायण देव, शहद और खीर से भगवान पूजन और मछली, मदिरा एव भागयुक्त भोज्य पदार्थ से यम की पूजाये की जाती थी।[113]

राम और परशुराम का भी उल्लेख मिलता है। राम का सकेत भूमिदान के प्रसग मे दान दी हुई भूमि की रक्षा करने के सम्बन्ध मे मिलता है।[114]

गाय[115].–

गाय अत्यन्त प्राचीन काल से ही पूजनीय मानी जाती थी। भूमिदान की विधिपूर्ण करने के लिए देवपूजन के साथ–साथ गाय की प्रदक्षिणा की जाती थी। आबू के परमार शासक यशोधवल के एक लेख[116] की शिला पर दुग्धपान करते हुए बछडे के साथ गाय की प्रतिमा अकित पायी गयी है। सन्तानोत्पत्ति की कामना से लोग बछडा सहित गाय ब्राह्मणो को दान भी देते थे।[117]

जैन धर्म –

इस धर्म के जन्मदाता ऋषभदेव माने जाते है। यद्यपि उत्तरभारत मे यह धर्म पतनोन्मुख हो चुका था, परन्तु परमार क्षेत्रो मे इसे राजाओ और बहुत बडी सख्या मे जनता का प्रश्रय प्राप्त था। विष्णु और शिव की तरह जिन भगवान वीतराम की भी "ओ" द्वारा स्तुति की जाती थी।[118] आदिनाथ, नेमिनाथ, ऋषभनाथ, शान्तिनाथ और जरनाथ आदि भिन्न–भिन्न तीर्थकरो के नामो के माध्यम से जिन भगवान की प्रार्थनाये और उपासनाये की जाती थी।[119] अनेक परमार शासको ने जैनाचार्यों को अपने यहा आश्रय दिया तथा जैन मदिरो का निर्माण करवाया था। 933 ई0 मे देवसेन ने धारा स्थित पार्श्वनाथ के मदिर मे रहकर अपनी पुस्तक दर्शनसार की रचना की थी।[120] जैनाचार्य अमितगति, महासेन और धनेश्वर को वाक्पतिराजमुज का प्रश्रय प्राप्त था।[121] सिन्धुराज के महमात्य पर्पट का गुरु महासेन जैन ही था।[122]

मुनिरत्नसूरि विरचित आम्मारस्वामी चरित के अनुसार मानतुग और देवभ्रद सूरि भोज के मन रूपी मानसरोवर के दो राजहस थे।[123] जैनाचार्य प्रभाचन्द्र भोज की श्रद्धा का अत्यन्त पात्र था जिसने धारा मे उसकी चरण पूजा की थी।[124] जैन कवि धनपाल के सम्पर्क मे आने पर इस धर्म के प्रति भोज की आस्था दृढ हो गयी थी।[125] भोज के ही आदेश पर धनपाल ने अपनी तिलक मजरी नामक पुस्तक की रचना की गयी थी। पुन उसने दिगम्बर पुलचन्द्र जैन को अपना सेनापति बनाया था।[126] एक बार धनपाल से जैन धर्म के बारे मे विचार विमर्श करने के बाद भोज इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उसे शैव और वैष्णव से भी श्रेष्ठ सिद्ध किया। जैन धर्म की महत्ता बताते हुए उसने एक स्थल पर कहा है कि जिस वस्तु को विष्णु अपनी दो, शिव तीन, ब्रह्मा आठ, स्कन्द बारह, लकेश्वर बीस और इन्द्र हजारो नेत्रो से नही देख सकते,

उसको जैन विद्वान केवल अपनी एक ज्ञानचक्षु के द्वारा ही देख लेता है।[127] कच्छपद्यातवशी विक्रमसिह के दूवकुण्ड अभिलेख से ज्ञात होता है कि भोज की ही सभा मे जैनाचार्य शान्तिषेण ने अम्बरसेन आदि जैन विद्वानोको शास्त्रार्थ मे परास्त किया था।[128] इस धर्म के बारे मे धनपाल का भोज से विचार विमर्श प्राय हुआ करता था।[129] अभयदेव को भी भोज का राज्याश्रय प्राप्त हुआ था।[130] भोज के उत्तराधिकारी जयसिह ने प्रभाचन्द्र को आश्रय दिया था।[131]

भोज और जयसिह के बाद जैन धर्म के सरक्षको मे नरवर्मन का प्रमुख स्थान है। अपने पूर्वजो की ही तरह अन्य सम्प्रदायो के साथ–साथ उसने इस धर्म को भी प्रश्रय दिया। उसी के समय जैन विद्वान समुद्रघोष ने मालवा मे तर्कशास्त्र का अध्ययन किया, जिसकी विद्या से आकर्षित होकर नरवर्मन उसका परमभक्त बन गया।[132] समुद्रघोष इतना प्रसिद्ध विद्वान था कि विद्वत सभा के उसके भाषणो के अवसर पर नर वर्मा के अतिरिक्त चालुक्य शासक सिद्वराज भी उपस्थित रहता था। सूर प्रजा को भी वहॉ सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था।[133] जयन्त काव्य के अनुसार नरवर्मन ने जैनाचार्य जिन वल्लभ के चरणो पर अपना मस्तक झुकाया था।[134] इस धर्म की उन्नति के लिए उसने अथक प्रयास किया था। जिन वल्लभ की विद्वता से प्रसन्न होकर नरवर्मन ने उपहार स्वरूप उसे तीन लाख पारुत्थद्रम प्रदान किया था।[135] रत्नभूरि ने भी शव आचार्य विद्या शिव वादी के साथ शास्त्रार्थ कर यश कीर्ति प्राप्त की थी।[136]

नरवर्मा के बाद कुछ समय तक यहॉ चालुक्य शासक कुमार पाल के संरक्षण मे ही जैन धर्म की उन्नति हुई। क्योकि जयवर्मा के निर्बल होने के कारण उसके राज्य पर कुमारपाल ने अपना आधिपत्य जमा लिया था। दूसरी ओर आबू के शासक विक्रम सिह को भी भारकर उसकी गद्दी पर अपने अधीनस्थ उसके भतीजे यशोधवल को सिहासनारूढ किया। इस प्रकार करीब

सम्पूर्ण परमार राज्य पर कुमार पाल की विजय पताका फहराने लगी। कुमार पाल हेमचन्द्र का अत्यन्त प्रिय पात्र था और उसी के प्रभाववश उसने जैन धर्म को सभी प्रकार का प्रोत्साहन दिया था।[137]

विन्ध्यवर्मा के समय इस धर्म को पुन परमारो की छत्रछाया और आश्रय प्राप्त हुआ। जैन सिद्धान्त और व्याकरण का गम्भीर अध्ययन करने वाले धारा निवासी धरसेन के शिष्य महावीर को विन्ध्यवर्मन का प्रश्रय प्राप्त था।[138] इस समय पडित आशाधर भी धारा मे आकर जैन विद्वान महावीर शिष्य बना था।[139] विन्ध्य वर्मा के सरक्षण मे इसने कई ग्रन्थो का प्रणयन भी किया था।[140] इनके अतिरिक्त जिनपतिमूरि और सुमतिर्गाण को भी उस राजा को प्रश्रय प्राप्त था।[141]

इसके बाद सुभट वर्मा सिहासनारूढ हुआ, परन्तु वह जैन धर्म का कट्टर विरोधी था तथा उसे आमूल समाप्त ही कर देना चाहता था। चालुक्य राज्य पर आक्रमण कर उसने गुजरात तथा दमोई मे स्थित असख्य जैन मन्दिरो को विध्वस किया और उनमे स्थित 109 स्वर्णकलशो को लूटकर अपने साथ मालवा ले आया था।[142]

अर्जुन वर्मन की छत्रछाया मे यह धर्म उन्नति के पथ पर पुन अग्रसर हुआ। इस सदर्भ मे आशाधर ने कहा है कि अर्जुन वर्मन के समय मालवा मे जैन श्रावक अधिक सख्या मे विद्यमान थे। उन्ही श्रावक के साथ जैन सिद्धान्त को और अधिक पुष्ट और परिष्कृत करने के लिए वह (आशाधर) स्वय नलकच्छपुर नामक स्थान मे जाकर रहने लगा था,[143] उसने इस धर्म के सिद्धान्तो को लेकर कई पत्रिकाओ का प्रणयन किया जिनमे जैन सन्यासियो के कर्त्तव्य स्यादवाद का आध्यात्मिक विवेचन और जैन अर्हतो के उपदेशो के उल्लेख है।[144]

देवपाल और जैतुगीदेव ने भी पडित आशाधर को अपने यहॉ आश्रय दिया था। उनके आश्रय मेही उसने विशिष्ठास्मृति नामक ग्रन्थ पूर्ण किया था।[145] तेरहवी सदी मे देवेन्द्र उज्जैन के जैन मठ का सचालक था।[146] उसने वीरपाल और भीम सिह को 1245 ई0 मे जैन धर्म मे दीक्षित कर उन्हे क्रमश विद्यानन्द सूरि एव धर्मकीर्ति उपाध्याय की उपाधियो से अलकृत किया था।[147]

परमारो के समय जैन धर्म की केवल साहित्यिक उन्नति ही नही हुई बल्कि अन्य अनेक ठोस कार्य भी हुए थे। कई जैन मन्दिरो का निर्माण भी हुआ था। भोज के समय मुकतावली नामक गाव के अधिकारी रानकआमा ने श्वेतपाद नामक स्थान पर निर्मित जैन मन्दिर तथा मुनियो का खर्च चलाने के लिए सुव्रतदेव को कुछ भूमि, दो तेल की मिले, चौदह दुकाने और चौदह द्रम (सिक्का) दान दिया था। इस दान से प्राप्त आय से मदिर पूजा, नैवेद्य तथा वहा स्थित श्रावको का जीवन यापन होता था।[148] आबू के शासक धारा वर्ष की पत्नी श्रृगार देवी ने पार्श्वनाथ के मदिर के कुछ भूमि दान दी थी।[149] विजयराज के शासनकाल मे जैनाचार्य भूषण ने उथवणक (अर्धुणा) गाव मे वृषभनाथ के मदिर का निर्माण कराकर उसमे मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।[150] प्रहलादनदेव ने पहलादनपुर मे पाल्हविहार नामक एक जैन मदिर का निर्माण करवाया था। इस मदिर मे पार्श्वनाथ की स्वर्ण प्रतिमा भी प्रतिष्ठित की गयी थी।[151] इस प्रकार कृष्णराज के राज्य काल मे बर्द्धमान नामक व्यक्ति ने एक जैन मदिर मे वीरनाथ के नाम से एक जैन प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी।[152]

पूजा उपासना एव मदिर निर्माण के साथ–साथ इस धर्म से सम्बन्धित अनेक उत्सव भी मनाये जाते थे। आबू शासक सोम सिह के समय अष्टायिका नामक एक जैनोत्सव का उल्लेख मिलता है।[153] आठ दिन तक मनाये जाने के कारण ही सम्भवत इस उत्सव का नाम अष्टायिका रखा गया

था। इसमे नेमिनाथ की पूजा आदि के विभिन्न क्रम होते थे। चैत्रमास कृष्णपक्ष की तृतीया को चन्द्रावती के श्रावक जिन अहोम की पूजा आदि द्वारा इस उत्सव का आरम्भ करते थे। इसमे चार जाति के श्रावक भाग लेते थे। जिसमे आधी सख्या प्रागवाट और आधी जोसवाल, श्रीमाली एव धर्कुट जाति के श्रावको की होती थी। ये विभिन्न गावो के होते थे तथा भिन्न–भिन्न दिनो पर भिन्न (निश्चित) गावो के श्रावको की गोष्ठी नेमिनाथ की पूजा करती थी। यह उत्सव वार्षिक होता था तथा श्रावको की गोष्ठिया अष्टायिका के लिए ही नियुक्त होती थी।[154]

पच कल्याणिका नामक एक दूसरे जैनोत्सव का भी उल्लेख मिलता है।[155] यह उत्सव नेमिनाथ के गर्भारोहण, जन्म, तप (दीक्षा) ग्रहण, ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति करने की अलग–अलग पाच तिथियो पर मनाया जाता था।

व्रत एवं उत्सव

देवी देवताओ की पूजा अर्चना के साथ–साथ उनसे भी मनाये जाते थे। इनके मनाने की परम्परा के दो क्रम होते थे। तिथिक्रम और ऋतुक्रम। जहाँ तक तिथिक्रम से मनाये जाने वाले व्रतोत्सवो का सम्बन्ध है इस क्रम मे सामान्यतया कुछ तिथियो पर तो सभी भागो मे वे सम्पन्न किये जाते थे ओर सभी भागो मे वे सम्पन्न किये जाते थे और कुछ मास विशेष मे मनाये जाते थे। प्रत्येक मास की तिथि विशेष पर मनाये जाने वाले व्रतो एव उत्सवो मे षष्ठी, अष्टमी, एकादशी, त्रयोदशी और चतुर्दशी वाले उत्सवो की ओर निर्देश किया जा सकता है।

षष्ठी तिथि मे व्रत रहकर सप्तमी को सूर्य पूजा करके पारण किया जाता था। यदि सप्तमी और अष्टमी दोनो तिथियाँ एक ही दिन पड जाती

तो भी सप्तमी युक्त अष्टमी मे पारण किया जाता था।[156] अष्टमी के दिन सामान्यतया लोग व्रत पूर्वक भगवान शिव की पूजा करते थे।[157]

एकादशी –

विष्णु से सम्बन्धित इस व्रत को ग्रहस्थ और सन्यासी अलग–अलग विधियो से मनाते थे। दो दिन एकादशी योग होने पर प्रथम दिन गृहस्थ और दूसरे दिन सन्यासी लोग इसका व्रत करते थे। यह व्रत दशमी विद्धा और द्वादशीविद्धा दो प्रकार का होता था दशमी विद्धा का द्वादशी मे और द्वादशीविद्धा एकादशी का त्रयोदशी मे पारण किया जाता था। इस व्रत मे दिन मे केवल एक बार जल ग्रहण किया जाता था। दुबारा जल पीने से व्रत भग समझा जाता था।[158]

त्रयोदशी एव चतुर्दशी –

इनमे क्रमश प्रदोष एव शिवरात्रि के व्रत किये जाते थे।[159]

इनके अतिरिक्त तिथि क्रम के अतर्गत कुछ ऐसे व्रतोत्सवो का उल्लेख मिलता है जो विशेष मासो की तिथि विशेषो मे मनाये जाते थे।

चैत्रमास –

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को लोग अपने–अपने घरो मे सेहुड के पौधो को श्वेतकमल और रक्त ध्वजाओ से सजाकर एक प्रकार का उत्सव मनाते थे। इस उत्सव के पीछे यह विश्वास था कि इस दिन इस प्रकार की प्रक्रिया करने से पाप कर्म दूर हो जायेगे।[160]

वर्षप्रतिपदा –

नर्व वर्ष का प्रारम्भ इसी तिथि से होता है। इस दिन लोग नवीन वस्त्राभूषण पहनकर ब्रह्मा, शकर, सप्तसागर, शेषनाग और यक्षो की पूजा करते थे।[161]

स्कन्दषष्ठी –

को स्कन्द (कार्तिकेय) की पूजा की जाती थी। उसकी प्रतिमा के सामने लोग दीप जलाकर नृत्यगान आदि करते थे। वही खेलने के लिए एक मुर्गा भी छोड दिया जाता था। इस पूजा के सम्बन्ध मे लोगो का ऐसा विश्वास था कि स्कन्द की कृपा से वे तथा उनकी सन्ताने सदैव निरोग रहेगी।[162] अलबरूनी ने इस पूजा का उल्लेख करते हुए बताया है कि षष्ठी पूजा के बाद सप्तमी तिथि मे ब्राह्मणो को दूध और दही दान किया जाता था।[163]

अशोकाष्टमी –

उत्सव मे अशोक के फूल से कामदेव की पूजा की जाती थी। यह तीर्थ यदि पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन विशेष प्रकार से पूजा का उपक्रम किया जाता था। जिसमे लोग अशोक की आठ कलियो को पीसकर पीते थे। सम्भवत इन्ही कारणो से भोज ने इस पर्व को अशोकाष्टमी के नाम से अभिहित[164] किया है।

उपर्युक्त पूजाओ के अतिरिक्त रात्रि मे स्त्रिया चन्द्रमा की विशेष रूप से पूजा करती थी, चतुर्थि तिथि की रात्रि मे आरम्भ होकर अष्टमी तक के चार दिनों तक यह पूजोत्सव मनाया जाता था। इस विशेष पूजा के कारण ही इस तिथि को अष्टमीचन्द्रक कहा जाता था।[165]

मदनत्रयीदशी –

स्त्रियॉ केसरिया रग के वस्त्र पहनकर बडे उत्सव के साथ रति सहित कामदेव की मूर्ति की पूजा करती थी। यह उत्सव तीन दिनो तक चलता था। इस आयोजन को मदनोत्सव और बसन्तोत्सव भी कहा जाता था।[166] इसमे लोग नृत्यगान नाटक आदि खेलते थे। पारिजात मजरी नाटिका इसी अवसर पर खेली गयी थी।[167] अलबरूनी ने इस उत्सव के बहद (बसन्त) के नाम से उल्लेख किया है।[168]

बैशााख मास – के उत्सव

अक्षय तृतीया –

शुकल तृतीया का नाम अक्षयतृतीया है। ऐसा विश्वास है कि इस तिथि मे किय गये शुभकार्य अक्षय होते है। कुशतिलादि से इस दिन तर्पण किया जाता था तथा रात्रि मे वासुदेव का पूजन भी किया जाता था।[169]

ज्येष्ठ मास .–

के कृष्णपक्ष मे होने वाले किसी भी व्रत एव उत्सव का उल्लेख नही मिलता बल्कि शुक्ल पक्ष मे किये जाने वाले कुछ व्रतोत्सवो का (उल्लेख) विवरण उपलब्ध होता है।

अरण्यषष्ठी ·–

व्रत में षष्ठी तिथि को स्त्रियॉ अपने हाथो मे पखा लेकर जगल (वाटिका) मे विहार करती थी।[170] जगल का पर्यायवाचक शब्द अरण्य है। सम्भवत इसी से इस पर्व को अरण्यषष्ठी का नाम दिया गया है।

गगा दशहरा –

उत्सव दशमी तिथि को मनाया जाता था। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इसी दिन स्वर्ग से गगा (नदी) ने पृथ्वी पर आगमन किया था। इसी दिन लोग निश्चित रूप से गगा नदी मे अथवा गगा के नाम पर किसी तालाब या बावली मे स्नान करते थे।[171] आजकल भी लोग इस तिथि को यह उत्सव मनाते है।

चतुर्दशी तिथि को स्त्रिया वैधत्व से बचने के लिए बट सावित्री का व्रत एव पूजा करती थी।[172] चण्डेश्वर के अनुसार इस दिन चावल एव फलो से परिपूर्ण एक घडा उपलेपित भूमि पर रखा जाता था। ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण ब्रह्मा और सावित्री की प्रतिमा को इस घडे पर रखकर पुष्प धूप दीप से पूजा की जाती थी। पूजा के बाद एक शुद्ध चरित ब्राह्मण को दम्पत्ति को भोजन कराकर वस्त्र एव दक्षिणाए दी जाती थी।[173]

ज्येष्ठमास की पूर्णिता आदि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन विशेष प्रकार से स्नान एव पूजन किया जाता था। जिसे महाष्येष्ठीव्रत कहा जाता था।[174]

आषाढ मास .–

हरिशयनी .– शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि यदि अनुराधा नक्षत्र के प्रथम चरण से शुरू हो तो उस दिन विष्णु का शयन उत्सव मनाया जाता था और उसे हरिशयनी एकादशी कहा जाता था। ऐसा विश्वास था कि इस दिन विष्णु अपनी योगनिद्रा मे आविष्ट होते है।[175]

श्रावण मास की पूर्णिमा को एक विशेष प्रकार का आयोजन किया जाता था जिसमे द्विजाति भाग एक विशेष सस्कार की पूर्णता के लिए रनान ,

पूजन, हवन आदि कार्य करते थे।[176] इसे श्रावणी कहा जाता था। धार्मिक जनता आज भी यह कार्य करती है जिसकी छटा काशी के घाटो पर देखी जा सकती है।

भाद्रमास :—

कृष्ण जयन्ती – कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र से युक्त होने पर जयन्ति के नाम से सम्बोधित की जाती थी। इसी दिन कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता था। झूले मे भगवान कृष्ण की प्रतिमा रखकर उसका पूजन कर बडे धूमधाम से नृत्यगान आदि उत्सव मनाया जाता था।[177] इसी दिन रात्रि मे मिट्टी की बेदी पर रोहणी के साथ चन्द्रमा की प्रतिमा स्थापित करके पुष्पफल आदि से पूजा की जाती थी और शख मे जल लेकर चन्द्रमा को अर्ध्य भी दिया जाता था।[178]

हरितालिका :—

व्रत मे शुक्ल पक्ष की तृतीया को स्त्रियॉ व्रत रखकर शिव पार्वती की पूजा करती थी तथा शिव पार्वती की कथा सुनकर रात्रि मे नृत्यगान द्वारा जागरण करके प्रात काल प्रतिमा को जल मे विसर्जित करती थी, प्रतिमा विसर्जन के बाद पारण किया जाता था।[179] चतुर्थी तिथि यदि स्वाति नक्षत्र से युक्त होती थी तो उस दिन चन्द्रमा का दर्शन नही किया जाता था, क्योकि इसके दर्शन मात्र से झूठा कलक लगता है। इस तिथि को हरिताली चतुर्थी कहा जाता था।[180]

इन्द्रध्वजोत्सव :—

को कई नामो से सम्बोधित किया जाता था। इसका उल्लेख समरागण सूत्रधार मे इन्द्रध्वजोत्सव और राजमार्तण्ड मे इन्द्रध्वजपूजा तथा

इन्द्रोत्थापन के नाम से मिलता है।[181] इनमे से जो भी नाम अगीकार किया जाय तात्पर्य केवल इन्द्र देवता की प्रसन्नता के लिए पूजा पूर्वक ध्वजोत्तोलन का आयोजन करना मात्र था। महाभारत और द्वयाश्रयमहाकाव्य जैसे ग्रन्थो मे भी इस उत्सव का उल्लेख मिलता है।[182] शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि मे स्थिर एव उदित सौम्य ग्रहो को देखकर यह पूजा आरम्भ की जाती थी।[183] 32 हाथ या 28 हाथ अथवा 24 हाथ के कपडे का एक बडा तिकोना ध्वज बनाया जाता था जिस पर आयुधो और आभूषणो से युक्त उत्तम प्रकार के वर्णों मे यक्ष देवता आदि के चित्र चित्रित किये जाते थे। ये चित्र शुभ सूचक माने जाते थे। कपडे का रग सफेद, पीला, लाल अथवा बहुरगा होता था। इसमे सफेद रग विजय देने वाला पीला मान प्रतिष्ठा देने वाला, बहुरगा जय और लाल वर्ण शस्त्र प्रकोप देने वाला माना जाता था।

इस कपडे को उत्तम कोटि के एक डडे से लगाकर एक उत्कृष्ट ध्वजा का रूप दिया जाता था। जिस कार्य को करने के लिए चतुर कारीगरो को नियोजित किया जाता था। नैवेद्य आदि से पूजित एव सुगन्ध मालाओ से अलकृत इस ध्वज की ब्राह्मणो को आगे रखते हुए पूजा करायी जाती थी। जो स्वास्तिवाचन से प्रारम्भ होती थी। विविध पूजोपरान्त रात्रि मे गाप्तवाय तथा नटो एव नर्तकियो के नृत्य सहित ध्वजा के आगे रात्रिभर जागरण किया जाता था। सूर्योदय होने के बाद पुरोहित वर्ग अग्निकुड के पचम सस्कार (हवन कुड को झाडना, लीपना, तीन रेखाए करना, रेखा करने से उमडी हुई मिट्टी की बाहर फेकना तथा पुन जल छिडकना) द्वारा अग्नि स्थापना करता था। तदनन्तर हवन के लिए उपयोगी सामग्री (घृत, घृतपात्र, गन्धपुष्प, धूपदीप, नैवेद्य, पलास समिधा, हवन करने के लिए साकल्य द्रव्य) एकत्र की जाती थी। अग्नि के दीप्त होकर धूमरहित हो जाने पर हवन करतेथे। हवनोपरान्त दिग्पालो के लिए बलिया दी जाती थी।

यह उत्सव दस दिनो तक चलता था। इसमे सम्भवत अन्य भी अनेक कार्यक्रम आयोजित किये जाते थे। अन्तिम दिन राजा विशिष्ट वस्त्राभूषण आदि से अलकृत होकर "ओ नमो भगवति" वागुले सर्वविटप्रमर्दनि स्वाहा" मन्त्र पढते हुए ध्वज को उठाते समय शुभ–अशुभ लक्षणो की परीक्षा की जाती थी। ध्वज पूर्व दिशा की ओर होने पर मत्री क्षत्रिय वर्ग एव राजाओ को तथा दक्षिण दिशा मे होने पर वैश्यो को धन धान्य आदि सिद्धियो को प्राप्त कराने वाला माना जाता था। अन्य अनेक भविष्यसूचक चिह्नो की परीक्षाए की जाती थी। ध्वज के नीचे गिर जाने पर राजा की मृत्यु की सूचना समझी जाती थी। अन्तिम दिन रात्रि मे विधानपूर्वक पुरोहित द्वारा ध्वज का विसर्जन किया जाता था।[184]

इस सन्दर्भ मे यह ज्ञातव्य है कि इस उत्सव के समय बन्दियो को बन्धनमुक्त कर दिया जाता था।[185] लोगो का ऐसा विश्वास था कि इससे अच्छी वर्षा होगी तथा देश धनधान्य से पूर्ण रहेगा।

शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के श्रवण नक्षण से युक्त रहने पर विजया द्वादशी या श्रवण द्वादशी कहा जाता था। इस तिथि से मुख्य रूप से स्नान एव विष्णु पूजन आयोजित होता था। ऐसा विश्वास था कि इस दिन के स्नान एव पूजन विधि से दस वर्षों मे प्राप्त होने वाले पुण्य एक ही दिन प्राप्त हो जायेगे।[186]

अश्विनमास :–

पितृ पक्ष :– कृष्ण पक्ष को पितृ पक्ष के नाम से अभिहित किया जाता था। इसमे पित्तरो का श्राद्धकर्म किया जाता था। अमावस्या को विशेष रूप से श्राद्ध और पिण्डदान किया जाता था।[187]

इस मास का सर्व प्रमुख उत्सव दुगोत्सव होता था। यह महोत्सव प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ होकर नवमी तक मनाया जाता था। उत्सव सप्तमी तिथि के मूल नक्षत्र से विशेष रूप से आरम्भ होता था। अष्टमी को व्रत रहकर नवमी तिथि मे देवी को पशुबलि अर्पित की जाती थी। नृत्यगान से युक्त इस उत्सव के अन्तिम तीन दिन बडे महत्व के होते थे। चौथे दिन दशमी का श्रवण नक्षत्र मे दुर्गा की प्रतिमा विसर्जित की जाती थी।[188]

प्रेतचतुर्दशी –

चतुर्दशी को सूर्य के तुला राशि और चित्रा नक्षत्र मे होने पर विष्णु की पूजा की जाती थी। इस दिन विष्णु पूजन करने से मनुष्य को प्रेत आदि दुरात्माओ का भय नही रहता।[189] सम्भवत इसी से इस तिथि को प्रेत चतुर्दशी के नाम से सम्बोधित किया गया है।

पूर्णिमा को विष्णु की पूजा करके रात्रि मे जुआ खेला जाता था। लोगो का विश्वास था कि इस दिन द्यूतक्रीडा द्वारा लक्ष्मी (धन) का आगमन होता है। इस तिथि को कौमुदी महोत्सव अथवा कोजागर के नाम से सबोधित किया जाता था।[190]

कार्तिक मास –

दीपावली :– अमावस्या की रात्रि मे लक्ष्मी का विशेष रूप से पूँजन किया जाता था। इस दिन लोग रात्रि मे अपने–अपने मकान, सडक, नदी के किनारे और देव मन्दिर आदि विभिन्न स्थानो पर दीपक जलाते थे। साथ ही लक्ष्मी के सामने आटे का विशेष प्रकार का दीपक जलाया जाता था। ऐसा विश्वास था कि इस तिथि मे लक्ष्मी अपनी योग निद्रा से जागृत होती है, इस तिथि को सुतरात्रि और यक्षरात्रि के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।[191]

शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को स्त्रिया अपने–अपने भाइयो को विशेष स्नेह की दृष्टि से मिष्ठान खिलाती थी तथा भाई उन्हे उपहार स्वरूप द्रव्य आदि कुछ वस्तुए देते थे।[192] इस त्योहार को मातृ द्वितीय कहते थे।

देवोत्थानी एकादशी को चन्द्रमा के रेवती नक्षत्र के अन्तिम चरण मे होने पर विष्णु का जागरणोत्सव मनाया जाता था। इस दिन लोग स्नान एव विष्णु पूजा करके ब्राह्मणो को दान देते थे।[193] आबू शासक धारा वर्ष के मत्री कौविदास ने इसी दिन शैव भट्टारक को भूमिदान दिया था।[194] अलबरूनी ने भी इस उत्सव का उल्लेख किया है। वह कहता है कि इस दिन लोग अपने शरीर मे गोबर लगाते और गाय के दूध, मूत्र और गोबर (पचद्रव्य) से आचमन करते थे।[195]

इस तिथि को ईख के मध्य विष्णु की प्रतिमा रखकर पूजी जाती थी। तदन्तर प्रसाद के रूप मे उस ईख के लोग चूसते थे।[196]

आकाशदीप :–

कार्तिक मास की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक देवताओ एव पितरो को लक्ष्य कर आकश मे ऊँचे बासो की सहायता से बास की पिटारियो मे रखे हुए दीपक जलाये जाते थे। इस प्रकार का दीपदान चौराहो, देव मदिरो और ब्राह्मण ग्रहो मे किया जाता था। ये दीपक घी या तिल मे जलाये जाते थे। इन्हे आकाश दीप कहा जाता था।[197]

इसके अतिरिक्त प्रात काल ब्रह्ममुहूर्त मे लोग स्नान करते थे। लोगो की यह धारणा थी कि कार्तिकमास के स्नान से चन्द्र एव सूर्य ग्रहण मे स्नान करने का फल प्राप्त होता है।[198]

माघमास –

वरचतुर्थी – शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि का वर चतुर्थी और कुन्दचतुर्थी के नाम से उल्लेख मिलता है। इस दिन प्रात काल स्त्रिया स्नानादि नित्यक्रिया से निवृत्त होकर स्वच्छ परिधान मे कौन्दी देवी की पूजा के लिए जाती थी। स्नान करती हुई स्त्रिया "उलु–उलु" शब्दोच्चारण भी करती थी, जो कामदेव के आवाहन का सकेत माना जाता था। कुन्द पुष्पो से देवी की पूजा करके आटे से बने हुए भोज्य पदार्थ नैवेद्य के रूप मे अर्पण किये जाते थे।[199]

शुक्ल सप्तमी तिथि को माघ सप्तमी अथवा सौर सप्तमी के नाम से सम्बोधित किया जाता था। इस दिन सूर्य भगवान की पूजा विशेष रूप से की जाती थी।[200]

शुक्ल पक्ष के पचमी तिथि को कलियुग की आरम्भ की तिथि मानकर कुशतिलादि से तर्पण और श्राद्ध आदि किया जाता था।[201]

इसी पक्ष की अष्टमी को भीष्म पितामह की पूजा एव उनके नाम से तर्पण किया जाता था।[202] इसे भीमाष्टमी के नाम से सबोधित किया जाता था।

पूर्णिमा को विशेष विधि पूर्वक स्नान किया जाता था। इस तिथि का माघी पूर्णिमा के नाम से भी सबाधित किया जाता था।[203]

फाल्गुन मास :–

शिव रात्रि – कृष्ण चतुर्दशी को लोग उपवास करके रात्रि के चार प्रहरो मे शिव भगवान की पूजा करते थे। जागरण को आनन्दमय बनाने के लिए नृत्यगान आदि विभिन्न कार्यक्रम भी किये जाते थे। इस पूर्व को महारात्रि के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।[204]

शुक्ल पक्ष की द्वादशी को सूर्य कुम्भ राशि का, चन्द्रमा गुरु का और पुष्यनक्षत्र होने पर विष्णु की विशेष पूजा की जाती थी। द्वादशी का पुष्यनक्षत्र से योग होने क कारण इसे पुष्यद्वादशी कहा जाता था। घी का प्राशन करके हविष्यपदार्थ का नैवेद्य लगाकर भगवान विष्णु की कथा श्रवण की जाती थी।[205]

कार्तिकेय पूजा –

फाल्गुन पूर्णिमा को कुम्भ राशि को सूर्य होने पर लोग स्नान करके कार्तिकेय की पूजा एव परिक्रमा करते थे। अन्त मे प्रतिमा को रथ पर रखकर लोग जुलूस निकालते थे।[206]

तिथिक्रम के अतिरिक्त ऋतुकर्म से भी मनाये जाने वाले अनेक उत्सवो के उललेख मिलते है। जो कि निम्नलिखित है।

बसन्त ऋतु के उत्सव –

शालमली क्रीडा :– इस क्रीडात्सव मे किसी निश्चित दिन स्त्री एव पुरूषो के अलग–अलग वर्ग अपने–अपने अपने आखो मे कपडे की पट्टियां बाधकर शाल वृक्षो के समीप लुका छिपी (आख मिर्चानी) का खेल खेलते थे।[207] इसके अतिरिक्त इस ऋतु का एक प्रमुख उत्सव धूतमजिकोत्सव था। धूत आम का पर्यायवाचक शब्द है और मजिका का तात्पर्य तोडना। इस उत्सव मे स्त्रिया आभ्रमजरी को तोडकर उससे अपना श्रगार करती थी, तथा शैष समय नृत्यगान आदि मे बिताती थी।[208]

उदकदवैडिका उत्सव :– आधुनिक होली की तरह ही यह होता था। इसमे लोग पिचकारियो से एक दूसरे पर रग छोडते थे जो कि सुगन्धित जल से बनाये जाते थे।[209]

नवलतिका – बसन्त ऋतु मे मनाया जाने वाला एक विशेष उत्सव होता था। इसमे स्त्रिया आम की मन्जरियो को लेकर अपने प्रियतम के साथ मधुरभाषण कर उन्हे आकर्षित करती थी। सरस्वती कठाभरण मे आम्रमजरी के स्थान पर पलाशपत्र शब्द का उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि आमृमजरी की जगह पर पलाश पत्र से भी काम लिया जाता रहा होगा।[210] श्रगार प्रकाश मे भी इस उत्सव का नवलतिका के नाम से उल्लेख मिलता है।[211]

पाचालानुयान :– बसन्त ऋतु मे किसी विशेष दिन स्त्रिया किसी विशेष देवी प्रतिमा के पास एक जुलूस मे होकर जाती थी और वही नृत्यगान आदि करती थी।[212] राघवन ने तमिलसाहित्य मे इस उत्सव का "पावे" के नाम से उल्लेख किया है। पावे का अर्थ होता है गुडिया इससे प्रतीत होता है कि इस उत्सव मे गुडिया के खेल का तथा गोण्डाली नृत्यगान विशेष का आयोजन किया जाता था।[213]

ग्रीष्म ऋतु के उत्सव –

उद्यान यात्रा :– ग्रीष्म ऋतु मे लोग किसी निश्चित दिन बगीचे मे जाकर भोजन करते और आनन्द मनाते थे।[214]

सलिलक्रीडा :–

उद्यान की बावलियो मे जाकर लोग मनोरजनार्थ एक दूसरे पर जल को उछालकर इस उत्सव का आयोजन करते थे।[215] धनपाल ने इस क्रीडोत्सव का उल्लेख किया है।[216]

वर्षाऋतु के उत्सव –

शिखंडिलास्य :– वर्षाकाल मे मेघो के सर्व प्रथम आगमन पर उन्मत्त मयूरो के नृत्य को देखकर लोग आनन्दित होते एव उत्सव मनाते थे। इसे नावाम्बुदाभ्युदय के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।[217]

कदम्बयुद्ध – उत्सव मे स्त्री पुरूष दोनो परस्पर कदम्बवृक्ष की कोमल टहनियो को लेकर आपस मे मनोरजनार्थ युद्ध करते थे।[218]

शरदऋतु के उत्सव –

नव पत्रिका – उत्सव शरदऋतु के आरम्भ मे मनाया जाता था। इसमे स्त्री–पुरूष नवोद्भूत घोसो पर बैठकर भोजन एव मनोरजनार्थ हसी–मजाक करते थे।[219]

विशखादिका उत्सव :– मनाने के लिए दम्पत्तिवर्ग विकसित कमलो वाली बावलियो मे जाकर दातो से कमलनाल को काटते थे। इस क्रिया को पहले पति और बाद मे पत्नी करती थी।[220]

उन उपर्युक्त उत्सवो के अतिरिक्त भ्रमर क्रीडा, चन्द्रिका लालन, हसलीलावलोकन और सरितपुलिनकेलि आदि छोटे–छोटे अनेक उत्सवो के नामोल्लेख मिलते है।[221]

हेमन्तऋतु के उत्सव :–

देवतादोलावलोकन एव क्रीडाशकुन्तसघात नामक केवल इन दोनो उत्सवो का ही उल्लेख मिलता है। प्रथम उत्सव मे लोग देव मन्दिरो मे विशेष रूप से सज्जीकृत झूले मे भगवान का दर्शन करते थे। द्वितीय उत्सव मे तीतर बटेर तथा मुर्गों आदि की लडाइया कराकर आनन्दोत्सव मनाये जाते थे।[222]

उपर्युक्त तिथियो और ऋतुक्रमिक उत्सवो के अतिरिक्त चन्द्र एव सूर्य ग्रहण तथा संक्रान्तियो के अवसरो पर भी व्रत और उत्सव मनाये जाते थे। इन अवसरों पर स्नानादि के विशेष आयोजन किये जाते थे।[223]

दान व्यवस्था

परमार राजाओ एव उनकी प्रजाओ ने केवल देव पूजन , मदिरो निर्माण तथा उनका जीर्णोद्धार ही नही कराया बल्कि उन्होने मुक्तहस्त से ब्राह्मणो को दान भी दिया उनमे मुक्तहस्त से ब्राह्मणो को दान भी दिया उनमे भूमिदान मुख्य थे।

लोग स्मृति और पुरणो के दान सम्बन्धी नियमो का पालन करते थे। स्मृति लेखको का मत है कि दान देना गृहस्थो का मुख्य कर्त्तव्य है। "दानमेव गृहस्थानाम।" बृहस्पति –स्मृति मे कहा गया है कि भूमिदान से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और वह अपने सब पापो से मुक्त हो जाता है।[224] महाभारत मे भूमिदान को सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है।[225] तत्कालीन अभिलेखो को देखने से स्पष्ट होता है कि स्वर्गप्राप्ति के उद्देश्य से ही भूमिदान किये जाते थे।[226] दान दी हुई भूमि से प्राप्त सभी वस्तुए विभिन्न प्रकार का भाग भोगकर[227] आदि भी दान ग्रहणकर्ता को मिलती थी। अर्थात उन भूमियो से जो कर राजा को प्राप्त होते थे। उन्हे वसूल करने का अधिकार अब दान ग्रहण करने वाले व्यक्ति को ही प्राप्त हो जाता था।[228] अन्य दोनो के विपरीत भूमिदान की कुछ व्यावहारिक विधिया थी। जिनके अनुसार दान की सूचना उस गाव के निवासियो, राज कर्मचारियो तथा अन्य सम्बन्धित लोगो को दी जाती थी।[229] यह घोषणा इसलिए की जाती थी कि दान दी जाने वाली भूमि के बारे मे किसी प्रकार के सन्देह की सभावना न रहे।

एक बार दान मे दी हुई भूमि का या उसके एक हिस्से का भूलकर भी किसी दूसरे ब्राह्मण को फिर से दान कर देने पर राजा इसकी सूचना पाते ही प्रायश्चित करता था और प्रथम दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मण को उस भूमि या उसके अश का मूल्य चुकाता था। अत दान देते समय अन्य

ब्राह्मणे के प्रदत्त हिस्सो को छोडकर ही (अवशेष) भूमि का दान दिया जाता था। भोज, जयसिह और देवपाल आदि शासको के अभिलेखो[230] मे उल्लिखित "देव ब्राह्मण भुक्तिवर्णम" वाक्य इसी बात का सकेत करता है।

भूमिदान किसी निश्चित अवधि तक के लिए नही होता था। बल्कि सृष्टि के अस्तित्व तक इसका स्थायित्व माना जाता था। सीयक, वाक्पतिराजभुज, भोज आदि ने अपने–अपने दान सकल्पनो मे "आचन्द्रावर्कार्णव क्षितिरामकालम्" की घोषणाए की थी।[231]

दान पत्रो पर दाताओ के हस्ताक्षर होते थे। सीयक, भुज, भोज, जयसिह आदि नरेशो ने हस्ताक्षर के लिए "स्वहस्तो य ----- नाम ----- स्य" आदि लिखते थे।[232] मदिरो के खर्च निर्वाह, देशान्तर से आये हुए ब्राह्मणो के भरण पोषण एव शैक्षिक क्षेत्रो के विद्यार्थियो और शिक्षको की आवश्यकतापूर्ति के लिए भी दान दिये जाते थे।[233] वाक्पतिराजभुज के शासनकाल मे व्यवसायी महासाधनिक ने उज्जैन की भट्टेश्वरी देवी के मन्दिर का खर्च चलाने के लिए सेम्युलपुर नामक गाव दान दिया था।[234] शिक्षा की उन्नति के लिए जयसिह ने अमरेश्वर पट्टशाला के लिए दान दिया था।[235]

दान के लिए देश, काल और पात्र का विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।[236] असमय मे अथवा अनुचित पात्र को दान देने से दान का फल नष्ट हो जाता है।[237] परमारवशीय शासको ने अपने दानो के सम्बन्ध मे इन बातो का ध्यान दिया था। दान के लिए स्थान निश्चित होते थे। पवित्रतीर्थ, नदी नट देवालय आदि दान देने के स्थल होते थे। पवित्र तीर्थो मे कुरुक्षेत्र,[238] गया[239] और वलकलेश्वर[240] आदि उल्लेखनीय है। कभी–कभी राजा लोग अपनी राजधानी में रहकर भी दान देते थे।[241] देश के साथ–साथ समय का भी विशेष ध्यान दिया जाता था। दान के लिए अधिकाशत धार्मिक पर्व ही उचित समय

माने जाते थे। प्राय सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण के अवसर पर भूमि दान दिया जाता था। सूर्यग्रहण[242] पर महाकुमार हरिश्चन्द्र एव अर्जुन वर्मा ने और चन्द्रग्रहण[243] पर वाक्पतिराजमुज और यशोवर्मा ने ब्राह्मणो को भूमिदान किया था। मन्दिरो के लिए देवाग्रहार के रूप मे भूमिदान किया जाता था।[244]

विजय प्राप्ति :– के उपलक्ष्य मे भी दान कार्य किया जाता था। भोज ने अपनी कोकणविजय के उपलब्ध मे भूमिदान दिया था।[245] उपर्युक्त अवसरो के अतिरिक्त अन्य अनेक तिथियो पर दान दिये जाते थे। वाक्पतिराजमुज ने भाद्रशुक्ला चतुर्दशी को[246] भोज ने माघतृतीया[247] को देवपाल और महाकुमार हरिश्चन्द्र ने क्रमश भाद्र एव वैशाख मास की पूर्णिमा[248] को तथा जयवर्मा ने मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया को ब्राह्मणो को भूमिदान दिया था।[249]

विशेष तिथियो के अतिरिक्त सामाजिक सस्कारो के अवसर पर भी भूमिदान की प्रथा प्रचलित थी। यशो वर्मन ने अपने माता–पिता के वार्षिक श्राद्ध की तिथियो पर ब्राह्मणो को भूमिदान दिया था।[250] पुत्रोत्पत्ति के उपलब्ध मे भी भूमिदान का कार्य किया जाता था।[251]

देशकाल के अतिरिक्त दान के सम्बन्ध मे पात्र का भी ध्यान रखा जाता था। दान प्राय वैदिक तथा उत्तमगोत्र प्रवरवाले ब्राह्मणो को ही दिये जाते थे। इनके प्रमाण देवपाल और जयवर्मा द्वितीय जेसे अनेक राजाओ के अभिलेखो से प्राप्त होते है।[252]

दानविधि :– दानार्पण के लिए कुछ आवश्यक शास्त्रीय विधिया भी होती थी। जिनक अनुसार भूमिदान देने वाला व्यक्ति नदी आदि किसी जलाशय में स्नानोपरान्त स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहनकर देव, ऋषि और पितरो के लिए पर्तण एव भगवान शकर की पूजा करके समिधा और कुशतिलादि से हवन करता था।

तत्पश्चात वह गाय की तीन बार प्रदक्षिणा करके उत्तम कुल गोत्र वाले वैदिक ब्राह्मणो को भूमि दान देता था।[253] अलबरूनी ने भी ब्राह्मणो को दिये जाने वाले भूमिदानो का उल्लेख किया है।[254]

भूमिदान के अतिरिक्त अन्य वस्तुए भी दान मे दी जाती थी। भोज के सामन्त यशोवर्मन ने एक जैन मन्दिर के पुजारी सुव्रतमुनि को मन्दिर का खर्च चलाने के लिए भूमि के अतिरिक्त दो तेल की मिले, व्यवसायिओ को चौदह दुकाने (दुकानो से प्राप्त होने वाले कर) और चौदह (दुकानो से प्राप्त होने वाले कर) और चौदह द्रम (सिक्के) दान मे दिया था।[255] इसी प्रकार जन्न नामक एक तेली (पटेल) ने सैधवदेव नामक शिव मदिर मे चार पैली तेल शिव उत्सव के अवसर पर दान दिया था।[256]

आबू शासक प्रताप सिह ने पट्टविष्णु के मन्दिर का खर्च चलाने के लिए अनेक व्यवस्थाए की थी।[257] वागड के शासक चामुण्डराय ने एक शिव मदिर के सम्बन्ध मे चैत्रमास मे मनाये जाने वाले उसके वार्षिकोत्सव के लिए पीतल के बर्तन बनाने वाले (ठठेरो) से प्रतिमास एक–एक द्रम, शराब खाने से प्रति चुम्बुक चार रूपक, द्युतगृह से दो रूपक, प्रतिवर्ष तेल से एक पाणक तेल, प्रतिरमक नारियल से एक नारियल, प्रतिभूटक नमक से एक माणक नमक और प्रतिपटक घी से एक पालिका घी दान के रूप मे देने की व्यवस्था की थी।[258] इसी प्रकार मीनमाल के शासक कृष्णराज ने जगत स्वामी नामक सूर्यमदिर के लिए भूमि के अतिरिक्त अनाज की व्यवस्था की थी।[259]

इस प्रकार इस समय के लोगो की दान शीलता ने धर्म को अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया था। महाराज वर्मन के बारे मे उल्लेख मिलता है कि उसने अपने दान कार्यों द्वारा एक पैर वाले धर्म को अनेक पैरो वाला बना दिया।[260]

उपर्युक्त विवरणो के एकत्र समवाय को धार्मिक सहिष्णुता का मूर्तरूप कहा जा सकता है। इसकी विवेचना मे यह ज्ञातव्य है कि तत्कालीन शासक एव प्रजा दोनो ही वर्ग अपने व्यक्तिगत धर्मों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय एव धर्मों को भी प्रश्रृयात्मक महत्व की दृष्टि से देखते थे। इस सन्दर्भ मे यह भी जानने योग्य बाते है कि अपने अभिमत सम्प्रदाय से भिन्न सम्प्रदायो के व्रतो एव उत्सवो मे भी लोग भाग लेते थे। यह बात अलग है कि स्त्री प्रधान व्रतो एव उत्सवो मे स्त्री ही भाग लेती थी। ऐसे भी अनेक व्रतोत्सव आयोजित होते थे। जिनमे सामूहिक रूप से सभी लोग भाग लेते थे और किसी प्रकार का भेदभाव नही होता था। उदाहरणार्थ इन्द्रध्वजोत्सव आदि।

सीयक द्वितीय के एक शिलालेख मे शिव और विष्णु दोनो की स्तुतियॉ साथ–साथ की गयी है।[261] इसी प्रकार भोज शिवभक्त होते हुए वैष्णव एव शाक्त सम्प्रदायो के साथ–साथ जैन धर्म का भी आश्रयदाता था। जैनाचार्य सूरिभानतुग और देवभद्र भोज के मनरूपी सरोवर के दो राजहस कहे गये है।[262] यद्यपि यह सकेत तो कुछ उत्युक्तिपूर्ण मालुम पडता है कि धारा के अब्दुल्लाह चगाल की कब्र के हिजरी सन् 859 (ई0 स0 1455) के लेख के अनुसार भोज ने मुसलमानी धर्म ग्रहण करके अपना नाम अब्दुल्ला रख लिया था। गुलदस्ते अब्र नामक उर्दू की एक पुस्तक के अनुसार भी भोज अब्दुल्लाशाह फकीर की करामातो को देखकर मुसलमान हो गया था।[263] परन्तु किसी भी समकालिक विश्वस्त प्रमाण के अभाव मे यह इस्लामी मुल्लाओ की कॅपोल कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नही प्रतीत होता। भोज जेसे विद्वान धार्मिक शिव भक्त और प्रतापी शासक का बिना कारण ही अपने वशानुगत धर्म को छोडकर मुसलमानी मजहब की शरण लेना असम्भव प्रतीत होता है।

यह अवश्य सम्भव प्रतीत होता है कि उसने अपने राज्य की विभिन्न धर्मावलम्बनी प्रणाओ की तरह मुसलमानो को पूर्ण धर्म सहिष्णु दृष्टि से देखा हो जिससे बाद के मुसलमानो मुल्लाओ ने उसकी इस्लाम धर्म मे आस्था का भ्रम कर लिया हो।

पाद टिप्पणी

1 डी0 सी0 गागुली–परमार राजवश का इतिहास पृष्ठ 64
2 A S I 1929-30 P 187
3 P R A S W C 1919, P 65
4 E I 9, P 188-92 गोपीनाथराव–Elements of Hındu Iconography P 342
5 वरदा 2 पृष्ठ 54
6 Early chauhan Dynasty Page 263
7 देवीभागवत, पचम स्कन्द, अध्याय 30,31
8 त्रिपुरारहस्य महात्म्यखड, अध्याय 8, श्लो0, 53–102 ।
9 ABORI VOL IV, P 99
10 IA VOL XX, P 312
11 JBBRAS VOL XXII, P 78
12 मूलेन प्रतिपूजयेद भगवती चण्डा शुचण्डाकृति ——— ABORI, VOL, XXXVL, P 327
13 द्रष्टव्य, मारकण्डेयपुराण का देवी महात्म्य अध्याय।
14 ABORI VOL XXXVI, P 327-28
15 ओ ओ नयो मारत्यै, प्रासादार्थ माधुर्य समाधिसमता दय – युवयौर्य गुणसन्ति वाग्देव्यौ तैपि सन्तु न । EI VOL II, P 182-
16 ति0 म0 पृ0 37, IA. VOL VI, P 51, VOL XIV P 160
17 The Socıo Religıous Condıtıon of North Indıa, P 253
18 दृयाश्रृयमहाकाव्य, सोलहवा, 61
19 The Socıo-Religious condıtıon of North Indıa, P 250

20 Sachau Vol I, P 120

21 ABORI VOL XXXVI P 312, Verse 5

22 IA, VOL XX, P 312

23 कनकामा महाशक्ति देवीता लुसमुद्भवा। सुवर्णसख्या नकुली बाग्देवी रत्नभूषणा।। त्रिपुरारहस्य, महात्म्यखड अध्या0 67, श्लो0 63–64

24 ति0 म0, पृ0 63

25 The Socio Religious condition of North India-P 226-27

26 E I. Vol xv P 138 C II Vol III No 6

27 C I I Part II Page 43

28 C I I. Page-43 E I Vol XI P 181 Vol III Page 48 Vol VIIIP 320

29 EI VOL XI, P 181, VOL III, P 48, VOL XVIII, P 329, IA VOL XIV, P 160, VOL VI, P 48, VOL IXIX, P 352, JASB VOL VII, P 736, IH VOL VIII, P 305

30 तत्रादित्य प्रतापे गतवति सदन, स्वर्ग्गिणा भर्ग्गभक्ते व्याप्ताधोरव धात्री रिपुतिमिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत C I I VOL.II, P 81, EI VOL I, P 236

31 JASB VOL X, P 241, IA VOL XX, P 311; EI VOL I, P 233, VOL XIV, P 297

32. गगाम्बु संतिक्त भुजगभक्त
मालैक्लैन्दोरम्लाकुराभा,
यन्मूध्नि नर्मेक्ति कल्पवल्या
मातीवभूलै स तथास्तु शम्भु – E 1 Vol I P 233

33 वृतगगन सिधुपुट्ट शैक्तसुता शलमजिका समग
जयति जगभयमण्डप मूलस्तम्भो महादेव
भोजदेव प्रणीत तत्वप्रकाश पृष्ठ–85

34 JASB Vol VII P 736 EI Vol III P 48 IHQ-Vol- VIII P 311, I A Vol XIX P 352 Vol VI P 53 Vol XVI P 254

35 JASB Vol VII P 737 ARASı 1918-19 part I P 17 5 IA Vol- XI P 221 E1 Vol II P 184

36 I A VOL XI, P 221

37 IA Vol XI P 222 Vol L VI P 51 E1- Vol- XIX P 71 JASB Vol XVIII P 347

38 Asıatıc Research Vol- XVI P 285- PARTH PARAKRAM VYAYOG of Prahaladandeva Apendıx No 3

39 तत्वप्रकाश, त्रिवेन्द्रम सस्कृ त सिरीज, ग्रन्थाक 58

40 JASB VOL VII, P 737

41 केदार रामेश्वर सोमनाथ सुडीर कालानल रूद्रसत्के। सुराश्रत (ऐ) व्यक्ति च य समन्ताद्यथार्थ सज्ञा जगती चकार EI VOL. I, P 236

42 रेउ, राजा भोज, पृ0 92

43 श्री भोजराज रचित त्रिभुवन नारायणस्यदेवगृ है
यौ विरचयतिस्म सदाशिव परिचर्या स्वशिवलिप्सु
Vıenna Orıental Journal, Vol XXI, P 143

44 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 3, पृ0 1–18

45 द्रष्टव्य अष्टम परिच्छेद (धार्मिक वास्तुकला)

46 वृषभ प्रति मोगार्थ मार्गे विशोपको दत्त
EI VOL XXI, P 42

47. JASB VOL X, P 241-42

48 चकार आयतनं शम्भोरमोनिधि समसर तत् सन्निधाने–हनुमत् धौत्रपाल गणेश्वरान स्थापयाभास कृष्णादीननु–कुलीशमथम्बिका

IA VOL XX, P 312

49 BOM GAZ VOL I, PART I, P 472

50 IA VOL XI, P 220

51 I bıd, P 220

52 बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ0 547

53 धवल भस्म ललाटिकाभि अदामालिका परिवर्तन प्रचलकरत–लाभि पाशुपत व्रतधारिणीभि कादम्बरी, पृ0 424

54 AK Majumdar, P 293

55 Collected Works of Bhandarkar, Vol IV, P 166

56 EI VOL XI, P 39

57 Collected Works of Bhandarkar, Vol IV, P 172

58 IA VOL XI, P. 220

59 AK Majumdar, P 294

60 IA VOL XI, P 220

61 Bom Gaz VOL I, Part I, P 473, EI VOL V, Appendıx P 93-689

62 V S Pathak, Hıstory of Saiva cults ın Northern Indıa, P 21

63 उदकग्रालकस्तय महाव्रतधारोमुनि
दिनकरो नाय य साक्षात्कपालीव शकर
Pr AIOC, 1919, P. 324

64 शूकर, नृसिह वामन, राम, वासुदेव, और कृष्ण

65 वायुपुराण पृष्ठ 97, 98

66 ओ वियुच्चककडार केसर सटाभिन्नाम्बुद श्रेणय
शोण नेत्रहुताशडम्बर धृत सिहाकृते शाड्ण्गिण
EI VOL XIX, P 241.

67 चन्द्रावती परकुलौदधिदूर मग्नाम्,
उर्वी वराह इव य स दधार
IA VOL XLV, P 78

68 वैश्वरूपय समस्यस्य मीना आकृति कैतवात्
एवा भिन्न निर्मिताशेष विश्वो विष्णु पुनातु व
EI VOL II., P 182

69 EI VOL XIX, P 177, VOL XX, P 236

70 I bid VOL XVIII, P 323

71 IA VOL XLV, P 77, JBBRAS, VOL XXIII, P 78

72 IA VOL VI, P 51, VOL XIV, P 160

73 EI VOL XIX P 241

74 ABORI, VOL XXXVI, P 312 Verse 35

75 अनय बामन शीरिं वैकुण्ड पुरूषोत्तमम्
वासुदेव हृषीकेश माधव मधुसूचदनम्
साराह पुण्डरीकाक्ष नृसिह दैत्य सूदनम्
दामोदर पद्मनाभ केशव गरूणहवणम्
ABORI. VOL XXXVI, P 321, Verse 19-20.

76 JBBRAS. VOL XXIII, P 78, JAOS VOL.VII, P 25

77. HISTORY OF BENGAL VOL I, PL-II NO 7

78 EI VOL. VIII, P. 243.

79 नारायण चतुर्बाहु शख चक्र गदाधरम्
ABORI VOL XXXVI, P 321, Verse 122

80 IA. VOL XLV, P 77.

81. EI. VOL. X, P. 109, Line 20

82 Pro Rep. ASI Western Circle. 1906-7, P 26

83 ASR (Cunningham) VOL II, P 270.

84 ABORI, VOL XXXVI, P 314-16, 320-22,

85 Collected Works of Bhandarkar, Vol IV, P 221

86 मकरो भगवान देवो भास्कर परिकीर्तित

मकर ध्यान योगाश्च मगाहयेवे प्रकीर्तिता भविष्य पुराण अध्या0 134,

The Socio-Religious Condition of North India, P 257

87 Socio Religious Condition of North India, P 257

88 Sachau, VOL I P 121

89 Bom Gaz, VOL I, Part I, P 472

90 EI VOL XXII, P 59-60, Bom Gaz VOL I Part I, P 472

91 यस्योदयास्त समये सुरमुकुट निस्पृष्ठ करचरण कमलौस्मि्

करूते स जलि त्रिनेत्र स जयतिधाम्ना निधि सूर्य

Bom Gaz VOL I, Part I P 472

92 स0 सू0, छत्तीसवा अध्याय

93 स0 सू0 छत्तीसवा अध्याय

EI VOL. XXII P 160

94 Sachau, VOL I, P 10

95 ति0 म0, पृ0 207, 209, नवसहासाकचरित, द्वितीय 82–83

IA VOL XVI, P 354

96 दिनमिव्यपिनी कृष्णा शुक्ला चैन तु सप्तमी ।

उपाव्या सा महापुण्या अवश्मेघकल्प्रवा।।

दियिव्यामिनी षष्ठी सप्तम्या अष्टमी मवैत् ।

षष्ठया सौरव्रत कुर्यावष्टम्यामेव पारणम् ।।

ABORI VOL XXXVI, P. 314

97 EI. VOL. IX, P 13

98. I bid. VOL. XXII, P 61

99 Bom Gaz VOL I, Part I, P 472

100 IA VOL XX, P 312, JBBRAS VOL XXIII, P 78

101 EI VOL I, P 234

102 भोजविरचित शालिहोत्र,

JASB VOL VII, P 736, JBBRAS, VOL XXIII, P 78

IA VOL XX, P 311

103 ABORI, VOL XXXVI, P 332

104 JBBRAS VOL XXIII, P 78

105 IA VOL XX, P 312

106 हवनात्मक महारुद्र प्रयोग, पृ0 138—52, 69

107 वही, पृ0 138—52 ।

108 IA VOL XX, P 312

109 I bid P 312

110 ABORI, VOL XXXVI, P 318-20

111 ABORI VOL XXXVI, P 320

112. ति0 म0 पृ0 55ए बल्लालकृत, जगदीशलाल, भोज प्रबन्ध, पृ0 295 ।

113 स0 सू0, 36 । 4—25 ।

114 EI VOL XI, P 181, XVIII, P.320, VOL III, P 48

IA VOL XIV, P 160, VOL XVI, P 252, VOL. VI, P 48

IHQ. VOL VIII, P 305

115 JBBRAS. VOL XXIII, P 75, JASB. VOL.VII, P 737

PC Tawney, P. 58,

116. IA, VOL. LVI, P 12

117. ति0 म0, पृ0 52

118 ओ ओ नमो वीवरागाय।

स जयतुजिन भानुर्मव्य राजीवराजी ।।

जनित वर विकाशोदत्त लोक प्रकाश ।

EI VOL XXI, P 50

119 Asiatic Researches, VOl XVI, P 312

120 भारती, फरवरी 1955, पृ0 116–17 ।

121 Peterson's Fourth Report, Introduction, P 3

122 नाथूराम प्रभी, पृ0 412

123 Peterspm's Third Report P 91, Verse 23

124 Epigraphia Carnatica, VOL II, P 35

125 PC Tawney, P 52

126 I bid, P 46

127 द्वाम्या यन्न हरि वमिर्न चहर सृष्टा न चौवाष्टनिर्यन्न

द्वादशभिर्गुहो न दशकन्धेन लकापति।

– प्रचि0 मू0 पाठ, पृ0 39

P C Tawney, P 57

128 आख्यानाधिपतौ वुधादविगुणै श्री भोजदेवनृपै।

अमिभव्यम्बर से सपण्डित शिरोरत्नादिव्धन्मदान।।

योऽनेक्तत् शतशो व्यजेण्ट पटुताभीष्टौयमी वादन।

शास्त्राम्योनिधि पारगोऽभवदता श्री शान्तिषेणो गुरु।।

EI VOL II P 239

129 P.C Tawney - P 36-42

130. Petension's Forts Report Introduction P 4

131 नाथूराम प्रेमी पृष्ठ – 289

132 Peterson's Third Report, P 95, Verse 8

133 Peterson s Third Report, P 95, Verse 9-10

134 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 144—145

135 द्रष्टव्य परिच्छेद शिक्षा एव साहित्य

136 रेउ, राजाभोज, पृ0 318 ।

137 विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, A K Majumdar, P 314

138 नाथूराम प्रेमी, पृ0 347 ।

139 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157, नाथूराम प्रेमी, पृ0 347
Bhandarkar's Report on the Search for the Sanskrit
Menscript, 1883-84, P 104

140 द्रष्टव्य शिक्षा एव साहित्य

141 भारती, फरवरी, 1955, पृ0 122 ।

142 History of the Parmara Dynasty. P 196

143 श्री मद्भुर्जनम्पाल राज्ये श्रावकसकुले
निजधर्मोदपार्थ यौ नलकच्छपुरेऽवसत् ।
Political History of Northern India, P 116

144 द्रष्टव्य, शिक्षा एव साहित्य

145 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 161

146 IA VOL XI, P 255

147 IA VOL XI, P 255 (Historical Record of Jain)

148 EI VOL. XIX, P 72-73

149 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 79
Jainism in Rajasthan, P 25

150. तेनाकारि मनोहर जिनगृह भूषणम्
श्री वृभभनाथ नाम्न प्रतिष्ठितं भूषणेन बिम्बमिदम् ।
EI VOL XXI, P 54

151 D C Gangulı, Hıstory of the Parmara Dynasty, P 319-20

152 Jaınısm ın Rajasthan, P 25

153 EI VOL VIII, P 200

154 I bıd, P 200

155 I bıd P 200-201

156 षठयापुपोण्य य सभ्यक् सप्तम्यामर्क मर्कमर्चयेत्––

दिनाभिव्यापिनी षष्ठी सप्तम्याष्टमी भवेत्

षष्ठया सौरव्रत कुर्यादण्टम्यामेव पारणम्

ABORI VOL XXXVI P 308 314 Verse 1-53

157 ABORI. VOL. XXXVI, P 308, Verse 3

158 I bıd, P 315-16

159 I bıd, P 308, Verse-3

160 ABORI VOL XXXVI, P 334, Verse 240

161 कृ0 क0 नियतकालकापड् पृ0 377–82 कृ0 र0, पृ0 103–8

162 वही, पृ0 382–83, वही, पृ0 119

163 Sachau,VOL II, 176.

164 ABORI VOL XXXVI, P 333, Verse, 233-35.

165 स्पृहयन्तीव्रतक् अष्टमीचन्द्रक सहि चैत्र चतुर्थित –

अष्टमचतुर्थयाम् उदीयमान कामिनीमिरम्यच्यते

राघवन, श्रंगार प्रकाश, पृ0 649

166 ABORI VOL. XXXVI, P 233. Verse 236-37

167 EI. VOL. VIII, P 96

168 Sachau, VOL. II, P. 178.

169 ABORI, VOL XXXVI, P. 317, Verse 84, EI VOL XIV, P 198

170 ABORI VOL. XXXVI, P 335, Verse 251

171 I bıd, P 335-336, Verse 252-60.

172 ज्येष्ठमसि चतुर्दश्या सावित्रीव्रतमुत्तमय्
अवैधव्य कर्वन्ति स्त्रिय श्रद्धा समन्विता
ABPRO VOL XXXVI, P 335, Verse 349

173 कृ0 र0, पृ0 195

174 राघवन, श्रगार प्रकाशण पृ0 654

175 ABORI VOL XXXVI, P 314, Verse 61

176 I bıd, P 327, Verse 178-79

177 I bıd, P 320-22, Verse 113-40

178 ——— पूज्यदेव सचन्द्रा रोहिणी तथा
शख तोय समादाय—— चन्द्रायार्ध निवेदयेत
ABORI VOL XXXVI, P 323 Verse 134-35

179. ABORI VOL. XXXVI, P 323, Verse 141-44

180 I bid, P 323, Verse 144

181 स0 सू0 सत्रहवा अध्याय
ABORI. VOL XXXVI, P 324-27 Verse 145-177

182 महाभारत, आदिपर्वण चौसठवा अध्याय, तीसरा 8

183 ABORI VOL XXXVI, P. 323, Verse 145

184 ABORI, VOL XXXVI, P 323-27, Verse, 145-77
स0 सू0, 17/20—212

185 स0 सू0, 17/134

186 ABORI. VOL XXXVI, P 320, Verse III-12

187 BP. Majumdar, P. 286.

188 ABORI. VOL. XXXVI, P 327-28, Verse 180-184.

189 ABORI, VOL XXXVI, P 329, Verse 191-98

190. I bid. P. 328, Verse, 190

191 स0 क0, पृ0 579, ति0 म0, पृ0 221ण राघवनण श्रगार प्रकाश पृ0 657 ABORI VOL XXXVI, P 329

192 ABORI VOL XXXVI, P 329

193 ABORI VOL XXXVI, P 315

194 IA VOL XLIII, P 193

195 Sachau, VOL II, P 177

196 राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 658

197 ABORI VOL XXXVI, P 330, P 330 Verse 204-5, 208-9

198 ——— चन्द्रसूर्यग्रहोपमान्

कार्तिके सकक्ते मासे प्रात

ABORI VOL XXXVI, P 331, Verse 215

199 राघवन, श्रगार प्रकाश पृ0 653,

ABORI, VOL XXXVI, P 331, Verse 216-17

200. ABORI VOL XXXVI, P 332

201 I bıd, 332, Verse 225-26

202 I bıd, P 332, Verse 225-26

203 I bıd, P 3331-32, Verse, 218-21

204 IA VOL LVI, P 51

205 ABORI VOL XXXVI, P 333

206 I bıd, P 332, Verse 227-29

207 एकमेव कुसुमनियर शाल्मलीवृक्षमानित्यत्र

मुनिमीलित काणिभि. लैलता कीडा कीडैक शाल्मली

राधवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 651

208 राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 652

209 गन्धोकवकपूर्ण वशनाडी न्त्डगकादिभि चूना
प्रियजनाभिषेक कदमेन कीडा उदकदवैदिया
राघवन, श्रगार प्रकाश, 653

210 यत्र कस्ते प्रिय इति पृच्छद्भि पलाशा दिन वल तामि
प्रियो जनो हयते सा चूतलतिका
राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 653

211 राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 653

212 वही, पृ0, 654

213 वही, पृ0 654

214 राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 655

215 वही, पृ0 655

216 ति0 म0, पृ0 15

217 राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 655

218 वर्षासु कदम्बनी पर्धारद्रकादि कुसुमे प्रहरणभूतै द्विधा
बल विभज्य कामिना कीडा कदम्बयुद्धानि
राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 656

219 राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 656

220 राघवन, श्रगार प्रकाश, पृ0 657

221 वही, पृ0, 658

222 राघवन श्रगार प्रकाश, पृ0 659

223 ति0 म0, पृ0 148, JASB VOL VII P 737
JAOS. VOL. VII, P. 32-33

224 Brihaspati smritı, 13 15

225 अति दानानि सर्वाणि पृथिवीदानमुच्यते
महाभारत, अनुशासन पर्व, 62/12

226 षष्ठिवर्ष सहप्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिद
भूमि स प्रतिगृहणाति यश्च भूमि प्रयच्छति
उमौ तौ पुण्यकर्माणी स्थित स्वर्गगामिनौ
EI VOL IX P 117, JASB VOL VII, P 736,
IA VOL XVI, P 252

227 विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, राज्य की आय के साधन

228 दीयमान भाग भोगकर हिरण्यादिक माज्ञा--- समुपनैतव्य
स----- सहिरण्यभागभोगकर सोपरिकर सर्वादायसमेत सनिधिनिदीप
प्रदत्त /IA VOL VI, P 48, 53

229 E I VOL XIX, P 236, VOL IX, P 103, VOL XVIII, P 320,
VOL XI, P 181, JASB VOL VII, P 736

230 सुमुपगतान्समस्त राजपुरूषान् ब्राहमणोतरान् प्रतिनिवासि पट्टकिल
जनपदार्दीश्च समादिलत्यस्तु व सविदितम्
JA VOL XVI P 254, VOL XIV, P 160
EI VOL XI, P. 182, VOL XVIII, P 322, VOL III, P 48
IHQ VOL VIII, P 311

231. IHQ VOL. VIII, P 305, EI, VOL. III, P 48
VOL. IX, P 103, 117

232 EI. VOL. XIX, P 236, VOL. XI-P 181
VOL. III, P 48, VOL XVIII P 320
IA VOL XIV P 160 VOL VI, P 48, JASB VOL.VII, P 736

233. EI. VOL. XI, P 181.

234 IA. VOL. XIV. P 160

235 सर्वादाय समेतश्च श्री अमरेश्वर पट्टशाला ब्राह्मणेभ्य भोजनादि निमित्तम

EI VOL III P 49

236 The Socio-Religious Condition of North India, P 302, F N 6

237 I bid, F N 7

238 ARASI, 1902-3, P 256

239 EI VOL XXV, P 317

240 I bid, vol XIX, P 71

241 IA VOL VI, P 48

242 JASB VOL VII P 737, JAOS VOL VII, P 32-33

243 IA VOL XIV, P 160, VOL XIX, P 353, Pr AIOC 1919, P 324

244 ति0 म0, पृ0 148

245. "कोकणग्रहण विजय पर्वणी"

EI VOL XI P 182, VOL XVIII, P 323

246 "भाद्रपद शुक्ल चतुर्दस्या,"

IA VOL VI, P 51

247 "माधवसित तृतीयायाम्"

IA VOL. VI, P. 53

248 EI VOL IX, P 109, JASB VOL VII, P 737-38

249 EI. VOL IX, P 122.

250 IA VOL. XIX, P 349, 353

251 I bid, VOL XVIII, P 130

252 EI VOL. IX, P, 102 117.

253 IA VOL. XVI, P. 252, VOL VI, P 51, EI VOL. XI, P 182, JASB. VOL. VII, P 736

254 Sachau, VOL II, P. 147

255 तैल पाणक हय वागकष्ट्टाश्चतुर्दश

हया ऐव शात्र चतुर्दश ददाति

EI VOL XIX P 73

256 तैलिकान्वय पट्टकिल चाहिलसुत पट्टाविलजनकेन

श्री सैन्धवदेव पर्वनिमित दीपतैल चतु पल मेक--- कीत्वा

JASB VOL X P 242

257 IA VOL XLV, P 79

258 EI VOL XIV, P 302-3

259 Bom Gaz VOL. I, Part I, P 472

260 प्रतिप्रभात दत्तैग्रमिपदै स्वयम्

अनेकवदता निन्ये धर्मो येनेकपार्दाभ

EI VOL IX, P 121,

JAOS VOL VII, P 25

261 EI. VOL XIX, P 236, VOL II, P 132

262 Petersıon's Third Report, P. 91

263 रेउ, राजाभोज, पृ0 96

❑❑

अध्याय–4

शिक्षा साहित्य एवं कला

शिक्षा साहित्य एवं कला

शिक्षा और साहित्य के विकास की दृष्टि से परमार काल अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती राजवशो मे विशिष्ट स्थान रखता है। परमार राजवश के शिक्षा और साहित्य के बारे मे तत्कालीन अभिलेखो से ज्ञान प्राप्त होता है। परमार शासक स्वय तो विद्या और साहित्य अनुरागी तो थे ही उन्होने विद्वानो को पर्याप्त सरक्षण भी प्रदान किया। परमार भोज की मृत्यु पर एक समकालीन कवि ने यह कहा कि "आज भोजराज के दिवगत हो जाने पर धारा (नगरी) निराधार हो गयी है, सरस्वती निरालम्ब हो गयी है और सभी पण्डित (अपने आश्रय से) टूट गये है।"

"अद्य धारा निराधार निरालम्बा सरस्वती।

पण्डिता खण्डिता सर्वे भोजरात दिवगते।।

परमार भोज की बहुमुखी प्रतिभा और उसके अधीन मालवा की बहुश्रुति (ख्याति) ध्यान मे रखते हुए गयारवी शताब्दी का प्रथमार्द्ध भारतीय इतिहास मे भोज का युग कहा जा सकता है।[1]

वास्तव मे परमार नरेशो के विद्या और साहित्य के प्रति लगाव का परिचय उनके अभिलेख लेखन शैली से ही प्राप्त होने लगता है। परमार अभिलेखो का आरम्भ उनके ईष्ट अराध्य की वन्दना से होता है। महान भोज एक सहिष्णु शासक थे उन्होने व्यक्तिगत रूप से शैव हाते हुए अन्य सभी धर्मों के प्रति अनुराग प्रदर्शित किया। भोज परमार के अभिलेख 'ओं जयति व्योम केशा' या 'ओ नम समरारति' के उद्बोधन से आरम्भ होते है जो भगवान शिव के प्रति उनके समर्पण एव निष्ठा के द्योतक है–

(1) ओ (।।) जयति व्योमकेशासो य सर्ग्गाय वि(वि) भर्ति ता (ताप)। एदवी सि (शि) रसा लेखा जगही (ही) जाकुराकृति (तिम्) ।। (1।।)

(2) तन्वतु व स्मराराते कल्याण मनिस (श) जरा। कल्पान्त समयोद्यामत डिद्वलयपिगला ।। (2।।)

(3) परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सीयकदेवपादानुध्यात् परम भट्टारक महाराजधिराज

(4) परमेश्वर श्री वाक्पतिराजदेव पदानुध्यात् परमभट्टारक महाराजधिराज

(5) परमेश्वर श्री सिन्धुराज देव पादानुध्यात् परमभट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव

× × × ×

(6) रु भगवन्त भवानीपति समभ्यच्चर्य ससारस्यासारतादृष्टवा (वा) (।।) वाताभ्रविभ्रममिद वसुधधिपत्य

(7) मापातमात्रमधुरी विषयोपभोग। प्राणास्तुणाग्रजलवि बि दुसमा नराणा धर्म्म सखा परमहोपरलोकयाने भ्रमत्ससार (चक्रागधाराधारमिमा श्रिय (यम्) प्राप्य ये न ददुस्तेषा पश्चात्ताप पर फलामि ।

× × × ×

स्वहस्तोय श्रीभोजदेवस्य (।)[2]

उपरोक्त अभिलेख भोदजेव का देपालपुर ताम्रपत्र है। जिसमे सबसे पहले परमार भोज के अराध्य देव शिव की अर्चना आरम्भ की दोनो पक्तियो मे की गयी है। पुन महान भोज के पूर्वजो श्री सीयक देव श्री वाक्पति राजदेव श्री सिन्धुराज के प्रति सम्मान प्रकट करने के बाद भोजदेव का नाम

आया है। अभिलेख की नवी व दशवी पक्तियो मे भूमिदान का उल्लेख है जो दानग्रहीता के जीवित रहने तक का है। अत मे भोजदेव का नाम उत्कीण है जो यह सिद्ध करने के लिए है कि अभिलेख के अत मे अभिलेख उत्कीण कराने वाले राजा का नाम होना चाहिए।

इसी तरह झालरापाटन का जगद् देव का अभिलेख ओ नम शिवाय की स्तुति से और डोगरगाव प्रशस्ति भी ओ नम शिवाय से आरम्भ होता है।

जैनद पाषाण प्रशस्ति जो कि जगददेव के समय का है 'ओ नम सूर्याय' की स्तुति से आरम्भ होता है।

उपरोक्त सभी अभिलेखो मे अभिलेख लेखन की मान्य परम्पराओ का पालन–पहले मगलाचरण फिर परिचय प्रकाशन विषय तिथि और अत मे उपसहार और उत्कीण कराने वाले का नाम उत्कीण रहता था किया गया है।

इसी तरह भोजदेव के कल्वन ताम्र लेख मे – सूर्यग्रहणे सागरतरग चचल जीवलोकच्छा यासमा लक्ष्मी' उत्कीर्ण है जिससे यह स्पष्ट होता है कि उक्त अभिलेख सूर्यग्रहण की तिथि का उत्कीर्ण हुआ।

नरवर्मन उदयादित्य अर्नुनवर्मन और स्वय भोज आदि न सिर्फ विद्वानो के समादरकर्त्ता थे अपितु स्वय की उच्चकोटि के विद्वान थे– महानभोज ने साहित्य की सभी विधाओ मे लेखन कार्य किया जिनमे प्रमुख है।

(1) व्याकरण और अलकार शास्त्र–सरस्वती कंठाभरण श्रृगार प्रकाश और प्राकृतव्याकरण

(2) योगशास्त्र – पातजलयोग सूत्रवृत्ति (राजमार्तण्ड)

(3) काव्य और नाटक–कूर्मशतक चम्पूरामायण (भोजचम्पू) और श्रृगारमजरी

(4) शिल्प शास्त्र – समरागणसूत्रधार और कृत्यकल्पतरु

(5) शैवागम–तत्वप्रकाश

6) ज्योतिष और वैधक – भुजबलनिबध राजमृगाक

(7) कोश– नाममालिका और शब्दानुशासन।

अनेक युद्धो के विजेता और समसामयिक राजनीति मे सतत रुचि लेने वाले महाराजधिराज कविराज शिष्ट शिरोमणि धारेश्वर श्री भोजदेव की उपरोक्त साहित्यक कृतिया उसकी असीम शारीरिक और बौद्धिक शक्ति की और वशजो ने शिक्षा और साहित्य के विकास का जो प्रकाशपुज प्रज्वलित किया वह आज तक मानव सभ्यता एव साहित्य को प्रज्जवलित कर रहा है।

सामान्यत अभिलेखो की रचना विजयो दानो उत्सवो एव अवसर विशेष पर ही की जाती थी इसलिए ततकालीन शिक्षा और साहित्य पर अभिलेखो मे विस्तृत वर्णन प्राय नही मिलता है परन्तु तत्कालीन साहित्यिक साक्ष्यो के परवर्ती साहित्यिक साक्ष्यो के समर्थन से परमारकालीन शिक्षा और साहित्य के चतुर्दिक विकास की पुष्टि होती है।

प्रशस्ति एवं अभिलेख रचनायें:–

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र मे शिलालेख एव ताम्रपत्रो का भी कुछ कम महत्व नही है। विषयगत दृष्टि से ऐतिहासिक परिचय प्राप्त करने के लिए इनका विशेष महत्व है। सुविधानुसार ये भिन्न–भिन्न भाषाओ और

भिन्न–भिनन विधियो से उत्कीर्ण करवाये जाते थे। सामान्य विशेषताए निम्नलिखित है–

मगलाचरण –

प्राय प्रत्येक अभिलेख के प्रारम्भ मे अपने सम्प्रदाय के अनुसार अपने इष्टदेव की स्मरण से सम्बन्धित मगलाचरण का प्रयोग किया जाता था। ये मगलाचरण कही छन्दोबद्ध और कही गद्यमय रचना के रूप मे उद्धृत किये जाते थे। कही–कही इन मगलाचरणो के अनेक श्लोक मिलते है।[3]

परिचय –

मगलाचरण के बाद शिलालेख लिखाने वाले राजा के पूर्वपुरूषो के सक्षिप्त परिचय के साथ प्रकाशक का निजी परिचय दिया जाता था। राजाओ के पारस्परिक सम्बन्धो के परिचय के लिए अनुध्यात, या पदानुध्यात पद के प्रयोगो का बाहुल्य रहता था।[4]

प्रकाशन विषयः–

अभिलेखो के लिखाने का उद्देश्य मुख्य रूप से शिलालेखो के मध्य भाग मे रहता था। ये उद्देश्य कई प्रकार के होते थे। यथा विजयो के उल्लेख,[5] दान सम्बन्धी विवरण[6] एव श्राद्ध आदि सामाजिक अवसरो का ज्ञापन।[7]

उपसहार:–

प्राय प्रत्येक प्रशस्ति के अत मे कुछ सामान्य बाते होती थी। अधिकांशत अभिलेखों मे जीवन के प्रति दार्शनिक विचार उपलब्ध होते है। जीवन को जलबिन्दुवत क्षणिक माना जाता था।[8] दान के सम्बन्ध में यह विश्वास

था कि भूमिदान करने वाला व्यक्ति मृत्युपरान्त स्वर्ग प्राप्त करता है तथा दान दी हुई वस्तु का हरण करने वाला नर्कवास या उसी प्रकार की अन्य अधोगति प्राप्त करता है।[9] इस सदर्भ मे यह भी ज्ञातव्य है कि अभिलेखो मे कथनो की पुष्टि के लिए पूववर्ती अभिलेखो मे सन्निहित श्लोक एव अन्य विवरण लिखवाये जाते थे।[10] अभिलेखो के इस प्रकार के अश कुछ तो उनकी रचना करने वालो द्वारा निर्मित होते थे[11] और कुछ शास्त्रीय ग्रन्थो से उद्दृत होते थे।[12] इसी कारण तत्कालीन अभिलेखो मे पुररूक्तिया बहुश मिलती है। कही–कही तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उपस्थित लेख–पूर्वपठित शिलालेख का अनुलेख मात्र है। इस प्रकार के अभिलेखो मे अभिलेखकर्त्ता के नाम आदि का भिन्नता मात्र के अलावा कोई नवीन बात नही मिलती।[13]

ख – शिक्षा

शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य –

मानव का सर्वांगीण विकास शिक्षा के बिना सभव नही है। इसके द्वारा विकसित बुद्धि ही पशु और मनुष्य के अतर का स्पष्ट करती है। परमार वशीय शासको के युग तक भारतीय शिक्षण पद्धति का सम्यक विकास हो चुका था।

भारतीय साहित्य मे सर्वप्रथम "शिक्षा" शब्द ऋग्वेद मे आया है।[14] राहुल सास्कृत्यायन के अनुसार उक्त स्थल मे प्रयुक्त शिक्षा का अर्थ "देना" है।[15] अन्यत्र शिक्षाका अर्थ है विद्या प्राप्ति के लिए गुरू के निकट जाना।[16] यही व्यवहार मे भी प्रचलित है।

जहाँ तक भारतीय विचारको का मत है धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारो पुरूषार्थो की प्राप्ति ही शिक्षा का उद्देश्य है। यह उद्देश्य शिक्षा को धर्म के साथ जोडता है। धर्मविहीन शिक्षा विषतुल्य समझी जाती है। भोज प्रबन्ध[17] मे कहा गया है कि जो मनुष्य धर्म से विमुख है वह बलवान होते हुए असमर्थ, शास्त्रज्ञ होते हुए मूर्ख और धनवान होते हुए भी निर्धन है। ऐसा प्रतीत होता है कि परमारकाल के पूर्व शिक्षा का जो अर्थ एव उद्देश्य स्थिर हो चुका था। वही इस युग मे भी मान्य है।

प्रारम्भिक एवं उच्च शिक्षा–

साधारणतया छ वर्ष की अवस्था से बालको की शिक्षा आरम्भ की जाती थी।[18] प्रारम्भिक शिक्षा मे अक्षरज्ञान आदि कराया जाता था। छात्र के पूर्ण व्युत्पन्न हो जाने पर विद्या विशेष आदि का आरम्भ होता था। विद्यारम्भ सस्कार के विषय मे शुभ समय का विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। आद्रा, श्रवण, स्वाती, चित्रा, हस्त, भूल, पूर्वात्रय, रेवती, अश्लेषा पुनर्वसु, मृगशिरा, घनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्रो एव बुध गुरु और शुक्रवार के दिन विद्यारम्भ करवाया जाता था।[19] अध्ययन आरम्भ करने के पूर्व विद्यार्थी हरि, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवी, देवताओ की स्तुति करके अपना अध्ययन कार्य आरम्भ करते थे।[20]

उच्च शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। किन्तु यह बताना सभव नही है कि साधारण लोग शिक्षा से कितना लाभ उठाते थे एव देश में कितने प्रतिशत लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। परमारो के समय शिक्षा के लिए बडे–बडे स्कूल, पाठशालाओ की व्यवस्था थी।[21] प्रारम्भिक शिक्षा सम्भवत अक्षरज्ञान से प्रारम्भ होकर विद्याविशेष प्राप्त करने के अधिकारी बनने तक होती थी और उच्च शिक्षा अध्ययन विशेष नीतिशास्त्र धर्मशास्त्र आदि की होती थी।

शिक्षा के विषय–

भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है। समाज की धार्मिक आस्था का प्रभाव पाठ्यक्रम पर भी पडता है। प्रारम्भिक शिक्षा के समाप्त हो जाने के बाद विद्यार्थी विशेष शिक्षाओ को प्राप्त होने मे प्रवृत्त होते थे। विशेष शिक्षा का पाठ्यक्रम निम्नलिखित होता था[22]–

वेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

वेदाग– शिक्षा, कलप, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष,

शास्त्र – न्याय (तर्कशास्त्र आदि), वैशेषिक, साख्य, योग, मीमासा, वेदान्त (उपनिषद आदि)

पुराण– भागवत अदि।

साहित्य– रस, अलकार, दृश्यकाव्य, नाटक, प्रबन्ध, उपन्यास, आख्यायिका आदि।

अन्य–इतिहास, भूगोल, चित्रकला, वीणावादन,[23] कामशास्त्र,[24] शिल्पशास्त्र, रसायन विज्ञान, औषधि विज्ञान, खगोल विद्या आदि।[25]

शास्त्र विद्या– धनर्वाण, खड्ग, कुन्त, गन्दा, चक्र, शूल, कृपाण आदि युद्ध सम्बन्धी अन्य शस्त्रकलाये।[26]

उपर्युक्त पाठ्यक्रम मे वेद की शिक्षा ब्राह्मणवर्ग के लिए अनिवार्य होती थी।[27] इसे कुछ लोग अर्थ सहित कठस्थ करते थे और कुछ लोग अर्थरहित। इसका पठन–पाठन एक दूसरे से सुनकर चलता था।[28] यह परम्परा इस समय के लिए नवीन नही थी बल्कि वैदिक काल से चली आ रही थी।

इसी से इसे श्रुति भी कहा जाता है। अलबरुनी[29] के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय ही वेदाध्ययन के अधिकारी होते थे। किन्तु जहा तक धर्मशास्त्र का सम्बन्ध है वैश्य भी इसका अधिकारी माना जाता है। सभव है उस समय वैश्य वर्ग मे इस विषय की शिक्षा दीक्षा नगण्य हो गयी हो। यह तो स्थिर है। जैसा कि अलबरुनी ने भी कहा है कि शूद्र को वेदाध्ययन करना तो दूर रहा, वह उसके श्रवण का भी अधिकारी नही ता था।

धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र, और शस्त्रविद्या की शिक्षा क्षत्रियवर्ग विशेषत युवराजो को दी जाती थी।[30] इसके अतिरिक्त अन्य विषयो मे भी इनका प्रवेश कराया जाता था।

अन्याय विषयो मे लोग अपनी अभिरुचि या पेशा के अनुसार प्रवृत्त होते थे। वाक्पति राजमुज के समय बसताचार्य एक महान दार्शनिक था।[31] भोज स्वय ज्योतिष, खगोलशास्त्र, शिल्प, साहित्य आदि विषयो मे अनेक ग्रन्थो की रचना की थी।[32] उसने कहा है कि नीतिहीन शासको की सुख–सम्पत्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।[33]

क– साहित्य

काव्य रचनाः–

शिक्षण पद्धति के समुचित विकास पर ही साहित्य का विकास निर्भर करता है। परमारो ने शिक्षा के विकास के लिए पर्याप्त प्रयास किया। अभिरुचि प्राय. समान रूप से साहित्य की ओर उन्मुख थी। जिसका परिचय भोज आदि परमार वशी राजाओ की कृतियो से प्राप्त होता है। दोषरहित, गुणवान, अलकार सहित, रसयुक्त, काव्य कवि की कीर्ति एव प्रतिष्ठा को बढाता

है।[34] इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य मे इस समय साहित्य रचना के सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रकार के विविध विचार किये जाते थे।

दोष विचार– भोज के अनुसार निर्दोष काव्य निर्माण के लिए सोलह दोषो को ध्यान मे रखना आवश्यक होता था। वे थे– असाधु, अप्रयुक्त, कष्ट, अनर्थक, अत्यधिक, अपुष्टार्थ, असमर्थ, अप्रतीत, क्लिष्ट, गूढ, नैयार्थ, सदिग्ध, विरूद्ध अप्रयोजक, वैश्य तथा ग्राम्य।[35] पदवाक्य तथा वाक्यार्थ मे होने वाले दोषो पर ध्यान देने वाला कवि ही दोषरहित काव्य की रचना कर सकता है।[36] इस प्रकार काव्य रचना सम्बन्धी दोष विचार साहित्य रूप की पवित्रता के लिए आवश्यक समझा जाता था।

गुण विचारः– काव्य रचना के दूसरी ध्यान देने योग्य वस्तु गुण है। ये वाह्य अभ्यतर और वैशेषिक भेद से तीन प्रकार के होते थे।[37] वाह्यगुण का सम्बन्ध शब्द से आभ्यतर अर्थ से और वैशेषिक गुण का दोष युक्त रहने पर भी गुणयुक्त बनाने वाला होता है। इन गुणो की सख्या चौबीस थी।[38]

अलंकार विचार– साहित्य रचना का तीसरा तत्व अलकार है। अलकर की अर्थ होता है आभूषण। आभूषण के बिना जिस प्रकार सुन्दरी युवती का सौन्दर्य भी दर्शको का दृश्य आकृष्ट करने मे असमर्थ रहता है उसी प्रकार अलकार के बिना काव्य चमत्कृति नगण्य सी रहती है। इस क्षेत्र मे राजा भोज की एक विशेष देन थी। जिसका हम अवलोकन करेगे।

अलकार के तीन भेद माने जाते है। शब्द से सम्बन्ध रखने वाला अलकार शब्दालंकार, अर्थ से सम्बन्ध रखने वाले अलकार अर्थालकार तथा दोनो से सम्बन्ध रखने वाले अलकार उभयालकार कहलाते है।

अ– शब्दालकार– भोज के अनुसार शब्दालकारो की सख्या चौबीस होती है।[39] जाति, गति, रीति, वृत्ति, छाया, उक्ति, मुक्ति, गणित, गुम्फना, शय्या, पठिति, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वाकोतार्थ, पहेली (प्रहेलिका) गूढ। प्रश्नोत्तर, आध्येय, श्रृव्य, प्रेक्ष्य तथा अभिनीत। इन चौबीस अलकारो मे श्लेष, यमक अनुप्रास और चित्र इन चार शब्दालकारो से तो हम भलीभाति परिचित है परन्तु इनके अतिरिक्त हम रीति, वृत्ति आदि भी शब्दालकार की श्रेणी मे आते है।[40]

शब्दालकार मे मुख्य अलकार ज्ञातव्य की दृष्टि से निम्नलिखित माने जाते थे।

चित्रालंकार– चित्र का अर्थ होता है आश्चर्यकारक वर्ण, स्थान, स्वर, आकार, गति और बन्ध आदि इनके छ भेद होते थे।

(क) वर्ण चित्रालकार– इसमे व्यजन सम्बन्धी अलकार को वर्ण चित्रालकार कहते है। चार, तीन दो और एक व्यजनो से बने हुए श्लोक होते थे।[41] ह्रस्व एव दीर्घ स्वरो आदि की रचनाए होती थी।[42]

1 चार व्यजनो वाला श्लोक –

जजौजोजाजिजिज्जाजी त ततोऽतितताततितुत्।

भा भौ भी भा भिम्मामूरारा रि र रि री र र ।।360।।

तीन व्यजनो वाला श्लोक–

देवानां नन्दनो देवो नोदनो वेदनिन्दिनाम्।

दिय दुदाव नादेन दाने दानव नन्दिन ।।361।।

दो व्यजनो वाला श्लोक–

भूरिभिर्भारिभिर्भीरौर्भूभारैरभिरैभिरे।

मेरीरेभिभर भ्राभैरभी रुभिरिभौरिमा ।।362।।

एक व्यजनो वाला श्लोक–

न नोननुन्नो नुन्नोनो ना नाऽनानानना ननु।

नुन्नो नुन्नो ननुन्नेनो नाऽनेनानुन्न नुन्न ननुन् ।।363।।

– स0 क0, परि0 2, पृ0 275–76

2 ह्रस्व स्वर वाला श्लोक–

ऊरुगु घुगुरू यूत्मु चुकृशुस्तुष्टुवु पुरु।

लुलुमु पुपुषुर्मुत्सु मुमुहुर्तु मुहुर्मुहु ।।377।।

दीर्घ स्वर वाला श्लोक–

वै धै रै नै रै शै रैन्द्रै रै जै रै लै जैनै सै द्वै।।

मै त्रै नै कै धैय्यै वै रै दै स्वै स्वैरैदैवैस्तैस्तै ।।378।।

स0 क0, परि0 2, पृ0 280–81

ख– **बन्ध चित्रालंकारः–** चित्रालकारो मे वर्ण चित्रालकार के बाद महत्व की दृष्टि से बन्धचित्रालकार विचारणीय है। इसके अनेक भेद होते थे। जैसे–अष्टवलकमलबन्ध, चतुषपत्र कमलबन्ध, पोडसपत्रकमलबन्ध,

षडचक्रकमलबन्ध, तुरगपदबन्ध, द्विचतुषचक्रबन्ध, श्रृगारकबन्ध, विविडित चक्रबन्ध, शरयन्धबन्ध, व्योमबन्ध, मुखबध, एकाक्षरमुरजबन्ध, मुरजप्रस्तारबन्ध, पादनोमूत्रिका बन्ध, आदि।[43]

ग– **प्रहेली रचना** :– प्रहेली रचनाओ का भी कम महत्व नही था। इसके यह भेद माने जाते थे। च्युताक्षरा, दत्ताक्षरा, अक्षरमुष्ठी, बिन्दुमती और अर्थपहेली। एक या दो अक्षर रहित पदो का कथन मे प्रयोग करना च्युताक्षरा पहेली कहा जाता है। वाक्य प्रयोग मे एक या दो अक्षर जोड देने से उसे दत्ताक्षरा पहेली कहा जाता है। जिस पहेली मे कही वर्ण कम दिये जाय और कही बढा दिये जाय तो वह च्युतदत्ताक्षरा पहेली हो जाती थी। एक प्रकार से अक्षरो के समूह का जिस वाक्य मे बार–बार प्रयोग होता है उसे अक्षरयुष्टि पहेली कहते है। सामान्य भाषा मे पहेली बुझौवल के कहा जाता है। उस समय रचना मे शब्दो की योजना कुछ ऐसे तोड मरोड के साथ रखने की विधि भी प्रचलित थी जैसे किसी शब्द से एक अक्षर कम कर दिया, किसी मे एक अक्षर कम कर दिया, किसी मे एक अक्षर बढा दिया। कही–कही तो ऐसे विचित्र शब्दो का विन्यास मिलता है जिनमे से एक–एक वर्णों को हटा कर उनके स्थानो पर नये वर्णों का प्रयोग कर दिया गया है। परन्तु फिर भी अर्थाबोध मे कोई त्रुटि दिखाई नही देती।[44]

उस समय बिन्दुगत श्लोको की भी रचनाये होती थी। जिस रचना मे व्यजन या स्वर वर्णों के स्थान मे बिन्दु का प्रयोग होता है और यात्राये ज्यो की त्यो रहती है उसे बिन्दुमती रचना कहते है। जैसे–

ϙooा ϙoo oा oा ϙoò ooϙò oo ।

oाoò वाoò ि ि oóo oo óीर्वव ।।

ब— **अर्थालकार—** विशुद्ध रूप से अर्थालकार याने जाने वाले अर्थालकारो की सख्या चौबीस है। जाति (स्वभावोक्ति) विभावना, हेतु अहेतु, सूक्ष्म, उकर, विरोध, सम्भव, अन्योन्य, परिवृत्ति, निदर्शना, भेद, समाहित, भ्रान्ति, वितर्क, मीलित, स्मृति, भाव, प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तवचन (आगम) उपमान, अर्थापत्ति और अभाव।[45] इन अलकारो के लक्षण अधिकाशत दडी के लक्षणे की भाति ही है। भोज ने आवश्यकतानुसार केवल सूक्ष्य परिवर्तन करके अच्छे लक्षणो को उद्धत किया है। उक्त सूची मे कुछ नाम नये प्रतीत होते है परन्तु वस्तुत वे प्राचीन अलकारो के नवीन नामकरण मात्र है। भोज के अर्थालकारो के विषय मे कुछ प्रमुख बाते इस प्रकार है—

(1) भोज ने रुद्रट के करणमाला को अपने अहेतु नामक अलकार मे अतर्भूत कर लिया है।

(2) भोज ने दृष्टान्त नामक कोई अलकार नही माना है। बल्कि निदर्शना को ही दृष्टान्त की भाति ग्रहण किया है।

(3) व्यातिरेक को इन्होने भेद के नाम से अभिहित किया है।

(4) भ्राति मे इन्होने इसके समस्त भेदो—भ्रान्ति, भ्रान्तिमान, भ्रान्तिमाला, भ्रान्त्यातिशय और भ्रान्त्याव्यवसाय को अन्त्यर्भूत कर दिया है।

(5) वितर्क, संशय, या सदेह का ही दूसरा नाम है।

(7) मिलित के अतर्गत इन्होने विहित, अविहित, तवगुण और अदतगुण—इन चारो को माना है।

(8) अभिनय, आलेख्य, मुद्रा और प्रतिबिम्ब नामक अलकार चतुष्टय भोज के उपमान के अतर्गत आते है।

(9) रूद्रट के उत्तर एव सार नामक अलकारो को भोज ने एक करके ——— नाम से सम्बोधित किया है।

स– **उभयालकार** – अलकार शास्त्र मे अर्थालकार समझे जाने वाले प्राय सभी अलकारो को भोज ने उभयालकार की कोटि मे परिणित किया है। उनकी भी सख्या 24 होती थी। उपमा, रूपक, साम्य, सशयोक्ति, अपहनुति, समाच्युक्ति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतस्तुति, तुल्ययोगिता, उल्लेख, सहोक्ति, समुच्चय, आक्षेप, अर्थान्तन्यास, विशेष, परिष्कृति (परिकर) दोपक, द्रम, पर्याय, अतिशय, श्लेष, भाविक और ससृष्टि।[46] अन्यत्र भोज ने शब्दालकार को वाह्य, अर्थालकार को आभ्यन्तर और उभयालकार को वाह्यअभ्यन्तर कहा है।[47]

रस विचार :–

काव्य रचना का चौथा तत्व रस है। जिसे कुछ लोगो ने काव्य की आत्मा माना है।[48] अभिमान, अहकार तथा श्रृगार रस के पर्यायवाचक शब्द माने जाते थे।[49] भाव, जन्मानुबन्ध आदि रस की चौबीस आश्रयभूत विभूतियॉ मानी जाती थी।[50]

रस के विवेचन सम्बन्धी भोज का सिद्धान्त सर्वाधिक नवीन है तथा पूर्वाचायो से पृथक सिद्धान्तो पर अवलम्ति है। यद्यपि यह सही है कि अलकारशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तो, नियमो या लक्षणो का निर्धारण करने मे भोज ने साधारणत. मम्मट एव दण्डी के मार्गो का अनुसरण किया है। परन्तु उनके रस सिद्धान्त मे उक्त आचार्यद्वय के सिद्धान्तो की अपेक्षा कुछ परिमार्जित प्रगति

परिलक्षित होती है। भोज ने प्रसिद्ध नौ रसो के अतिरिक्त अनेक अज्ञात रसो का भी उल्लेख किया है जैसे– वीर, औद्वत्य, साध्वस आदि।[51] इन रसो मे से रीति, अभर्ष, विषाद एव जुगुप्सा के द्वारा सम्भवत इन्होने श्रगार, रौद्र, करुण तथा वीभत्स की सूचना देनी चाही है परन्तु अन्य रसो की गणना राजा भोज की सर्वथा नई सूझ की परिचायिका है।

साहित्य के शब्द विन्यास पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। वर्णों की रक्षा के लिए उदयादित्य और नववर्मन ने तो स्वय घोषणा ही कर दिया था।[52] धनपाल ने अठारह प्रकार के अक्षरो का विन्यास करने का सकेत किया है।[53]

लिखित अक्षरो को सुखाने के लिए सनहले रग का चूर्ण पदार्थ छिडका जाता था। उससे लेख सुन्दर दिखाई पडते थे।[54] ग्रन्थो के आरम्भ मे मगला चरण लिखने की प्रथा उस समय भी प्रचलित थी।[55] चित्रपट द्वारा शिक्षा देने की विशेष प्रथा का उल्लेख मिलता है। धारा नगरी स्थित शारदा सदन (आधुनिक कमालभौल मस्जिद) की दीवारो पर दो रेखाचित्र उत्कीर्ण है जिनमे व्याकरण के साधारण नियमो का उल्लेख किया गया है।[56] प्रथम चित्र मे नागरी के सस्कृत वर्णाक्षर तथा व्याकरण के सिद्धान्त उत्कीर्ण है। सम्भवत ये दोनो चित्र विद्यार्थियो के निर्देशन के लिए बनाये गये थे। इसी प्रकार का एक रेखाचित्र उज्जैन के महाकाल मदिर मे भी उत्कीर्ण पाया गया है।[57]

शिक्षण संस्थायें

प्रारम्भिक काल मे परिवार ही शिक्षा के केन्द्र होते थे जहॉ बालको को हर प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। धीरे–धीरे समाज की प्रगति के साथ–साथ शिक्षा का क्षेत्र बढने लगा। और उसमे दुरुहता और विविधता का समावेश हुआ। परिणाम स्वरूप इसके लिए अलग सस्थाओ का निर्माण होने लगा।

महान विद्यानुरागी राजा भोज ने धारा नगरी मे सस्कृत के पठन–पाठन के लिए भोजशाला नामक एक विशाल शिक्षण सस्था का निर्माण कराया था। उसे शारदा सदन के नाम से भी सबोधित किया जाता था।[58] आजकल इसके स्थान पर कमालमौल मस्जिद विद्यमान है।[59] भोज के समय इस सस्था को शिक्षा का सबसे बडा केन्द्र होने का गौरव प्राप्त था। जहॉ दूर–दूर से विद्यार्थी अपनी बौद्धिक पिपासा शान्त करने के लिए किये जाते थे। इसमे बडे–बडे विद्वान अध्ययन कार्य के लिए नियुक्त थे।[60]

इसी विद्यालय के समीप एक कुआ था जो सरस्वती कूप के नाम से विख्यात था। लोगो की ऐसी धारण थी कि जो व्यक्ति इस कुए का जल पी ले उस पर सरस्वती की कृपा हो जायेगी।[61]

मदिरो एव शैवाचार्य तथा जैन मठो मे भी शिक्षण कार्य होता था। उदयपुर के नीलकठेश्वर मदिर की दालान मे विद्यार्थियो को वेदाध्ययन कराने का उल्लेख मिलता है।[62] इसी प्रकार धारा नगरी के पार्श्वनाथ के जिन बिहार और उज्जैव के शैवमठ इस सदर्भ मे उल्लेखनीय है।[63] आबू मे भी सस्कृत शिक्षा का एक केन्द्र था जहा भारत के विभिन्न कोनो से लोग शिक्षा ग्रहण करने के

लिए जाते थे।[64] जालौर मे कुमार विहार नामक सस्था जैन साहित्य के शिक्षण का मुख्य केन्द्र थी।[65]

शिक्षण कार्य विद्यालयो के अतिरिक्त व्याख्यान मडलियो अथवा व्याख्यानशालाओ से भी होता था।[66] कही–कही सभाओ मे भी लोग काव्य के गुण दोष पर विचार करते थे।[67]

शिक्षण सस्थाओ का आकर्षण एव उपादेयता बढाने के लिए उनकी दीवारो पर शिक्षाप्रद एव व्यवहारोपयोगी श्लोक सूक्तिया और भिन्न–भिनन रचनाए उत्कीर्ण करायी जाती थी। भोजशाला की दीवारो के पत्थरो पर भोज द्वारा रचित कूर्मशतक, नामक दो खण्डो वाले प्राकृत काव्य और भर्तृहरि की कारिका जैसे अन्य कई ग्रन्थ उत्कीर्ण थे।[68] उदयदित्य, नरवर्मन, अर्जुनवर्मन, आदि नरेशो ने उस पर शिलालेख उत्कीर्ण कराये थे। रेउ महोदय ने इस पाठशाला मे श्याम पत्थर की बडी–बडी शिलाओ पर करीब चार–चार श्लोको के समूह खुदवाये जाने का अनुमान किया है।[69] नरवर्मन ने इस पाठशाला के स्तम्भो पर अपने पूर्वज उदयादित्य के बनाये वर्ण, नाम और धातुओ के प्रत्ययो के नाम बन्धचित्र खुदवाया था।[70] अर्जुन वर्मन ने अपने गुरु मदन की बनायी पारिजात मजरी नाटिका शिलाओ पर खुदवायी थी। उस नाटिका में से दो अक प्राप्त भी है।[71]

स्त्री शिक्षा :–

भारतीय शिक्षा का इतिहास स्त्री शिक्षा के अध्ययन के बिना पूर्ण नही होता। तत्कालीन स्त्री शिक्षा के दो प्रकार मिलते है। गृह स्थसत् परिवारो की कुल वधुओ के लिए उपयुक्त शिक्षा, तथा गणिकाओ का उनके योग्य शिक्षा।

सामान्य सत्परिवार की स्त्रियो की व्यक्तिगत प्रतिभा तथा योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा के अध्ययन का अवसर प्राप्त होता था। यद्यपि स्त्रियो के लिए कोई निश्चित पाठ्यक्रम नही निर्धारित था, परन्तु तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थो के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वे वेद, उपनिषद, नाट्यवेद, गान्धर्ववेद, गीतवाय, व्याकरण,[72] भाषाविज्ञान, साहित्य, कामसूत्र, राजनीति, शिल्पशास्त्र, गणित,[73] छन्द,[74] आदि विविध विषयो की शिक्षाए प्राप्त करती थी। भोज के समय की कवियित्रि सीता महती पडिता थी। जिसने वेद, रधुवश महाकाव्य, वात्स्यायन के कामसूत्र एव चाणक्य की राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थो का अध्ययन किया था।[75] इसी प्रकार भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती गणित की पडिता था जिसके नाम पर ही भास्कराचार्य ने (12वी शदी के अत मे) गणित की एक पुस्तक (लीलावती) की रचना की थी।[76]

स्त्रियॉ छन्दो का भी ज्ञानर्जन करती थी। वे अपने विदेश गये हुए पतियो को छन्दबद्ध रचनाओ द्वारा सदेह भेजा करती थी।[77] वे छन्दो के उच्चारण मे निपुण एव प्राकृत भाषा की विशेषज्ञ होती थी।[78]

गणिकाओ की शिक्षा का कुछ और ही क्रम होता था। इन्हे कामसूत्र मे वर्णित चौसठ कलाओ मे निपुणता लास्य नृत्य मे प्रवीणता, काव्य रचना मे चातुरी आदि योग्यताओ से सम्पन्न कराया जाता था।[79] भोज के अनुसार श्रृगार मजरी वार्ता करने मे कुशल, चौसठ कलाओ मे निपुण, प्रश्नोत्तर मे मुखर, लास्यनृत्य मे प्रवीण और काव्य रचना में चतुर थी तथा कामसूत्र आदि पुस्तको को समझने की शक्ति रखती थी।[80] इसी प्रकार रत्नदत्ता की वार्ता से ज्ञात होता है कि उसने युवावस्था मे ही सभी विद्याओ एव कलाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। नृत्य मे भी उसने योग्यता प्राप्त की थी।[81] श्रृगारमजरी से

स्पष्ट होता है कि गणिका वर्ग के अध्ययन का क्षेत्र बडा व्यापक था तथा गणिकाय साधारण वर्ग की स्त्रियो से अधिक शिक्षित होती थी।

स्त्रियो मे रचनात्मक प्रवृत्ति होती थी वे किसी भी पद्याश की पूर्ति तत्काल कर लेती थी।[82] एक बार भोज ने धनपाल को यह आदेश दिया कि वह तिलक मजरी मे उसे ही प्रधान पात्र के रूप मे चित्रित करे। कहते है कि धनपाल के वैसा करने से अस्वीकार करने पर भोज ने उसकी वह पुस्तक जलवा दी। राजा के इस कृत्य से धनपाल बहुत दुखी हुआ। उसकी पुत्री बालपडिता को तिलकमजरी का प्रथम भाग याद था। जिसे उसने अपने पिता की सात्वना के लिए लिख दिया। पुन इसका दूसरा भाग स्वय लिखकर तिलकमजरी को उसने पूर्ववत तैयार कर दिया।[83]

भोज का दरबार अनेक विदुषी स्त्रियो की प्रतिभाओ से युक्त था। वे पुरूषो के समान ही प्रखर बृद्धि वाली थी। एव अपनी योग्यताए से शकाओ का समाधान तथा वाद विवाद करती थी। भोज अपने दरबार मे उपस्थित एक ब्राह्मण वधू के सुन्दर शब्दो और परिष्कृत शैली मे वार्तालाप को सुनकार सोचने लगा कि निश्चय ही वाग्देवी की विलासमयी मूर्ति है। नि सन्देह एक अशिक्षित स्त्री इतनी उच्च कोटि की विदुषी नही हो सकती।[84] एक अन्य बूढी ब्राह्मणी की शिक्षा से प्रभावित होकर भोज ने उसे पुरस्कृत किया था।[85] इस प्रकार भोज प्रबन्ध मे अनेक ऐसी स्त्रियो के उल्लेख मिलते है जिनकी वाक्चातुरी और प्रबन्ध रचना से स्वय भोज चकित हो जाता था।

स्त्रियो के प्रश्नोत्तर विद्वतापूर्ण होते थे। जिनके अनेक उदाहरण प्रबन्ध चिन्तामणि में मिलते है। एक ऐसी ही विदुषी के उत्तर से प्रभावित होकर मेरुतुग ने उसे बुद्धि की कोष एव सरस्वती की कृपापात्री आदि कहा है।[86] इस विदुषी स्त्री से अपने प्रश्नो का तत्काल उत्तर पाकर भोज ने उसके प्रत्येक शब्द

का तीन–तीन लाख मुद्राए पुरस्कार मे दी।[87] पुरस्कार की इस मात्रा का वर्णन अतिरजित हो सकता है। किन्तु इससे तत्कालीन स्त्रियो की स्मरणशक्ति, प्रतिभा एव उन्हे प्राप्त होने वाले राजकीय सम्मान का ज्ञान तो होता ही है।

कवि एव लेखको का राज्याश्रय –

शिक्षा एव साहित्य के उन्नयन मे कवियो एव लेखको को प्राप्त होने वाले राज्याश्रय बडे महत्वपूर्ण साबित होते है। समुचित राज्याश्रय और गुण ग्राहकता प्राप्त होने पर ही कवि या लेखक अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दे पता है। परमार शासको के प्रशासन मे कवियो एव लेखको को पर्याप्त प्रश्रय प्राप्त था। वाक्पतिराजमजु के राज्याश्रय मे पद्मगुप्त, भट्टहलायुध, धनिक, धनजय, धनपाल, अमितगति, शोभन[88] महोसन,[89] और भल्ल[90] के निवास करने के सकेत मिलते है। पद्मगुप्त धनन्जय और महासेन के तो राजकवि के पदो पर आसीन होने की परम्परा मिलती है।[91] सिन्धुराज के समय भी पद्मगुप्त को राजकवि के नाम से ही सम्बोधित किया जाता था।[92] भोज के समय उत्वट, सीता,[93] प्रभाचन्द्र[94], श्रीचन्द्र[95] श्रुतिकीर्ति[96] और धनपाल ने भरपूर राज्याश्रय प्राप्त किया था। नरवर्मन का आश्रयभूत एव प्रिय लेखकर जिन वल्लभ था।[97] विन्ध्यवर्मा के समय विल्हण और आशाधर ने साहित्य क्षेत्र को प्रकाशित किया। विल्हव, अर्जुन वर्मा और देवपाल का भी समकालिक था।[98] इसी प्रकार आशाधर भी सुभट वर्मन, अर्जुनवर्मन देवपाल और जैनुगीदेव के राज्यकालो मे रह चुका था।[99] अर्जुनवर्मन के राज दरबार का मुख्य लेखक मदन था। जो उसके राजगुरू के पद पर भी आसीन था।[100]

सरस्वती के इन वरद पुत्रो को राजागण उपाधियो से अलकृत एव पुरस्कार द्वारा सम्मानित कर उनके गौरव के साथ अपना भी गौरव बढाते थे। वाक्पतिराज मुज ने अपनी सभा के कवि धनपाल को सरस्वती[101] की उपाधि से

और भोज ने भास्कर भट्ट को विद्यापति की उपाधि से विभूषित किया था।[102] बिल्हण कवि शिरोमणि[103] तथा मदन बाल सरस्वती[104] के विरूदो से अलकृत हुए थे। कवि या विद्वत वर्ग भी आश्रय देने वाले विद्वत प्रेमी राजाओ को विशेष उपाधियो से अलकृत किया करते थे। धनपाल ने वाक्पतिराज मुज से सर्व विद्याब्धि[105] विरुद से तथा पद्मगुप्त ने सिन्धुराज को कवि वान्धव की उपाधि से अलकृत किया था।[106] उदयपुर प्रशस्ति मे भोज की कविराज की उपाधि से विभूषित किया गया हो।[107]

शासक विद्वानो को उनकी विद्वता पर प्रसन्न होकर पुरस्कार भी देते थे। भोज के बारे मे मो यहा तक उल्लेख मिलता है कि वह विद्वानो को एक–एक श्लोक पर एक–एक लाख मुद्राये पुरस्कार स्वरूप देता था।[108] यद्यपि इस लोक विश्वास मे अत्यधिक अतिशयोक्ति प्रतीत होती है परन्तु इसे हम कृतज्ञ कवियो की कोरी कल्पना नही मान सकते। उदयपुर प्रशस्ति भी भोज की दानशीलता का प्रमाण उपस्थित करती है।[109] नरवर्मा ने जिन वल्लभ के व्यापक ज्ञान से प्रभावित एव प्रसन्न होकर उसे सम्मानपूर्वक तीन लाख पारुत्थ (सिक्का) तथा तीन गाव दान मे दिये थे।[110] यह निश्चित प्रतीत होता है कि शास्त्रार्थ आदि विभिन्न अवसरो पर विद्वान पुरस्कृत किये जाते थे।

अनेक परमार शासक स्वय बडे विद्वान एव प्रतिभा सम्पन्न कवि और लेखक थे। वाक्पति राजमुज के लिए उदयपुर प्रशस्ति के कहा गया है कि वक्तुत्वकला, उच्चकवित्व, तर्क प्रतिपादन तथा शास्त्री सिद्वान्तो को जानने वाला श्रीमत वाक्पतिराजदेव के नाम से अभिनन्दित किया जाता था।[111] पद्मगुप्त ने भी भुज के लिए कहा है कि विक्रमादित्य और सात वाहन के बाद सरस्वती ने कवि मित्र (मुज) मे ही आश्रय लिया।[112] मुज की सरस्वती के प्रति अनन्य निष्ठा का यह स्पष्ट प्रमाण है। दक्षिण चालुक्य शासक तैलप के कारागृह

मे कैद होने पर अपने जीवन के अन्तिम क्षणो मे सरस्वती के प्रति दु ख प्रकट करते हुए मुज ने आहे भरते हुए कहा है कि मुज के कवलित कवलित होने पर लक्ष्मी को विष्णु के पास और वीर श्री वीर मदिर मे चली जाएगी परन्तु सरस्वती निराश्रित हो जाएगी।[113] अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था स्थिर रखने के लिए शासक वर्ग सदैव तत्पर रहता था। धारा प्रशस्ति के अनुसार वर्णों की रक्षा के लिए उदयदित्य तथा नरवर्मन की तलवारे सदैव तैयार रहती थी।[114] यहॉ वर्ण का अर्थ स्वर और व्यजन आदि वर्णों से लिया गया है।

साहित्यक गोष्ठियॉ एवं शास्त्रार्थ .—

विभिन्न प्रकार की साहित्यक गोष्ठियो के आयोजन मे परमार शासक बडी रूचि लेते थे। इन गोष्ठियो मे विशेषत पद वाक्य विचार, दार्शनिक विचार, ग्रन्थ विशेष से सबधित विचार तथा प्राचीन कवियो के कठस्थ काव्यो के पाठ आदि किये जाते थे।[115] राजा भोज प्रति वर्ष दो बार एक ऐसे उत्सव का आयोजन करता था जिसमे प्रसिद्ध गायक, नर्तक और विद्वान लोग सम्मिलित होते थे। इन्हे वस्त्र धन आदि देकर सम्मानित किया जाता था।[116] इस उत्सव का आयोजन गोष्ठियो के समान ही होता था। जिसमे लोगो का मनोरजन और विद्वानो को अपनी प्रतिभा एव योग्यता प्रदर्शित कर राजाओ द्वारा सम्मान प्राप्त करने का अवसर मिलता था। अबुल फजल कहता है कि भोज ने एक बार अपने दरबार मे पाच सौ विद्वानो को आमन्त्रित किया जिनमे शास्त्रार्थ हुए थे।[117]

नरवर्मन ने भी उज्जैव के महाकालमदिर मे एक बडे शास्त्रार्थ का आयोजन किया था।[118] एक बार उसके दरबार मे दो दक्षिणी पडितो ने वहॉ उपस्थित पंडितो से एक समस्या—"कठे कुठार· कमठे ढकार" — का समाधान पूछा।[119] कहते हैं कि नरवर्मा के कवि जिन वल्लभ ने इस समस्या का समाधान तुरन्त निम्नलिखित पक्तियो मे दिया—

रे रे नृपा । श्री नरवर्मम्न प्रसादनाय क्रियता नतोड्मै

कण्ठे कुठार कमठे ढकारएचक्रे यरुश्वौडग्रखुराग्रधात ।[120]

यह प्रतीत होता है कि समस्या समाधान बुद्धि विलक्षणता की पहचान का सर्वप्रिय माध्यम माना जाता था और राज्य सभाओ अथवा विद्वत सभाओ मे समस्यापूर्ति अथवा अन्य विशेष प्रकार के प्रश्नोत्तरो का क्रम चलता रहता था। तदनुसार किसी श्लोक के पदो मे अर्थ बोध के लिए बिन्दु, यात्रा एव अक्षरो की कमी करके उत्तर पक्षवालो के द्वारा उसकी पूर्ति करवायी जाती थी।[121]

तत्कालीन रचनायें –

वास्तुशास्त्र का शिल्पी किसी प्रासाद के निर्माण के पूर्व दो प्रकार के मानचित्रो का निर्माण करता है – एक भूविस्तार एव दूसरा निर्मेय प्रासाद का आकार प्रकार। ठीक इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र मे काव्य रचना सम्बन्धी विचार भी वाह्य आकार प्रकार के परिलक्षक होते है। दूसरी ओर इन विचारो की आधारभूत शिलाये तत्कालीन रचनाये है। ये रचनाये मूलग्रन्थ, टीकाग्रन्थ तथा फुटकर रूपो मे मिलती है।

मूलग्रन्थ

व्याकरण :–

भोजकृत प्राकृतव्याकरण[122] मे व्याकरण सम्बन्धी नियमो का उल्लेख किया गया है। भोज की दूसरी रचना सरस्वतीकठाभरण[123] भी व्याकरण का एक ब्रहद ग्रन्थ है। जो आठ अध्यायो मे विभक्त है। प्रत्येक अध्याय चार–चार पादों मे विभक्त है। पाणिनी की अष्टाध्यायी के बाद व्याकरण के क्षेत्र मे सरस्वतीकठा भरण को द्वितीय स्थान देने में सभवत कोई आपत्ति न होगी,

व्याकरण के अतिरिक्त सरस्वतीकठाभरण[124] मे अलकारशास्त्र का भी विवेचन है। इसमे काव्य के गुणदोष, शब्दालकार, अर्थालकार, उभयालकार, रसस्वरूप आदि विषयो पर पाच परिच्छदो मे विशद रूप से विचार किया गया है। प्रथम परिच्छेद मे काव्य प्रयोजन, काव्यलक्षण, काव्यभेद, पद, वाक्य एव वाक्यार्थ के क्रमश सोलह दोष और शब्द के चौबीस गुणो का, द्वितीय मे शब्दालकार के चौबीस भेदो का तृतीय मे अर्थालकार के चौबीस भेदो का चतुर्थ मे शब्दार्थ के चौबीस भेदो का और पचम मे रस तथा उनके भेदो का उल्लेख किया गया है।

अलंकार –

भोजकृत श्रृगार प्रकाश[125] अलकार साहित्य का ग्रन्थ है, इसमे इस बात का पूर्णरूप से विवेचन किया गया है कि श्रृगार, अभियान, और अहकार रस के ही पर्यायवाक शब्द है। यह ग्रन्थ कुल छत्तीस प्रकाशो मे विभक्त है। धनिक ने भी काव्यनिर्णय[126] नामक अलकारशास्त्र के एक ग्रन्थ की रचना की है।

ज्योतिषशास्त्र :–

भोजकृत राजमृगाड्क[127] मे मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, चन्द्रपर्णाधिकार आदि आठ अध्यायो मे ज्योतिष के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। ज्योतिष शास्त्र पर भोज के राजमार्तण्ड[128] नामक एक दूसरा भी ग्रन्थ लिखा। इसमे जन्म से मरणपर्यन्त अनेक शुभ कार्यों के मुहूर्त दिये गये है। इसके रीतिविधि फलम् नामक प्रकरण में सुराचार्य, विशालक्ष और विष्णु के तथा वही पर गण्डयोग मे यवनाधिपति गण्डगिरि, वाराहमिहिर आदि के मत भी दिये गये है।

इसी विषय की भोज की तीसरी पुस्तक आदित्य प्रताप सिद्धान्त[129] है। विद्वजनवल्लभ[130] भी भोज की ही कृति है। इसमे शुभयात्रा बन्धमोक्ष आदि विभिन्न विषयो की चर्चा की गयी है भुजबलनिबन्ध[131] मे भी भोज ने ज्योतिष सम्बन्धी विचारो का उल्लेख किया है। इसमे कुल अठारह अध्याय है– रिष्टाध्याय स्त्रीजात कलक्षणम्, योगाध्याय, व्रतप्रकरण, विवाह, काल शुद्धि निर्णय आदि।

दर्शनशास्त्र :–

आशाधरकृत अध्यात्मरहस्य[132] मे योगकृत तत्वप्रकाश[133] शैव सम्प्रदाय का दार्शनिक ग्रन्थ है। इसमे शैव दर्शनान्तर्गत शैवागम के प्रतीक पति, पशु और पाश की विभिन्न स्थितियो का उल्लेख किया गया है। भोज ने पतजलि के योगसूत्र पर टीका के रूप मे राजमार्तण्ड योग सूत्रवृत्ति[134] लिखी है। उसी ने शैवदर्शन पर शिवत्वरत्नकलिका[135] की रचना की। शैव दर्शन का भोजकृत सिद्धान्तसग्रह[136] एक अनय ग्रन्थ है। देवसेन ने प्राकृत भाषा मे जैन दर्शन पर दर्शनसार[137] की रचना की। अभितगतिकृत पचमग्रह[138] मे जैन दर्शन के सिद्धान्तो का वर्णन है।

राजनीति एव धर्मशास्त्र –

भोज की रचना चाणक्यराजनीतिशास्त्र[139] राजनीतिशास्त्र की पुस्तक है। उसी की दूसरी पुस्तक चारुचार्या[140] है। जिसमे नित्यकर्म शौचविधि, स्नानादि सम्बन्धी विषयो पर विचार किया गया है। युक्तिकल्पतरु[141] नामक भोज की रचना मुख्यत राजनीति का ग्रन्थ है। परन्तु इसमे यत्र तत्र नगर एव नौकाओ आदि की निर्माण विधि का भी उल्लेख किया गया है। इसके अन्य मुख्य विषयो मे अमात्यादि, बल, यान, यात्रा, दूतलक्षण, द्वैध, मत्रिनीति युक्ति

आदि आते है। इसके अतिरिक्त भोज ने पूतमार्तण्ड[142], व्यवहारसमुच्चय[143], और विविधविद्याविचारचतुरा[144] नामक ग्रन्थो का प्रणयन किया है। इनमे से व्यवहारसमुच्चय मे व्यवहार (धर्म और विधि) सम्बन्धी विचारो का चित्रण है। अमितगति ने अमितगतित्रवकचार[145] और धर्मपरीक्षा[146] नामक ग्रन्थो की रचना की है। इनमे क्रमश जैन धर्म का विवेचन और हिन्दू धर्म पर उपहासात्मक ढग से आक्षेप किया गया है। धनपालकृत ऋषभपचशिका[147] मे जैनतीर्थकर ऋषभनाथ की स्तुति की गयी है। आशाधर ने धर्मामृत, नित्यमहोद्योत, राजीमती विप्रलम्भ, और रत्नत्रयविधान की रचना की है जिनमे क्रमश जैनमुनि और श्रावको के आचार जैव तीर्थकरो की पूजाविधि नेमिनाथ की जीवनचर्या और रत्नत्रय की पूजा के महात्म्य का उल्लेख मिलता है।[148] देवेन्द्र ने सिद्ध पचशिका[149] मे आर्यछन्द के पचास प्राकृत श्लोको मे मनुष्य के पारलौकिक जीवन के आनन्द का वर्णन किया है। सत्यपुरीय महावीरउत्सव[150] धनपाल का एक अप्रभ्रश महाकाव्य है। जिसमे जैन महावीर की स्तुति की गयी है। भोज ने सिद्धान्त सारपद्धति मे सूर्य पूजाविधि, प्रायश्चितविधि। आचार्याभिषेकविधि, पादप्रतिष्ठा आदि अनेक विधियो का उल्लेख किया है।[151]

शिल्पशास्त्र :–

मल्लकृत प्रमाणमजरी[152] शिल्पशास्त्र का एक विशेष ग्रन्थ है। इस समय के शिल्पशास्त्र विषय के अन्य ग्रन्थो के मुख्यतया प्रासाद एव देवमदिरो का ही उल्लेख मिलता है। परन्तु प्रमाण मजरी मे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारो वर्णों के भवन निर्माण का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है। भोजकृत समरागणसूत्रधार[153] शिल्पशास्त्र की इस समय की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमे मुख्यत नगर भवन, और प्रासाद, (मदिर) निर्माण के नियम, प्रतिमा निर्माण के ढग (विभिन्न मुद्राओ मे प्रतिमाओ के निर्माण करने की विधि) का विस्तृत रूप से

उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त इसमे चित्रकला की कुछ आवश्यक विधियो एव विभिन्न प्रकार के यत्र (मशीन) निर्माण करने की विधियो का भी उल्लेख है।

काव्य एव नाटक –

देवसेन ने आराधना सागर[154] मे एक सौ पन्द्रह गाथाओ का सग्रह किया है। काव्य एव नाटकवि विषयक के अन्तर्गत प्रभाचन्द्र ने आराधनाकोष,[155] देवेन्द्र ने कर्मग्रन्थ,[156] और भट्टहलायुध ने कविरहस्य[157] नामक ग्रन्थ की रचना की है। भोजशाला से भोज से कूर्मशतक[158] नामक दो प्राकृत काव्य एक शिलालेख पर खुदे हुए उपलब्ध हुए है। प्रत्येक काव्य एक सौ नौ आर्याछन्दो मे लिखित है जिनमे भगवान विष्णु के कच्छपावतार का उल्लेख किया गया है। चम्पूरामायण[159] पाच काण्डो वाली भोज की रचना है। जिसके छठे काण्ड (युद्धकाण्ड) की रचना लक्ष्मण नामक कवि ने की है। जैन धर्म के प्रति भोज की जिज्ञासा तृप्ति के लिए धनपाल ने तिलकमजरी[160] की रचना की। इसमे तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थितयो का भी यत्र तत्र दिग्दर्शन कराया गया है। धनजय ने दशरूपक[161] नामक नाटक लिखा। पद्मगुप्तपरिमल रचित नवसाहसाकचरित[162] कुल अठारह सर्गो मे विभक्त एक काव्य है। जिसमे सिन्धुराज और नागकन्या शशिप्रभा के विवाह की विस्तृत कथा है। मदन की परिजात मजरी नाटिका[163] नामक ग्रन्थ में कुल् चार खण्ड थे। दुर्भाग्यवश उसके दो ही खण्ड उपलब्ध हुए है। अर्जुनवर्मन एव उनकी पत्नी परिजात मजरी अथवा विजयश्री इस नाटिका के मुख्य पात्र है। प्रहलादनदेव ने पराक्रम पार्थपराक्रमब्यायोग[164] तथा भोज ने महाकाली विजय[165] और विद्याविनोद[166] की रचना की है। भोज की दूसरी रचना श्रृगारमजरीकथा[167] नामक सस्कृत गद्य मे लिखी एक आख्यायिका है। इसमे कुल तेरह कथानक है।

प्रत्येक कथानक मे वेश्याओ के विभिन्न प्रकार के जीवनयापन के ढगो का उल्लेख किया गया है। अमितगति ने सुभाषितरत्न सदोह[168] नामक सुभाषितो का एक सग्रह तैयार किया। यह ग्रन्थ कुल बत्तीस अध्यायो मे विभक्त है। प्रत्येक अध्याय मे बीस अथवा पचीस श्लोको के सग्रह है। इसमे यत्र–तत्र जैन श्रावक धर्म के भी उल्लेख किये गये है। आशाधर ने त्रिषष्ठि स्मृति[169] मे 63 जैन महापुरूषो की कथाये वर्णित की है।

वैद्यकशास्त्र –

भोज ने वैद्यकशास्त्र पर आयुर्वेदसर्वस्व[170] तथा राजमार्तण्ड[171] (योगसार सग्रह) नामक ग्रन्थो की रचना की है। राजमार्तण्ड मे कुल 34 अध्याय (अधिकार) है। जिनमे वृद्ध, युवक एव बालको के प्रत्येक शरीरावयव मे होने वाले विभिन्न रोग के कारणो अथवा निदानो के भी उल्लेख है। इस विषय पर भोज का तीसरा ग्रन्थ विश्रान्त विद्याविनोद[172] है।

भूगोल :–

वाक्पतिराजमुज ने मुजप्रतिदेश व्यवस्था[173] मे भारत की भौगोलिक स्थिति का उल्लेख किया है।

कोशग्रन्थ :–

भट्टहलायुधकृत अभिधान रत्नमाला[174] सस्कृत कोष है। इसके अतिरिक्त भोज ने भी नाममालिका[175] और शब्दानुशासन[176] नामक संस्कृत कोशो का सग्रह किया है। धनपाल ने लच्छीनाममाला[177] नामक प्राकृत भाषा का शब्दकोश तैयार किया है।

टीकाग्रन्थ –

आशाधर ने अष्टाड्गहृदयोद्योत[178] नामक वाणभट्टसहिता की टीका लिखी है। इसी लेखक ने क्रिया कलाप[179] नामक अमरकोष की टीका धर्मामृत पर भव्य कुमुदचन्द्रिका एव ज्ञानदीपिका[180] नामक टीका और भरतेश्वाभ्युदय काव्य पर भरतेश्वराभ्युदयकाव्य[181] नामक टीका ग्रन्थो की रचना की है। इनके अतिरक्त आशाधर ने आराधनासागरटीका,[182] इष्टोपदेशटीका,[183] चतुर्विंशतिस्तवटीका,[184] मूलाराधनाटीका,[185] रुद्रटकृत काव्यालकार की टीका,[186] सटीकसॅहग्रनामस्तव,[187] और सटीक जिनयज्ञकल्प नामक टीका ग्रन्थो की भी रचना की है। प्रभाचन्द्र ने आत्मानुशासन टीका,[188] आदिपुराणटिप्पण,[189] उत्तरपुराणटिप्पण,[190] मूलाधार,[191] रत्नकरण्ड,[192] समाधितन्त्र,[193] सर्वाथसिद्ध और समयसार[194] नामक टीकाग्रन्थो की रचना की है। उज्वट ने यजुर्वेद पर निगमभाष्य[195] नामक टीका और वापसनेहसहिता पर मत्रभाष्य[196] नामक टीका लिखी है। इसी ने ऋग्वेदप्रातिशास्त्र[197] टीका की भी रचना की है। धनपाल ने शोभव के ग्रन्थ चतुर्विंशिका पर चतुर्विंशिका[198] नामक ग्रन्थ लिखा है। धनिक ने दशपावलोक[199] नाम से दशरूपक की टीका लिखी। श्रीचन्द्र ने रविसेनाचार्य विरचित पद्मचरितटीका[200] नामक टीका लिखी है। इसी ने जैनो के महापुराण पर महापुराणटिप्पण[201] नामक टीका की रचना की। भट्टहलायुध ने मृतसजीवनी[202] नामक पिगलछन्दसूत्र की टीका लिखा है। रसिकसजीवनी[203] नामक छमरुशतक के टीका की रचना मालवशासक अर्जुनवर्मन ने की थी। सुल्हण ने केदार विरचित वृत्तरत्नाकर[204] की टीका वृत्तरत्नाकर नामक ग्रन्थ के रूप मे की है।

अन्य ग्रन्थ –

उपरोक्त मूलग्रन्थ एव टीकाग्रन्थो के अतिरिक्त कुछ ऐसे ग्रन्थो का भी नामोल्लेख मिलता है जिनके विषय विभाजन के सम्बन्ध मे साधारणतया कुछ कहना कठिन है। शोभन ने चतुर्विशिकास्तुति,[205] अमितगति ने चन्द्रप्रज्ञाप्ति, जम्बद्वीपप्रज्ञाप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति और सार्द्धद्वयद्वीपप्रज्ञाप्ति,[206] वीर ने जम्बूस्वामीचरित,[207] देवसेन ने तत्वसार[208] देवेन्द्र ने धर्मरत्नवृत्ति, सुदर्शनचरित, सिद्धदडीस्तव, श्राद्धजिनकृत्य,[209] प्रभाचन्द्र ने प्रवचनसरोजभास्कर, सगृहमजिका,[210] महासेन ने प्रद्युम्नचरित[211] श्रीचन्द्र ने पुराणसार[212] और भोज ने अश्वशास्त्र पर शालिहोत्र[213] नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस पुस्तक मे अश्वो के शुभाशभ लक्षण तथा गुण–दोष का उल्लेख है। भिन्न–भिन्न ऋतुओ मे अश्वो का किस प्रकार पालन करना चाहिए। इसका भी सकेत किया गया है।

फुटकर रचनायें :–

मूलग्रन्थो एव टीकाग्रन्थो के अतिरिक्त कुछ फुटकर रचनाओ के सदर्भ भी प्राप्त होते है। किन्तु उनके विषय मे यहा यह कहना कठिन है कि ये रचनाये उनके लेखको की किन्ही विशेष पुस्तको से उद्वत है अथवा व केवल उतनी ही मात्र है। जितनी कि उपलब्धियो का सदर्भ प्राप्त है। क्षेमेन्द्र रचित कविकाण्ठाभरण के वाक्पतिराजमुज के नाम से निम्नलिखित श्लोक उद्धत है।

मात्सर्यतीव्रतिभिरावृतदृष्टयो ये,

ते कस्य नाम न खला व्यथयन्ति वेत ।

मन्ये विमुच्य गलकन्दलमिन्दु मौले–

र्येषा सदा वचसि वत्मति कालकूट ।।[214]

क्षेमेन्द्र के औचित्यविचार चर्चा मे भी मुज द्वारा रचित एक श्लोक उपलबध होता है।

अहौ वा हारे वा वलवति रिपौ वा सुहृदि वा,

मगो वा लौष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।

तृणे वा स्त्रैणे वा मम सदृशो यान्ति दिवसा ,

अवचित्यपुण्यारण्यै शिव शिव शिवेति प्रलपत ।।[215]

मुद्रततिलक मे श्री क्षेमेन्द्र ने उत्पलराज के नाम से एक श्लोक का उद्धरण दिया है।[216]

हृतान्जनश्यामरूथस्तैव स्थूला किमित्य श्रृकणा पतन्ति,

मृड्ण्गाइव व्यायतपङ्क्तयौ ये तनीयसी रोमलता श्रृयन्ति।।

सूत्रस्येवात्र तीक्ष्णाग्र श्लोकस्य लघुना मुखम् ।

कण्र विशति निविध्न सरलत्व च नोज्फति।।

गुर्वक्षरेण सरुद्ध ग्रन्थि युक्तभिवाग्रत ।

करोति प्रथम स्थूल किचित्कर्णकदर्थनाम्।।

वल्लभदेव ने भी अपनी सुभाषितावली में वाक्पतिराजमुज (उत्पलराज) द्वारा लिखित दो श्लाको का उल्लेख किया है।[217]

अहो वा हारे वा कुसुमशयने वा हर्षादि वा,

मणौ वा लौष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।

तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसा,

कदा पुण्येरण्ये शिवशिव शिवेति प्रलपत ।। 3413

धनोद्यानच्छायापिदमरु पथाछाव दहना–

तुषाराम्नौ वापिमिव विषविपाकादिव सुधाम्।

प्रवृद्धादुन्मादात्प्रकृतिमिव निस्तीर्य विरहाल्लमेय

त्वदमिक्त निरुपमारसा शकर कदा।। 3414

इनके प्रथम श्लोक को क्षेमेन्द्र ने भी अपने ग्रन्थ औचित्य विचार चर्चा मे उदृत किया है।

इनके अतिरिक्त धनिक के दशरूपक की टीका दशरूपावलोक, अर्जुनवर्मा की रसिक सजीवनी एव सारगधर पद्धति मे मुज के नाम से कुछ रचनाओ के सदर्भ मिलते है।[218] परन्तु इनके विषय मे साधारणतया कुछ कहना कठिन है।

वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला

सास्कृतिक जीवन मे साहित्य के बाद प्रमुख स्थान कला का होता है। जिसके अनेक प्रकार है। जहा तक परमार शासकों का सम्बन्ध है। वे साहित्य के साथ–साथ कला के भी प्रेमी थे। इनके सरक्षण मे वास्तु, मुर्ति एवं चित्रकला की पर्याप्त उन्नति के प्रमाण मिलते है। भोज और उदयादित्य जैसे अनेक सम्राटो ने इस क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किये। यद्यपि उनके अधिकाश

मदिर एव प्रासाद मुसलमान मूर्तिभजको ओर आक्रामको ने नष्ट कर दिया, जो बचे है और जो पूर्णत नष्ट नही किये जा सके उनके अवशेष उनकी (परमारो) कीर्ति के ज्वलन्त उदाहरण है।

वास्तुकला

वास्तुकला के इस क्षेत्र को अध्ययन की दृष्टि से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। धार्मिक वास्तु और लौकिक वास्तु। प्रथम भाग मे देव मदिर, मठ, चैत्य आदि तथा लौकिक मे नगर, दुर्ग, भवन, झील, तालाब आदि आते है। जिनके विवेचन इस प्रकार है–

1 धार्मिक वास्तु –

धार्मिक दृष्टि से परमार शासको ने अन्य समकालीन शासको की तुलना मे अत्यधिक मदिरो का निर्माण कराया, जो कला की दृष्टि से बहुत ही श्रेष्ठ माने गये है। इस समय के स्थापत्य कला की विशिष्टताओ को जानने के लिए कुछ विशिष्ट स्मारको का उल्लेख करना आवश्यक है जो निम्नलिखित है–

उदयपुर का नीलकण्ठेश्वर मंदिर :–

उदयादित्य ने उदयपुर मे नीलकठेश्वर महादेव के मदिर का निर्माण कराया था।[219] इसे उदयेश्वर महादेव भी कहा जाता है। लाल पत्थरो से निर्मित यह मदिर वर्गाकार एक विशाल आगन के मध्य मे स्थित है। इसके शिखर पर एक ओर तो सुन्दर एव बारीक नक्काशीदार देव प्रतिमाए उत्कीर्ण है। दूसरी ओर एक विचित्र मानव का भी चित्र अकित है। इस आकृति को मदिर के निर्माता शिलाकार की मूर्ति माना गया है। वह मानो मदिर के बाहर चारो ओर

एक चहारदीवारी बनी है जिसके बाहरी मुख्य की तरफ सुन्दर नक्काशिया की गयी है। इस प्रकार की भीतरी और लोगो के आराम करने के लिए थोडी–थोडी दूर पर पत्थर की छोटी–छोटी चौकिया (शिलापीठे) बनी है। इस (चहारदीवारी) मे चारो दिशाओ मे चार प्रवेश द्वार है। मदिर मे प्रवेश करने वाला मुख्य द्वार पूर्व दिशा की ओर है। इन सभी द्वारो पर द्वारपालो की प्रतिमाये बनी है।[220]

उपर्युक्त नीलकठेश्वर मदिर आठ अन्य छोटे–छोटे मदिरो से आवृत था। जिनमे से दो तो पूर्णत नष्ट हो चुका है किन्तु छह मदिरो के अवशेष आज भी पाये जाते है। इस मदिर मे बनावट की दृष्टि से गर्भगृह, सभामडप और प्रवेश मडप विशेष उल्लेख है। गर्भगृह मे एक ऊँचे पादपीठ पर एक शिवलिग प्रतिष्ठित है। इस गृह का बहिरग सितारो के समान कई महलो वाला है जिससे गर्भगृह मे अनेक अलकृत कोणे बनी हुई है। जिनमे हिन्दू धर्म के विभिन्न देवी देवताओ की मूर्तिया प्रतिष्ठित है।[221] मदिर के बाहरी हिस्से मे ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, कार्तिकेय और अष्टदिग्पालो की मूर्तिया उत्कीर्ण है। शिव और दुर्गा की प्रतिमाये अधिकाश है जो विभिन्न आकृतियो मे बनी है। मदिर के सामने एक हवनकुण्ड भी बना है।[222] स्थापत्यकला की दृष्टि से यह मदिर सर्वाग श्रेष्ठ माना गया है।

वेलगर[223] महोदय के मत मे यह मदिर कलात्मक दृष्टि से गौरवपूर्ण है। इसमें फूलपत्तियो की नक्काशी उदाहरणीय एव अपने ढग का निराली है। ऐसा नही है कि चित्रकारिता के बाहुल्य से मंदिर का सौन्दर्य समाप्त हो गया है। सजावट की प्रभावोत्पादिका शक्ति अन्य उपकरणो के माध्यम से काफी उन्नत है। फर्ग्युसन[224] ने भी इस मदिर के प्रत्येक अवयव मे आकर्षक और बारीक नक्काशी पायी है जो पूर्णत प्रशशनीय है। इस श्रेणी के

ऐसे बहुत ही कम मदिर है जिनमे इस समय की मदिर कला का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सके।

ऊणा नगर के मदिर –

आधुनिक इन्दौर राज्य के दक्षिणी हिस्से को ऊणा के नाम से सम्बोधित किया जाता था। यह नगर परमारो के समय कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान बन गया था। मालवा के शासको के सरक्षण मे यहा करीब एक दर्जन मदिरो का निर्माण हुआ। यहॉ के मन्दिरो को देखकर यह कहा जा सकता है कि खजुराहो का छोडकर उत्तरी भारत मे ऐसा कोई स्थान नही है जहॉ प्राचीन मदिरो के इतने अधिक अवशेष एक साथ उपलब्ध होते हो। यद्यपि यहॉ के मदिरो की नक्काशी आदि खजुराहो की अपेक्षा बहुत अधिक उत्कृष्ट नही है फिर भी कुछ हद तक ऊणा की तुलना खजुराहो से की जा सकती है। वहॉ हिन्दू और जैन दोनो सम्प्रदायो के मदिरो उपलब्ध है।[225] यहॉ का चौबारादेरा मदिर वास्तुकला की दृष्टि से सराहनीय है। अन्य मदिरो की तरह इसके भी मध्य मे खम्भो पर अवलम्बित तक एक विशाल सभा मडप है। ग्वालियर के सास बहू मदिर की तरह ही इसमे मडप के तीनो तरफ तीन द्वारा मडप (पोचर्स) है। इसके शिखर का कुछ अश ध्वस्त हो गया है। मण्डप के चार गोल सुन्दर नक्काशीदार स्तम्भो के निचले हिस्सो मे स्त्रियो की आकृतियॉ उत्कीर्ण है तथा ऊपर लिटल बना है। इसी लिटल के ऊपर गुम्बदाकार शिखर है। यह शिखर आबू पर्वत पर स्थित वास्तुपाल तेजपाल द्वारा निर्मित दिलवाडा के जैन मदिर की तरह ही उत्कृष्ट माना जाता है।[226] मण्डप के समीप ही एक छोटे सस्ते (गौलरी) से जुटा हुआ गर्भगृह है। गर्भगृह के रास्ते की उत्तरी दीवार पर उदयदित्य की सर्वबन्ध रचनाये खुदी है।[227] मण्डप के सम्मुख प्रवेश द्वार के लिटल पर गणेश, ब्रह्मा, शिव, विष्णु और सरस्वती की मुर्तिया अंकित की गयी

है। गर्भगृह मे शिव और सप्त मातृकाओ की प्रतिमाये प्रतिष्ठित है। शिव प्रतिमा की प्रधानता होने के कारण ही यह मदिर शिव मदिर माना गया है।[228]

चौबारादेरा का उत्तर दिशा मे महाकालेश्वर शिव का एक विशाल मदिर है जिसके गुम्बर का ध्वसावशेष आज भी उपलब्ध है। इसमे दक्षिण दिशा की ओर एक द्वारमडप है। मेहराबे भी बनी है जो क्रमश गर्भ गृह के भीतरी द्वार और सभा मण्डल के बीच वाले स्थल को अलकृत करती है। मण्डल मे ब्रह्मा, शिव तथा एक शिरविहीन नन्दी की प्रतिमा है। शिखर मे यत्रतत्र दरारे हो गयी है जिससे गर्भगृह की दीवारे गिरने की अवस्था मे कुछ झुकी (मसकती) हुई सी प्रतीत होती है। गर्भ गृह के तीनो ओर चमुण्डा, नटेश और त्रिपुरारि की प्रतिमाये प्रतिष्ठित है।[229]

ऊणा मे भी नीलकण्ठेश्वर महादेव का एक मदिर था जिसके मडल शिखर और दालाने (द्वारमडप) अब नष्ट हो गयी है। पुजारियो ने इन दलानो के स्थानो पर अपनी छोटी–छोटी झोपडिया बना ली है। मडप से गर्भगृह मे प्रवेश करने वाले द्वारा का लिटल भी टूटा हुआ है लेकिन समीप वाली दलान दो छोटे–छोटे पत्थरो के खम्भो पर अवलम्बित है। गर्भगृह के सामने वाले दोनो द्वारो के लिटलो पर सुन्दर नक्काशिया की गयी है। जिनमे एक पर सप्तमातृकाओ के साथ नर्तक की मुद्रा मे शिव की प्रतिमा उत्कीर्ण है। गर्भगृह मे एक शिवलिग प्रतिष्ठित है।[230]

नीलकष्ठेश्वर के समीप ही भूमि की सतह के नीचे गुप्तेश्वर महादेव का एक छोटा मदिर है। इसके गर्भगृह की सतह नीकश्ठेश्वर महादेव के गर्भगृह की सतह से तीस फीट नीचे है। इसका शिखर समाप्त हो चुका है। गर्भगृह के सामने वाली फर्श पर पत्थर की ईटे बिछायी गयी है। जिसके आकार एव विस्तार से ऐसा प्रतीत होता है कि यहा एक छोटा सा मण्डप था।[231]

ऊणा मे गोलेश्वर नामक एक अन्य प्रसिद्ध जैन मदिर इसके सभामण्डल के सम्मुख अन्य मदिरो की तरह कोई द्वार मण्डप नही है बल्कि वर्गाकार एक कमरा है गर्भगृह की फर्श मण्डल से करीब दस फीट नीची है जिसमे सभा मण्डल से जाने के लिए कुछ सीढिया बनी है। खजुराहो के पार्श्वनाथ मदिर की तरह ही इसका गुम्बद कई छोटे–छोटे शिखरो से आवृत है। गर्भगृह से बने हुए एक पादपीठ पर एक ही पक्ति मे तीन दिगम्बर जैन मूर्तिया खडी मुद्रा मे प्रतिष्ठित है।[232]

नेगवर के मदिर समूह–

सिद्धनाथ मदिर हर्दा स्टेशन से बारह मील दूर नर्मदा नदी के किनारे यह नगर स्थित है।[233] कला की दृष्टि से यहा का सिद्धेश्वरमदिर उत्तरी भारत का एक उत्कृष्ट नमूना माना जाता है। इसमे सिद्धेश्वर नामक शिव की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। नदी के किनारे स्थित होने के कारण बाढ के प्रभाव को रोकने के लिए इसकी नीव खूब दृढ बनायी गयी है। इस मदिर मे भी कलात्मक दृष्टि से सुन्दर, शिखर युक्त, गर्भगृह तथा भव्य नक्काशीदार खम्भो पर अवलम्बित गुम्बदवाला सभामण्डल है। गर्भगृह मे शैवागम के प्रतीको, भैरव, ताण्डवशिव, ब्रह्मा, ब्रह्माणी, महिषा सुरमर्दिनी आदि की मूर्तिया उत्कीर्ण है। मण्डल की भीतरी छत मे कमलपुष्पो के बीच विभिन्न भगिमाओ मे स्त्रियो की प्रतिमाये है। सभा मण्डल तथा दालान के बाहरी हिस्से मे भी सुन्दर–सुन्दर प्रतिमाए उत्कीर्ण है।[234] उदयपुर के नीलकण्ठेश्वर मदिर के शिखर के तरह से इसके शिखर का भी निर्माण किया गया है। इन दोनो शिखरो मे चित्रकारिता बडी ही सूक्ष्म और बडे आकार मे की गयी है। जो परमारकालीन वास्तुकला की विशेषता है।

विष्णु का अपूर्ण मंदिर–

सिद्धनाथ मदिर की उत्तरी दिशा मे विष्णु का एक अपूर्ण मदिर है। यह केवल एक टीला सा दिखाई पडता है। इसके शिखर मण्डप आदि का कोई स्पष्ट रूप नही मिलता। इसके प्रवेशद्वार मे कई मूर्तिया उत्कीर्ण है जिनमे अधिकाशत विष्णु की ही प्रतीत होती है।[235] जिनसे यह प्रमाणित होता है कि यह विष्णु का ही मदिर रहा होगा।

मोदी गॉव का शिव मदिर –

मोदी नामक परगना मे मुख्य स्थान मोदी नामक गॉव का था। जिसका वास्तु कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान था। यहॉ पर शिव मदिर का एक जीर्ण अवशेष मिला है जिसके अन्य भाग तो नष्ट हो गये है लेकिन गर्भगृह अभी भी सुरक्षित है। प्रवेश द्वार के लिटल पर लकुलिश शिव की प्रतिमा उत्कीर्ण है।[236] ऐसा विश्वास था कि कला की दृष्टि से यह मदिर मालवा मे एक दर्शनीय स्थल रहा होगा।

भोजपुर का शिव मंदिर –

आधुनिक भोपाल राज्य मे भोजपुर नामक गाव का नामोल्लेख मिलता है। जिसे राजा भोज ने अपने नाम पर बसाया था। यहा पर शिव मदिर कला की दृष्टि से सराहनीय था। इस वर्गाकार मदिर का गुम्बद शुण्डाकृतिवाले चार नक्काशीदार प्रशस्त खम्भो पर अवलम्बित है। मदिर के अन्य भाग अस्पष्ट है।[237]

भिलसा का बीज मदिर –

भिलसा बीज मदिर नामक एक मस्जिद है जिसके एक स्तम्भ पर नरवर्मा का एक लेख उत्कीर्ण पाया गया है। उससे यह ज्ञात होता है कि वह चरयिका देवी का उपासक था। इस लेख का देखने से यही आभास होता है कि यह मस्जिद चरयिका देवी का ही मदिर था। इसकी दीवार पर उदयदित्य का भी का लेख पाया गया है।[238] जिससे यह कहा जा सकता है कि यह मस्जिद अपने वास्तविक रूप मे मूलत एक हिन्दू मदिर था। जिसे मुगलो की ध्वसलीला ने मस्जिद के रूप मे परिणत कर दिया।

अर्बुदमण्डल के मंदिर:–

आबू शाखा के परमार शासक भी अनेक देव मदिरो के निर्माता थे। इतिहास साक्षी है कि इनकी राजधानी चन्द्रावती मे 108 मदिर थे। किन्तु अब अधिकाश कालकवलित हो चुके है।

कयाद्रा का अपेश्वर मंदिर :–

सिरोही राज्य मे वासा नामक स्थान से सोलह मील दूर कयाद्रा गाव स्थित है जिसके पश्चिम मे अपेश्वर महादेव का एक मदिर है। इसमे भी गर्भगृह, सभामण्डप और दालाने बनी है। सभामण्डल के मध्य अष्टभुजाकार स्वरूप मे आठ खम्भो पर एक गुम्बद बना है। मदिर के उपगृह के लिटल पर गणेश की प्रतिमा उत्कीर्ण है। गर्भगृह मे एक शिवलिग तथा लिग के पीछे पडने वाली दीवार पर त्रिमूर्ति की एक प्रतिमा बनी है। जिसके तीन मुख और छह भुजाये है। मदिर के सामने तोरणद्वार भी है। गर्भगृह के चारो तरफ कई अन्य छोटे–छोटे मदिर है। उनमे से एक मदिर की ताखाओ मे गणेश, कार्तिकेय, और लकुलिश शिव की दूसरे मे विष्णु, सिंहवाहिनी अम्बिका एव शिवपार्वती और

तीसरे मदिर मे सूर्य की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इन मदिर के शिखर ईटो से बने है और ऊपर सगमरमर के मसाले का पलस्तर किया गया है।[239]

मुगथला का मधुसूदन मंदिर :—

आबू सडक से दक्षिण पश्चिम की ओर करीब पाच मील की दूरी पर यह मुगथला नामक गाव स्थित है। इसके उत्तर पश्चिम दिशा मे एक मील की दूरी पर यह मदिर स्थित है। इसके चारो तरफ एक चहारदीवारी और सामने की ओर एक तोरण बना है। विमलशाह के मदिर की तरह ही इसके अन्यान्य भागो की बनावट है। इसमे एक छोटा मदिर, गुधमडप (एक विशाल मडप) और दालान है। इसका शिखर गुर्जर ढग (लाट शैली) का है।[240]

दिलवाडा का जैन मंदिर —

नक्काशी आदि की दृष्टि से जैनियो की यह उत्कृष्टि कृति अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके दालान की छतो मे कमलपुष्पो पर आसीन देवी देवताओ की मूर्तिया उत्कीर्ण की गयी है।[241] यहॉ के विमलशाही और तेजपाल के मदिर महत्वपूर्ण स्थान रखते है। यद्यपि ये दोनो मदिर बाहर से तो साधारण ही दिखाई पडते है परन्तु भीतर इनके खम्भो, दीवारो एव गुम्बदो पर विलक्षण नक्काशिया की गयी है।[242] फर्ग्यूसन के अनुसार इन मदिरो की तुलना मे अन्यत्र कही भी कोई मदिर नही उपलब्ध है।[243]

मदिर निर्माण के आधार भूत सिद्धान्त :—

मदिरो का निर्माण दिशाओ के क्रम से किया जाता था। इस विषय मे भोज ने दिशाओ के क्रम से देवताओ के स्थापन का निम्नलिखित उल्लेख किया है।[244]

दिशाये	देवमदिर
पूर्व	विष्णु, सूर्य, इन्द्र और धर्मराज
आग्नेय	सावित्री और हनुमान
दक्षिण	गणेश, मातृकाये, भूत एव यमराज
नैर्ऋत्य	भद्रकाली
पश्चिम	वरुण और विश्वकर्मा
वायव्य	कात्यायनी
उत्तर	स्कन्द, सोम और कुबेर
ईशान	लक्ष्मी और अग्नि

ये देवमदिर नगर के वाह्य और आभ्यान्तर दोनो भागो मे निर्मित किये जाते है।[245]

वैदिक कालीन यशवेदियो ने ही कालान्तर मे हिन्दू मदिर का रूप धारण किया।[246]

पाद टिप्पणी

1 विशुद्धानद पाठक – उ0भ0 का राज0 इतिहास, पृष्ठ 597

2 Carpus Inscriptionum Indicarum Vol VII P 47-48

3 I A VOL XI, P 220, VOL XIV P 160 VOL VI P 51-53
VOL XIX P 349,VOL XVI, P 254, EI VOL XIX, P-236
VOL XVII,P 322,VOL XXI,P-44,VOL XXXIII, P-135
VOL II, P 180, VOL XXII,P 59,IHQ VOL VIII, P-311,
BOM.Gaz VOL I, Part I, P 472, JASB VOL VII, P 736

4 परम भट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर श्रीकृष्णराजदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वैरिसह पादनुध्यात ---- श्री सीयमदेव पादानुध्यात ---- श्रीमद्वागपति राजदेव -----
IA V VOL XIV, P 160, VOL VI, p 51, 53
VOL XIX, P 352, VOL XVI, P 254, EI VOL XVIII, P 322,
VOL II, P.48 VOL VOL XXXIII, P 135, IHR VOL VIII
P 311, JASB.VOL.VII, P 736

5 IA VOL. XIV, P 160

6 I bid, VOL VI, P 51, EI VOL.XVII, P 322

7 IA VOL XIX, P.349

8 I bid, VOL XVI, P 160, EI VOL.XIX, P 242

9 भूमि य. प्रतिग्रहणाति यस्य भूमि प्रयच्छति उभौ तो पुष्प कर्मांणौ नियतौ स्वर्ग गामिनौ।
हर्त्ता हारियता भूमि मद बुद्धिस् तमोवृत स वद्धौवारुणै पाशोस्तिर्यन्योनै प्रजायते।
स्वदत्तां परदत्ता वायौ हरेतवसधरा षष्ढि वर्षसहग्राणी विष्ट्यां जायते कृति ।
EI.VOL XVI, P.255, EI. VOL IX, P 123

10 I A VOL XIV, P 160, VOL XIX, P 348, 352, VOL VI, P 48
EI VOL XVII, P 320, VOL XI, P 181, VOL III, P 48,
IHQ VOL VIII, P 311

11 इति कमलदलाम्बु बिन्दुलोलवियमनुचिन्त्य मनुष्य जीवित च, सकल–भिदमुदाकृतम च बुद्धवा नहि पुरुषै परिकीर्तयौ विलोप्या इति।
IA VOL XIV, P 160, VOL XIX, P 349, VOL VI, P 48, 53, EI VOL XVIII, P 320, VOL XI, P 311, VOL 111, P 48

12 भूमि य प्रतिगृहणाति यस्य भूमि प्रयच्छित उमौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्ग गामिनौ।
हर्ता हारयिता भूमि मद बुद्धिस तमोवृत स वृद्धौ वारुणै पाशेस्तिर्यग्योने प्रजायते।
स्वदत्ता परदत्ता वायो हरेत वसुधरा, षष्ठिवर्ष सहग्राणी विष्ठाया जायते कृभि।
IA VOL XVI, P 255, VOL XIX, P 253, EI VOL IX,
P 123, VOL XIX, P 69, JASB.VOL VII, P 738
देवी भागवत, नवमस्कन्ध, अध्याय 9–10 से उदधृत है।

13 EI VOL.XVII, P 320, VOL VIII, P 48, IA VOL XIV,
P 160, VOL VI, P 48, 53 IHq.VOL VIII, P.305

14 ऋवैदिक आर्य, पृ0 147

15 वही, पृ0 147

16 Educational System of the Ancient Hindu's, P 18

17 भोज प्रबन्ध, श्लो0 34 (पृ0 32)

18 ति0 म0, पृ0 64–65 ।

19 वीरमित्रोदय, सस्कार प्रकाश, पृ० 322–25,
मानसोल्लास–3/12/1284–86, ABORI, VOL XXXVI, P 362

20 B P Majumdar, P 149 Smriti Chandrika, P 66-67

21 दृष्टव्य – इसी परिच्छेद मे "शिक्षण सस्थाये"

22 ति० म०, पृ० 9 ।

23 ति० म०, पृ० 65 ।

24 श्रृ० म०, भूमिका, पृ० 12 ।

25 विशेष विवरण के लिए दृष्टव्य, इसी परिच्छेद मे तत्कालीन रचनाये।

26 मानसोल्लास, 3/12/1286–1294,

27 दृष्टव्य परिच्छेद (वर्ण एव जाति व्यवस्था)

28 Sachau VOL I, P 125

29 I bid, P 125

30 द्रष्टव्य, प्रथम परिच्छेद, (युवराजो की शिक्षा प्रशिक्षा)

31 EI VOL. VI, P 51

32 द्रव्टव्य इसी परिच्छेद मे भोज की रचनाये ।

33 नीतिहीन नरेन्द्राणा नश्यन्ताशु सुसम्प्रद ।

34 निर्दोष गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलकृतम् ।
रसान्वित कवि कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ।।
स० क०, परि० 1, पृ० 2

35 असाधु चाप्रयुक्त च कष्टं चानपर्थक च यत् ।
अन्यार्थक मपुष्टार्थससमर्थ तथैव च।
अप्रतीतस्थ क्लिष्ट गूढ नेयार्थमेव च।
सदिग्ध च विरुद्ध च प्रौक्तऽपयोजकम् ।
वैश्य ग्राम्यमिति स्पष्टा दोषा स्यु ।।
स० क० परि० 1, पृ० 3

36 एव पदाना वाक्याना वाक्यार्थानान्च य कवि ।
दोषान् हेयतया वेनिस काव्य कतुमहिति।

37 त्रिविधाश्च गुणा काव्ये भवन्ति कवि सम्मत ।
वाह्याश्चाभ्यन्तराश्चैव ये व यैशेषिका इति।

स0 क0 परि0 1, पृ0 49

38 श्लेष प्रसाद समता माधुयर्य सुकुमारता ।
अर्थव्यक्तिस्तथा कान्तिरूदारत्वमुदात्तता।।
ओजस्तधान्यदौजित्य प्रेयानथ सुशब्दता।
तद्वत समाधि सौदयपन्न ग्राम्मीर्ययमथ विस्तर ।।
सक्षेप समितत्वन्द भाविकत्व गतिस्तथा।
रीतिरूक्तिस्तथा प्रौढिरथैषा लक्ष्यलक्ष्णौ ।।

स0 क0, परि0 1, पृ0 50 ।

39 जतिर्गती रीतिवृत्तिच्छायामुदौक्ति युक्तय ।
मणितिर्गुम्फना शय्या पठितिय।मकानि च।।
श्लेषानुप्रास चित्राणि काकोवाक्य प्रहेलिका।
मूढ प्रश्नोत्तराध्ययेे भव्य प्रेक्ष्याभिनीतय ।।
चतुर्विंशतिरित्युक्ता शब्दालकार जातय ।

स0 क0, परि0 2, पृ0 140–41

40 विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य राघवन शृगार प्रकाश

41 चार व्यजनो वाला श्लोक –
ज जौ जो जा जि जि ज्जा जी त ततोऽतितताितुत् ।
भा भौ भी भा भि भू भा भू रा रा रि र रि री र र ।।360।।

तीन व्यजनो वाला श्लोक–
देवाना नन्दनो देवो नादनौ वेदनिन्दिनाम् ।
दिय हुदाव नादेन दाने दानव नन्दिन ।।361।।
दो व्यजनो वाला श्लोक–
भूरिभिर्भारिमिर्मी रौ र्भूभारैरभिरैभिरे ।
मेरीरेभिभिर भ्राभैरभी रुभिरिभैरिमा ।।362।।
एक व्यजनो वाला श्लोक –
न नोननुन्नो नुन्नोनो ना नाऽनानानना ननु ।
नुन्नो नुन्नो ननुन्नेनो नाऽनेनानुन्न नुन्ननुन् ।।363।।
– स0 क0, परि0 2, पृ 275–76,

42 ह्रस्व स्वर वाला श्लोक –
ऊरुगु घुगुरू यूत्मु चुकृशुस्तुष्टुवु पुरु ।
लुलुमु पुपुषुर्मुत्सु मुमुहुर्तु मुहुर्मुहु ।।377।।
दीघ स्वर वाला श्लोक–
वै धै रै नै रै शै रै न्दै रै जै रै लै जैनै सै द्वै ।
मै त्रै नै कै धैय।यै वै रै दै स्वै स्वैरै दैवैस्तैस्तै ।।378।।
स0 क0 परि0 2, पृ0 280–81 ।

43 द्रष्टव्य, द्वितीय परिशिष्ट ।

44 स0 क0, परि0 2, पृ0 426–27 ।

45 जातिर्विभावना हेतुरहेतु सूक्ष्ममुत्तरम् ।
विरोध सम्भवौऽन्योन्य परिवृत्तिनिर्दर्शनम ।।2।।
भेद समाहित भ्रान्तिविर्तर्कों मीलित स्मृति ।

भाव प्रत्यक्षपूर्णाणि प्रमाणानि च जैसिन। ।।3।।

स0 क0, परि0 3, पृ0 437 ।

46 स0 क0, परि0 4, पृ0 397, श्लो0 2–4 ।

47 राघवन, शृगाार प्रकाश, पृ0 389 ।

48 वाक्य रसात्मक काव्य,

साहित्य दर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ0 19 ।

49 स0 क0, परि0 5, पृ0 538 ।

50 वही, पृ0 539–40, श्लो0 9–12 ।

51 स0 क0, पृ0 413–14 ।

52 The Swords of King Udayaditya and Naravarman were equally ready for the protection of the Vernas and the letters of the alphabet.

JBBRAS VOl. XXI, P 351

53 ति0 म0, पृ0 179 ।

54 वही, पृ0 57

55 उदाहरण के लिए द्रष्टव्य–युक्तिकल्पतरु, तिलकमजरी, समरागण सूत्रधार, आदि।

56 Pro. Rep ASI Western Circle, 1913, P 55

57 Bhandarkar's Report on the Search for Sanskrit Manuscripts. 1882, P 220

58 EI VOL. VIII, P 101

59 JBBRAS. VOL XXI, P 341-45

60. E I VOL. VIII P. 101

61 रेउ, राजा भोज, पृ0 89 ।

62 JASB, VOL. IX, P.5 8, ARASI, 1918-19, Part 1 P-17

63 IA VOL XI, P 221-22

64 द्वयाश्रव्य महाकाव्य सोलहवा, 75

65 EI VOL XI P 55

66 ति0 भ0, पृ0 55,

67 वही, पृ0 57,

68 EI VOL VIII, P 243-60,

69 रेउ, राजाभोज, पृ0 88–89,

70 वही पृ0 88–89,

71 EI VOL VIII, P 101-22,

72 ति0 भ0, पृ0 215, P C Tawney, P 63

73 Great Women of India, P 295

74 सदेशरासक, पृ0 80, 82, 89, 90

75 PC Tawney, P 63 63-64

76 Great Women of India, P 295

77 सदेह रासक, पृ0 80–82

78 वही, पृ0 89–90

79 श्रृ म0, पृ0 12–15

80 श्रृ म0, पृ0 12–15

81 वही, पृ0 62

82 PC Tawney, P 41-41

83 PC Tawney, P 61

84 भोज प्रबन्ध, (बल्लालकृत्त), श्लो0 169–170, (पृ0 163)

85 वही, श्लो0, 168 (पृ0 161)

86 PC Tawney, P 66-67

87 PC Tawney, P 40

88 D C Gangulı, History of the Parmara Dynasty, P 63,
भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 104–6 । नाथूराम प्रेमी, पृ0 282

89 नाथूराम प्रेमी, पृ0 275

90 प्रमाण मजरी, पृ0 24

91 D C Gangulı, History of the Parmara Dynasty, P 285, 289

92 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 104, नवसाहसाक चरित प्रथम सर्ग ।

93 D C Gangulı, History of the Parmara Dynasty, P 282, 291,

94 नाथूराम प्रेमी, पृ0 275

95 अपभ्रश जैनिग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह, पृ0 286

96 अपभ्रश जैनिग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह, पृ0 7

97 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 145

98 वही, पृ0 155

99 History of Parmara Dynasty

100 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 159

101. ति0, म0, पृ0 6, श्लो0 53

102 EI VOL I, P 340

103 ABORI, VOL.XI, P 63

104 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 159, अमरू शतक, पृ0 2

105 य सर्वविद्याब्धिना श्री मुजेन ———————
ति0 म0 पृ0 6

106 नवसाहसाकचिरत, प्रथम 8

107. EI. VOL. I, P 235, Verse 18

108. बल्लालकृत, भोज प्रबन्ध, पृ0 58, 61, 221, 239

109 साधित दिहित वत्त, ज्ञात तद्यन्न केनचित् ।

किमन्यत्कविराजस्य श्री भोजस्य प्रशस्यते।।18।।

- E I VOL I P 235

110 अपभ्रश काव्यत्रयी, पृ0 33

111 वक्तृत्यौच्च कवित्व तयर्ककलन प्रज्ञातशास्त्रागम ।

श्रीमदवाक्पतिराजदेव इति य सदभि सदा कीत्यते।।13।।

- EI VOL I P 235

112 अतीत विक्रमादित्ये गतेऽस्त सातवाहने।

कविमित्रे विशत्राम यस्मिन् देवी सरस्वती ।।93।।

नवसाहसाक चरित् ग्यारहवा सर्ग

113 प्रति0 मू0 पाठ, पृ0 25,

P.C Tawney, P 35,

114 JBBRAS VOL XXI, P 351

115 ति0 म0, पृ0 85।

116 History of the Rise of Muhamadan Power in India, Introductions, P 76

117 Ain-I-Akbari, VOL 11, P 216

118 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 144,

119 सिधी जैनग्रन्थमाला, ग्रन्थाक, 42, पृ0 13,

120 सिधी जैनग्रन्थमाला, ग्रन्थाक, पृ0 13

121 ति0 म0, पृ0 88।

122 Catalogus Catalogorum, VOL I, P 418

123 यह ग्रन्थ तीन खडो मे प्रकाशित है। त्रिवेन्द्र सस्कृत सीरीज, ग्रन्थाक 117, 127, 140,

124 काव्य माला सीरीज, ग्रन्थाक, 94,

125 यह ग्रन्थ अपने सभी प्रकाशो के साथ अभी पूर्णत प्रकाशित नही हुआ है। इसके कुछ ही प्रकाश यत्र तत्र प्रकाशित हुए है। प्रथम आठ प्रकाशो का सपादन जी0आर0जोयसर महोदय ने 1955 मे इन्टरनेशनल एकेडमी ऑफ सस्कृत रिसर्च मैसूर से किया है। बाइसवे तेइसवे और चौबीसवे प्रकाश यतिराम स्वामी ऑफ मेलकोट (माउन्टरोड मद्रास 1926) द्वारा प्रकाशित हुए है। ग्यारहवा प्रकाश डॉक्टर सस्कृत ने "थीपरीज ऑफ रस एण्ड ध्वनि" नामक ग्रन्थ मे प्रकाशित हुआ है। डॉ0 पी0 राघवन ने अपने शोध प्रबन्ध "भोजम् श्रृगार प्रकाश" पृ0 513–42 मे कुछ प्रकाशो का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है।

126 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 105,

127 सपादक के0 माधवकृष्णशर्मा, प्रकाशित – अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन 1940।

128 सपादक – खेमराज श्री कृष्णराज, प्रकाशित श्री वेकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1953।

129 Catalogus Catalogorum, VOL 1, P. 418

130 महामहोपाध्याय कुपुस्वामी द्वारा सम्पादित, गवर्नमेन्ट ओरिएन्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास की सस्कृत पुस्तको की सूची, भाग, 3, खण्ड 1 बी, पृ0 370, 6–7।

131 कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित गवर्नमेन्ट ओरिएटल लाइब्रेरी मद्रास की सस्कृत पुस्तको की सूची भाग 4, खण्ड 1 ए, पृ0 45, 62–63।

132 Bhandarkar's Report on the Search For Sanskrit Manuscripts 1883-84, P. 104-5.0

133 त्रिवेन्द्रम सस्कृत सीरीज, ग्रन्थाक 68,

134 हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक 83,

135 रेउ, राजाभोज, पृ0 237,

136 Catalogus Catalogorum, VOL I, P 418,

137 नाथूराम प्रेमी, पृ0 175, टिप्पणी, 1,

138 वही, पृ0 279,

139 कलकत्ता ओरिएन्टल सीरीज, ग्रन्थाक 2,

140 रेउ, राजा भोज पृ0 236।

141 सपादक ईश्वरचन्द्र शास्त्री, कलकत्ता, 1917,

142 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 119,

143 रेउ, राजा भोज, पृ0 पृ0 236।

144 वही पृष्ठ – 261

145 नाथूराम प्रेमी, पृ0 280।

146 भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, 9 विश्वकोशलेन, बाघ बाजार, कलकत्ता 1922, से यह ग्रथ प्रकाशित हुआ है।

147 नाथूराम प्रेमी, पृ0 410,
Peterson's Fourth Report, Introduction, P 62

148 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157,

149 नाथूरामप्रेमी, पृ0 410, Peterson's Fourth Report, Interoduction, P 57, IA. VOL XI, P 255.

150 नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ 410

151 रेउ, राजा भोज, पृष्ठ 263

152 सम्पादक, डॉ0 कुमारी प्रियबालाशाह, बडौदा 1958,

153 यह ग्रन्थ गायकवाड ओरियन्टल सीरीज बडौदा से दो भागो मे 1924, 1925, मे प्रकाशित हुआ।

154 नाथूराम प्रेमी, पृ0 175,
Peterson's Fourth Report, Instroduction, P 56,

155 नाथूराम प्रेमी, पृ0 290,

156 Peterson's Fourth Report, Instroduction, P 57,

157 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 106,

158 EI VOL VIII, P 241

159 सपादक – वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, पणशीकर, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1997।

160 काव्यमाला सीरीज, ग्रन्थाक 85।

161 निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1957।

162 चौखम्बा विद्याभवन सस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक 66, वाराणसी, 1963।

163 EI VOL VIII P 96

164 गायकवाड ओरियटल सीरीज ग्रन्थाक 4,

165 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 120, रेउ, राजाभोज, पृ0 237।

166 वही पृष्ठ 120, 237

167 सिधी, जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक 30।

168 काव्यमाला सीरीज, ग्रन्थाक 82।

169 भारत के प्राचीन राजवश पृ0 157।

170 भारत के प्राचीन राजवश पृ0 120।

171. आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक 4 ।

172 भारत के प्राचीन राजवश, पृष्ठ 120, रेउ राजाभोज पृ0 237

173. Asiatic Researches, VOL IX P. 176

174 सरस्वती भवन प्रकाशन माला ग्रथाक 12 (प्रकाशन व्यूरो सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

175 डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूरा, 1953,

176 Catalogus Calalogorum, VOL I P 418

177 श्री शादीलाल जैन, आर0सी0 एच0 बर्ड एण्ड को 239 अब्दुल रहमान स्ट्रीट, बम्बई–3, 1960।

178 नाथूराम प्रेमी, पृ0 290, भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157, Bhandarkar's Report on the Search For Sanskrit' Manuscripts, 1983-84, P 104

179 नाथूराम प्रेमी, पृ0 290, भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157,

180. भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157,

181 वही, पृ0 157,

182 नाथूराम प्रेमी, पृ0 346,

183 वही, पृ0 346,, भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157,

184 वही, पृ0 346, वही, पृ0 157,

185 भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157,

186 नाथूराम प्रेमी, पृ0 346,

187 नाथूराम प्रेमी, पृ0 346, भारत के प्राचीन राजवश, पृ0 157,

188 नाथूराम प्रेमी, पृ0 289–90 ।

189 वही, पृ0 289–90।

190 वही, पृ0 289–90 ।

191 वही, पृ0 288।

192 वही, पृ0 290।

193. वही, पृ0 290।

194 वही, पृ0 290।

195 Peterson's Fourth Report, Introductıon, P 17,

196 Bhandarkar's Report on the Search For Sanskrıt Manuscrıpts. 1882-83, P 3

197 Peterson's Fourth Report, Introductıon, P 17,

198 Hıstory of theParmara Dynasty, P 283

199 Ibıd P 285

200 नाथूराम प्रेमी, पृ0 286,

201 वही, पृ0 287।

202 काव्यमाला सीरीज, ग्रन्थाक 91।

203 हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक 268 (चौरखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी 1966)।

204 हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक 55,

205 सपादक एव प्रकाशित – जैकोबी, जेड0 डी0 एम0 जी0 32 (1878) पृ0 509–34।

206 नाथूराम प्रेमी, पृ0 281,

207 अपभ्रश जैनिग्रन्थ सग्रह छठवा प्रशस्ति

208 नाथूराम प्रेमी, पृ0 175, Peterson's Fourth Report, Introductıon, P 56,

209 Peterson's Fourth Report, Introductıon, P 57,

210 नाथूराम प्रेमी, पृ0 290।

211 वही, पृ0 275।

212 नाथूराम प्रेमी, पृ0 286।

213 Deccan College Postgraduate, and Research Institute Poona, 1953

214 कविकण्ठाभरण, द्वितीय सधि।

215 औचित्य विचारचर्च, पृ0 131 ।

216 मुद्रातितिलक द्वितीय विन्यास, पृ0 37।

217 सुभाषितावली, श्लोक–3414,

218 Hıstory of the Parmara Dynasty, P 276

219 JASB VOL IX P 548

220 The Caltural Herıtage of Madhya Bharat, P 102

221 The struggle for Empıre, P 603

222 Hıstory of the parmara Dynasty, P 261

223 ARASI, VOL VII, P 86

224 Hıstory of the Indıan and Eastern Archıtecture, Vol II P 147

225 Pro Rep ASI, Western Cırlce 1919, P 61-62

226 Pro Rep ASI, Western Cırcle 1919, P 62 Hıstory of Indıan and Eastern Archıtecture, Vol, II, P 42

227 सर्प के आकार मे रचनाये की गयी है।

228 Pro Rop. ASI, Western Circle 1919, P 62, the cultural Heritage of Madhya Bharat, P 133.

229 इसी मदिर की उत्तर पश्चिम दिशा की ओर समीप ही बल्लभेश्वर महादेव का एक छोटा मन्दिर है, इसका भी शिखर टूट गया था लेकिन कुछ समय बाद इसके स्थान पर गुम्बद का निर्माण कर दिया गया। Pro Rep. ASi, Western Cırcle, 1919, P 62-63. -

230 I bıd, P 63,

231 I bid, P 63,

232 I bid, P. 63,

233 Pro Rep. ASI, Western Cırcle, 1921, P 98-106

234 I bıd, P 98-102

235 I bıd, P 102,106

236 Pro Rept ASI Western Cırcle 1920, P 100-102,

237 Imperıal Gazetteer of Indıa, Vol VIII, P 121

238 JAOS VOL VII, P 35

239 Pro Rep ASI Western Cırcle, 1907, R 24-25

240 I bıd, P 26

241 I bıd, P 27

242 EI VOL IX, P 155, VOL VIII, P 218

243 Hıstory of Indıan and Eastern Archıtecture, VOL 11, P 41

244 स0 सू0, दसवा अध्याय

245 स0 सू0, दसवा अध्याय

246 वैदिक कालीन यज्ञवेदी ने निम्नलिखित क्रम से आधुनिक मदिर का रूप धारण किया–
(ı) (वैदिकी वेदी) (ıı) डालमेन (पाषाणपट्टिका) (ııi) अस्थायी देवम्
(ıv) गिरि (v) आधुनिक मदिर त्रिवेन्द्रनाथ शुक्ल, भारतीय स्थापत्य, पृ0 214

अध्याय–5

परमार कालीन आर्थिक जीवन

परमार कालीन आर्थिक जीवन

आर्थिक उन्नति के बिना अपेक्षित सामाजिक एव सास्कृतिक विकास सभव नही है। वस्तुत आर्थिक समृद्धि सास्कृतिक विकास का आधार होती है। परमार शासको का प्रशासन मालवा, वागड, मेवाड के कुछ हिस्से उत्तरी गुजरात और बरार के विस्तृत भूभाग पर विद्यमान था। इन सकेतिक भूभागो मे असमान जलवायु होने के कारण आर्थिक दशा का स्वरूप भी असमान ही था।

प्रशासन एव सभयता सस्कृति के विचार के क्षेत्र मे नगर एव ग्रामो का विशेष महत्व होता है। परमारो ने उज्जैन, धारा मान्डू उदयपुर, भिलसा, शेरगढ, अर्थुणा, जालौर ओर किराडू आदि अनेक नगरो का निवेशन किया था। तत्कालीन अभिलेखो पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय के नगर एव ग्राम काफी उन्नत दशा मे थे। इस उन्नति के आधार अनेक प्रकार के उद्योग थे।

उद्योग

देश की आर्थिक दशा मे उद्योग धन्धे रीढ का काम करते है। यह अवश्य है कि अपनी प्रकृति एव कार्यों की दृष्टि से आर्थिक विकास के साथ उद्योग धन्धो मे अनेक विविधताए है। भारत के कृषिप्रधान देश होने के कारण कृषि उद्योग को राज्य का प्रश्रय प्राप्त था।

1. **कृषि उद्योग** – परमार प्रशासन मे कृषि सर्वाधिक महत्वपूर्ण आजीविका थी प्राचीन परम्परा के अनुसार समाज मे वर्णव्यवस्था के साथ कार्य व्यवस्था भी अलग–अलग विभक्त थी। यद्यपि धर्मशास्त्र के नियमो के अनुसार वैश्य जाति के लोगो को ही वाणिज्य एव कृषि करने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु परमार युग मे कृषि कार्य वैश्यो के अतिरिक्त शूद्र भी करते

थे।[1] ब्राह्मण वर्ग दान मे प्राप्त भूमि पर खेती करने के लिए अन्य जाति के लोगो को नियुक्त करता था। जो सम्भवत शूद्र वर्ग के होते थे।

साधारतया कृषि उद्योग के उपकरणो के विषय मे कुछ कहना कठिन है। कृषि मे जुताई के लिए हल बैलो जैसे पुराने साधनो का उपयोग होता था।

उपज – इस समय की मुख्य उपजो मे धान गेहूँ, जौ, मूग, मसूर, चना, उरद, कोदो (एक प्रकार का मोटा अन्न) और तिल की गणना की जाती थी।[2] व्यापारिक दृष्टि से अफीम, नील, गन्ना और कपास की उपज महत्वपूर्ण थी।[3] इसके अतिरिक्त नारियल, सुपाडी और मजिष्ठा आदि की भी उपज के उल्लेख मिलते है।[4]

सिचाई व्यवस्था – उपज की वृद्धि के लिए प्राकृतिक साधनो के अतिरिक्त कृत्रिम साधनो का भी उपयोग किया जाता था। परमार प्रशासक प्राचीन शासको की भाति तालाब, नहर, कुए आदि का निर्माण कराना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इस कर्तव्य के मूल मे सिचाई व्यवस्था मुख्य रूप से निहित होती थी वाक्पतिराजमुज ने मुजसागर नामक एक तालाब, भोज ने भोजसागर तालाब तथा एक विस्तृत झील और उदयादित्य ने उदयसागर का निर्माण कराया था।[5] नरवर्मन के समय भी एक तालाब का निर्माण किया गया था।[6] महाकुमार रहिश्चन्द्र ने बावली, कुये एव तालाबो से युक्त भूमि दान दी थी।[7] इसी प्रकार आबू के परमार शासक पूर्णपाल की बहिन लाहिणी ने भी एक तालाब का निर्माण कराया था।[8] राजाओ के अतिरिक्त जन सामान्य भी इस ओर पर्याप्त सक्रिय था। उदयादित्य के शासनकाल मे जन्न नामक एक तेली (पटेल) ने एक तालाब का निर्माण कराया था।[9] अन्य अभिलेखो मे थिमडाये (मारवाडी कुआ) और हरहट्ट जैसे सिचाई के उपकरणो को दान देने के उल्लेख मिलते है।[10]

2 **स्थानीय उद्योग धन्धे** – विदेश व्यापार के साथ स्थानीय उद्योगो को भी पर्याप्त प्रश्रय प्राप्त था। उपलब्ध साहित्य एव अभिलेखो के अनुसार उनका विवरण निम्नलिखित है –

वस्त्रोद्योग – यह भारत का सबसे प्राचीन उद्योग माना जाता है। परमारकालीन उद्योगो मे भी इसका मुख्य स्थान था। भोज के विवरणो मे कौषेय, कर्पास वार्क्ष और दूकल नाम चार प्रकार के वस्त्रो के उल्लेख मिलते है।[11] क्षीरस्वामी ने इन्हे दूसरे शब्दो मे रेशमी, सूती, और वृक्षो की छाल से बने हुए वस्त्रों के नाम से अभिहित किया है।[12] कच्चे माल, उनके प्रकार और स्थान विशेष एव अन्य भिन्नताओ के कारण उपर्युक्त वस्त्रो मे भिन्नताओ का होना स्वाभाविक था। इसी भिन्नता के कारण ही ये वस्त्र चार जाति के माने जाते थे। दक्षिण पूर्वी समुद्रतट पर रहने वाले कृमि सफेद तथा बारीक रेशे उत्पन्न करते थे। उन देशो से निर्मित वस्त्र ब्राह्मण जातीय कहलाते थे। पश्चिमी समुद्रतट के पीले और सफेद वर्ण के रेशो से निर्मित वस्त्र क्षत्रिय जातीय कहलाते थे। और सर्वसाधारण स्थानो पर पाये जाने वाले कृमियो के मोटे रेशो से बने रेशमी वस्त्र शूद्र जातीय माने जाते थे।[13] इसी प्रकार ऊनी वस्त्र भी चार प्रकार के होते थे।[14] ऊची नीची जातियो के कच्चे माल से बनने वाले वस्त्र उपयोगिता की दृष्टि से हेय माने जाते थे।[15] भोज ने तो यहॉ तक कहा कि ऐसे वस्त्र हानिकारक होते है।[16]

काष्ठ उद्योग – अन्य प्रश्रय प्राप्त व्यवसायो की तरह काष्ठ व्यवसाय भी कम महत्वपूर्ण न था। काष्ठ व्यवसायिओ का एक स्वतत्र वर्ग था जो उपयोगानुसार सिहसान, खटिया, पीठ और मचियॉ आदि बनाता था।

सिंहासन – भोज[17] के अनुसार उस समय राजाओ के लिए सामान्यतया चार हाथ लम्बे तथा चौडे और चार ही हाथ ऊँचे परिमाण के- शुद्ध काष्ठ के सिहासन बनते थे। उनमे सोलह मोढे (पाये) ओर चढने के लिए दो सीढियॉ बनी होती थी।[18] ये सिहासन आठ प्रकार के होते थे, जो सूर्य, चन्द्र आदि भिन्न–भिन्न ग्रहो की दशाओ में उत्पन्न राजाओ के लिए उपयोगी माने जाते थे। उनका नाम क्रमश पद्म, शख, गज, हस, सिह, भृग, मृग, और हय होता था।[19] इन सिहासनो का निर्माण सम्बन्धी विविध विधियो तथा नाप एव उनमे जटित होने वाले रत्नो आदि का विवरण निम्न लिखित है –

गृहदशा भेद से सिहासन निर्माण[20] –

दशा	नाम	काष्ठ	गोडा (पाया)	पुतलियॉ	धातु, रत्न	वस्त्र	चिह्न	फल
1	2	3	4	5	6	7	8	9
सूर्य	पद्म	गाम्भारी	16	12	सोना, पद्मराग	लाल	कमल	यशदायक
चन्द्र	शख	भद्र	16	27	चादी, स्फटिक	सफेद	शख	सुखदायक
सोम	गज	पनस	16	16	सोना, मूगा	लाल	गज	साम्राज्य दायक
मगल	हस	शाल	16	21	सोना, पुष्पराज	पीला	हस	अनिष्टकारक
बुध	सिह	चन्दन	16	21	सोना, हीरा, मोती	सफेद	सिह	भूमिदायक
वृहस्पति	भृग	चम्पक	16	22	सोना, मरकतमणि	नीला	भौरा	शत्रुनासक
शुक्र	मृग	नीम	16	40	सोना, इन्द्र नील	नीला	हिरण	विजय दायक
शनि	हय	मेसर	16	75	सोना, विविध	विचित्र रग	अश्व	विजयदायक

खटिया – काष्ठ से बनी घरेलू उपयोगी वस्तुओ मे खटिया का विशेष महत्व है। परमारो के समय, विजया, पुष्टि, क्षमा, तुष्टि, सुखामन, प्रचण्डा, और सर्वतोभद्रा नामावली आठ प्रकार की खटियाओ का उल्लेख मिलता है।[21] ये प्रकार नाप की विभिन्नताओ के कारण होते थे।

सिरहाने की पाटी को व्युपथान और पैताने (पैर की ओर की पाटी) को निरुपक तथा बगल की दोनो पाटियो को आलिगन के नाम से सम्बोधित किया गया है चार–चार हाथ के आलिगन क्रमश दो–दो हाथ के व्युपथान और निरुपक तथा एक–एक हाथ के चार पायो वाली चारपाई होती थी। इन उपकरणो के नाप का आकलन करने पर इनसे बनी हुई खटिया सोलह हाथ की मानी जाती थी। इसके अतिरिक्त 18 से 30 हाथ तक के नाप वाली खटियाओ का भी उल्लेख मिलता है।[22] विशेष विवरण अग्रलिखित विवरणिका ,द्वारा प्राप्त किया जा सकता है[23] –

आठ प्रकार की खटियाएं

स0	नाम	आलिगन	व्युपथान	गोडा (पाया)	कुल योग	विशेष फल
1	2	3	4	5	6	7
1	मगला	4,4 हाथ	2,2 हाथ	1X4 हाथ	16 हाथ	सामान्य फल
2	विजया	4 1/2, 4 1/2 "	2 1/2, 2 1/2 "	1X4 "	18 "	ऐच्छिक फलदायक
3	पुष्टि	5, 5 "		1 1/4 X 4 "	20 "	धनधान्य दायक
4	क्षमा	" " "	3, 3 "	1 1/2 4 "	22 "	सामान्य
5	तुष्टि	6 6 "	" " "	" " "	24 " -	रोगनाशक
6	सुखासन	6 1/2, 1/2	" " "	4 1/2,4 1/2 "	26 "	——
7	प्रचडा	7, 7	" " "	" " "	28 "	——
8	सर्वतोभद्रा	8, 8	4, 4	ठ ठ ठ	30 "	ऐच्छिक फलदायक

इन उपर्युक्त खटियाओ मे 16 हाथ वाली खटिया सर्वसाधरण के लिए उपयोगी समझी जाती थी और अन्य खटियाए सूर्य आदि ग्रहो की दशाओ मे उत्पन्न राजाओ के लिए ही उपयोगी होती थी।[24]

पीठ – पीठ निर्माण के लिए गाम्मारी, पनस, चन्दन, बबूल, और पलास की लकडियॉ उपयुक्त समझी जाती थी।[25]

डोली – सोना, चॉदी, तॉबा आदि धातुओ से जडी हुई विभिन्न प्रकार की डोलियो का निर्माण एव उनका विक्रय किया जाता था। परिमाणो की भिन्नता के कारण ये विजया, मगला, क्रूरा आदि छ प्रकार की होती थी। जो निम्नलिखित तालिका मे देखी जा सकती है।[26]

क – चतुर्थ प्रकार की खटिया के गोडो की नाप का कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। इस सम्बन्ध मे "सर्वविशतिका" मे इतना ही उल्लेख है परन्तु यह अनुपपन्न है। भोज द्वारा निर्दिष्ट प्रथम तीन प्रकार की खटियाओ के आधार पर गम्भीरता से विचार करने पर तीन हाथ न होकर बाइस हाथ ही ठीक प्रतीत होती है।

ख – यद्यपि भोज ने आठ प्रकार की खटियाओ का निर्देश किया है परन्तु विवरण छ प्रकार के ही मिलते है। छठे और सातवे (सुखासन, प्रचण्डा) खटियाओ की नाम आदि का उल्लेख नही है। यहॉ उपर्युक्त अन्य खटियाओ के परिमाणो के आधार पर इनकी योजना प्रस्तुत की गई है।

डोली निमार्ण भेद

सख्या	नाम	मध्य का नाम	दोनो पार्श्वो का नाम
1	2	3	4
1	विजया	4 हाथ	2 1/2, 2 1/2 हाथ
2	मगला	3 1/2 "	2,2 "
3	क्रूरा	4 "	2 1/2, 2 1/2 "
4	शिवा	4 1/2 "	3, 3 "
5	क्लेशा	5 "	3 1/2, 3 1/2 "
6	शुभा	5 1/2 "	4, 4 "

इस विवरणिका से ज्ञात डोलियो की नाम के अतिरिक्त एक और विशेषता यह थी कि यात्रा के समय इनमे सकेत सूचक पट्ट लगाये जाते थे। जिससे डोलारुढ व्यक्ति के गम्य स्थल का सकेत मिलता था। भोज ने इन सकेत पट्टो के सम्बन्ध मे कहा है कि प्रस्थान करने वाली दोलाओ मे हाथी, युद्ध मे सिह, भ्रमण मे हिरन, क्रीडा मे भ्रमर शत्रु राज्य मे प्रवेश के लिए सर्प और दानकार्य मे जाने वाली दोलाओ मे बैल का चित्र अकित किया जाना चाहिए।[26]

इस प्रकार बनी हुई दोलाओ के छाजनवार और बिना छाजनवार होने के भेद से दो प्रकार होते थे। छाजनवार दोलाये वर्षा और युद्धस्थल आदि प्रतिकूल परिस्थितियो के लिए उपयुक्त होती थी।[27]

पुन ये दोलाये भारवाहको की दृष्टि से कई प्रकार की होती थी। चार व्यक्तियो द्वारा वहन की जाने वाली दोला को चतुर्दोला और आठ व्यक्तियो द्वारा वहन की जाने वाली को अष्टदोला कहा जाता था।[27] डोला निर्माण के लिए चम्पक, पनस, नीम, चन्दन आदि की नकडियो का उपयोग किया जाता था।[28]

नौका – जलमार्ग से यात्रा करने के लिए नौकाओ की आवश्यकता सर्वविदित है। अन्य उद्योगो की तरह उस समय नौका निर्माण की कला भी खूब उन्नत अवस्था मे थी। राजा भोज ने नौकाओ के लिए निम्नलिखित काष्ठ भेद बताया है।[29]

काष्ठ भेद

वर्ण	विशेषता
ब्राह्मण	हल्का, मुलायम, सुघट
क्षत्रिय	दृढ, हल्का, अघट
वैश्य	कोमल, भारी
शूद्र	दृढ और भारी

इनमे क्षत्रिय वर्ण की लकडी से निर्मित नौका सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी मिश्रित वर्ण के काष्ठो से भी नौका बनाने का प्रचलन था किन्तु उसे श्रेष्ठ नही माना जाता था। किसी एक वर्ण की लकडी से बनी नौकाए ही उत्तम समझी जाती थी।[30]

बनावट की दृष्टि से नौकाये सामान्य और विशेष दो प्रकार की होती थी।

सामान्य – सामान्य नौकाए दस प्रकार की होती थी जो निम्नलिखित विवरणिका मे दृष्टव्य है –

सामान्य बनावट

सख्या	नाम	लम्बाई	चौडाई	ऊँचाई
1	2	3	4	4
1	छुद्रा	10 हाथ	2 1/2 हाथ	2 1/2 हाथ
2	मध्यमा	15 "	7 1/2 "	5 "
3.	भीमा	20 "	10 "	5 "
4	चपला	25 "	12 1/2 "	5 "
5	पटला	30 "	15 "	5 "
6	अभया	35 "	17 1/2 "	5 "
7	दीर्घा	40 "	20 "	5 "
8	पत्रपुटा	4 45 "	22 1/2 "	- 5 "
9	गर्भरा	50 "	25 "	5 "
10	मन्थरा	55 "	27 1/2 "	5 "

इनमे कुछ और कुछ अशुभ मानी जाती। जैसे, भीमा अभया और गर्भरा नामक नौकाए शुभ होती थी।

विशेष – विशेष प्रकार की नौकाओ के दो भेद होते थे। दीर्घा और उन्नता/दीर्घा नौका नाप भेद से दस प्रकार की होती थी। दो राजहस्त लम्बी, लम्बाई के आठवे हिस्से के बराबर चौडी तथा लम्बाई के दसवे हिस्से के समान ऊँची परिमाण की नौका दीर्घा कहलाती थी। इसी प्रकार एक–एक राजहस्त वृद्धि के क्रम से तरणि, लोला, गत्वरा, गामिनी, तरि, जपाला, प्लाविनी, धारिणी, और बैगिनी नामक दस प्रकार की नौकाए होती थी जिनका विवरण निम्नलिखित तालिका मे देखा जा सकता है, प्रत्येक राजहस्त 10 साधारण हाथ के बराबर होता था। [31]

दीर्घा नौकाएं [32]

सख्या	नाम	लम्बाई	चौडाई (ल0 का 1/8)	ऊँचाई (ल0 का 1/10)
1	2	3	4	5
1	दीर्घिका	20 हाथ	2 1/2 हाथ	2 हाथ
2	तरणि	30 "	3 3/4 "	3 "
3	लोला	40 "	5 "	4 "
4	गत्वरा	50 "	6 1/4 "	5 "
5	गामिनी	60 "	7 1/2 "	6 "
6	तरि	70 "	8 3/4 "	7 "
7	जधाला	80 "	10 "	8 "
8	प्लाविनी	90 "	11 1/4 "	9 "
9	धारिणी	100 "	12 1/2 "	10 "
10	बैगिनी	110 "	13 3/4 "	11 "

इनमे लोला गामिनी और प्लाविनी नौकाये कष्टकारक मानी जाती थी।[33]

उन्नता नौका भी परिमाणो के क्रम से पॉच प्रकार की होती थी, परन्तु उनकी लम्बाई, चौडाई और ऊॅचाई समान होती थी। इसके पाच प्रकारो को निम्नलिखित तालिका मे देखा जा सकता है –

उन्नता नौकायें [34]

1 राजहस्त = 10 हाथ

सख्या	नाम	लम्बाई	चौडाई	ऊॅचाई
1	2	3	4	5
1	ऊर्द्धवा	20 हाथ	20 हाथ	20 हाथ
2	अनुर्द्धवा	30 "	30 "	30 "
3	स्वर्णमुखी	40 "	40 "	40 "
4	गाभिणी	50 "	50 "	50 "
5	मन्थरा	60 "	60 "	60 "

इनमे अनुर्द्धवा और गर्भिणी नामक नौकाएं निकृष्ट श्रेणी की समझी जाती थी।[35]

उपरोक्त सभी प्रकार की काष्ठ नौकाओ को विभिन्न रगो एव सोना, चादी आदि धातुओं से अलकृत किया जाता था। चार मस्तूलो वाली नौका को सफदे रग से, तीन वाली को लाल, दो वाली को पीले और एक मस्तूल वाली नौका को नीले रग से रगा जाता था।[35] साथ ही नौकाओ के अग्र भाग मे सिह, वृषभ, सर्प, गज मेढक और मनुष्य के मुख की आकृतिया बनायी जाती थी।[36] आजकल भी नौकाओं के अग्रभाग मे सिह, वृषभ, और मनुष्य की आकृतियॉ पाई जाती है।

उपर्युक्त सामान्य और विशेष प्रकार की नौकाओ के पुन दो भेद होते थे – सगृह और निगृह। सगृह नौकाये भी तीन प्रकार की होती थी – सर्वमदिर, मध्यमदिर तथा अग्रमदिर। जिस नौका के पूरे हिस्से मे कमरा बना होता था, उसे सर्वमदिर, जिसके मध्य भाग मे कमरा हो उसे मध्यमदिर और जिसका केवल अग्रभाग मे कमरा हो उसे अग्रममन्दिर नौका कहा जाता था।[37] मध्य मन्दिर नौकाये आजकल भी पायी जाती है, जिन्हे "बजरा" के नाम से सम्बोधित किया जाता हे। काष्ठ से निर्मित कघी जैसी अन्य छोटी–2 वस्तुओ की भी चर्चाए प्राप्त होती है।[38]

शीशे का व्यवसाय – काच का भी एक स्वतत्र उद्योग होता था। गिलास और दर्पण इसके मुख्य निर्माण थे। दर्पण के विषय मे कुछ विशेष उल्लेख मिलते है। नापभेद से ये भिन्न–भिन्न नाम के होते थे। जिनका उपयोग वर्ण विशेष के लोग करते थे। एक वित्ता परिणाम का भव्य नामक दर्पण होता था। इस प्रकार चार–चार अगुल वृद्धि के क्रम से सुख, जय, क्षेम नामक दर्पणो का उल्लेख मिलता है। जिनका उपयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के लिए विहित था। चार अगुल परिमाण वाला वर्गाकार विजया नामक दर्पण सभी वर्णो के लोगों के लिए उपयुक्त समझाा जाता था।[38] इसके अतिरिक्त मनुष्य की लम्बाई के बराबर, उसकी आधी तथा चौथाई लम्बाई के शीशे (दर्पण) बनते थे।[39] काच की कघी का भी उल्लेख मिलता है।[40] जो इस युग की एक विशेषता थी।

धातु उद्योग – इस क्षेत्र मे भी पर्याप्त उन्नति हुई। लोहा, सोना, चॉदी, पीतल, आदि धातुओ की विभिन्न चीजे बनती थी।

लोहे के कई प्रकार के औजारो का निर्माण किया जाता था। इनमे भाला, कवच, बर्छी, बाण और खड्ग मुख्य थे।[41] इस समय के खड्गो की निर्माण विधि से सबन्धित कुछ विशेष बारीकियो का उल्लेख मिलता है। कलि, उन्द्र आदि कई प्रकार के लौह भेद माने जाते थे। खड्ग निर्माण के

लिए केवल बज्र नामक लोहे का ही उपयोग किया जाता था।[42] इतना ही नही इसके निर्माण मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि रखी जाती थी क्योकि अग, रूप, जाति, नेत्र, अरिष्ट और ध्वनियो के अनुसार ही शुभ और अशुभ खड्गो की पहचान होती थी।

लोग आभूषणो के बडे शौकीन थे। स्त्री पुरुष दोनो ही उसका उपयोग करते थे। सोने, चॉदी के विभिन्न प्रकार के आभूषण बनते थे जिन्हे शरीर के विभिन्न अगो मे धारण किया जाता था।[43] ताबा, पीतल आदि का भी स्वतत्र व्यवसाय था। इससे विभिन्न प्रकार के बर्तन बनते थे। बर्तन व्यवसायी को ठठेरा कहा जाता था।[44]

रत्नोद्योग – राजकीय प्रसाधनो मे रत्नो का विशेष महत्व होता है। विवेच्यकाल मे भी जौहरी विभिन्न प्रकार के रत्नो का व्यवसाय करते थे। जिनमे से कुछ मुख्य रत्नो का विवरण निम्नलिखित है। हीरा – यह ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जाति के क्रम से क्रमश श्वेत रक्त, नील और पति वर्ण का होता था।[45] मूगा – यह भी चार वर्णो का माना जाता था। लाल ब्राह्मण सिदूरिये रग का क्षत्रिय, पलास के फूल की तरह आभा वाला वैश्य और रक्त कमल के वर्ण का शूद्र जातीय मूगा समझा जाता था।[46] इसी प्रकार मोती, वैद्वर्य, इन्द्रनीलमणि, पुष्पराज और स्फटिकमणि के भी रगों के आधार पर कई प्रकार होते थे।[47]

हाथी दॉत का व्यवसाय – इससे पीठ और कघी जैसी वस्तुओ का निर्माण किया जाता था।[48]

सीगो की भी कंघियॉ बनती थी जिनके लिए हिरण और भैस की सीगो का अधिक उपयोग किया जाता था।[49]

लोग श्रृगार मे अपने मुख्य रूप से इत्र का उपयोग करते थे।[50] जिससे स्पष्ट होता है कि लोग इत्र बनाने की कला से भली प्रकार परिचित थे।

बास का व्यवसाय – बास की डोलची, पिटारी जैसी वस्तुए बनती थी। किन्तु इनका निर्माण करने वाले शूद्र अथवा अन्त्यज थे और गावो से अलग रहकर अपना कार्य करते थे।[51]

शिल्प व्यवसाय – विभिन्न शिल्पियो के अपने स्वतत्र वर्ग होते थे। भोज[52] से ज्ञात गृहनिर्माण विधि को देखने से उस समय के लोगो की शिल्पकला मे निपुणता का ज्ञान प्राप्त होता है।

इन उपर्युक्त व्यवसायो के अतिरिक्त मोची, बढई, मालाकार, रगरेज, दर्जी, तेली, मछुये और धोबी आदि वर्गों के लोगो के अपने स्वतत्र व्यवसाय थे।

3. वाणिज्य

कृषि के अतिरिक्त वैश्य एव कुछ अन्य लोग व्यापार मे सलग्न थे जिन्हे बनिया या वेष्ठिन कहा था।[53] व्यापार दो प्रकार का होता था। स्थानीय एव विदेशी/स्थानीय व्यवसाय के अतर्गत व्यवसायी राज्य के भीतर के गावो एव नगरो मे अपनी दुकाने खोलकर दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ एव उस स्थान से सम्बन्धित अन्य वस्तु विशेष को खरीदते और बेचते थे।[54] छोटे–छोटे गावो मे जहॉ तहॉ साप्ताहिक या विशेष पर्वों पर बाजारे लगती थी जिनमे समीपवर्ती व्यवसायी भी भाग लेते थे। इस प्रकार की बाजारे स्थानीय प्रशासको के नियन्त्रण मे आयोजित की जाती थी। जिससे इनमे भाग लेने वाले व्यवसायी चुगी विक्रीकर आदि विभिन्न करो कों चुकाते थे।[55] तत्कालीन साहित्यिक प्रमाणो से यह भी ज्ञात होता है कि बडे–बडे व्यापारी देशी व्यापार के साथ–साथ विदेशी व्यापार भी करते थे। वे जहाजों द्वारा विदेशी व्यापार भी करते थे। वे जहाजो द्वारा सिहलद्वीप तथा सुवर्णभूमि जैसे अनेक सथानो में व्यापारिक वस्तुओ को खरीदने और बेचने जाते थे।[56] पेरीप्लस के अनुसार भडौच का बन्दरगाह इस दृष्टि से अत्यन्त महतवपूर्ण

माना जाता था। अपनी भौगोलिक स्थिति मे यह बन्दरगाह मालवा से होकर प्रवाहित होने वाली नर्मदा नदी एव समुद्र के सगम स्थल पर बना था। यहॉ से व्यापारी लोग भारत के भीतरी हिस्सो से लायी हुई अनेक वस्तुओ को विदेशो मे समुद्री मार्ग से भेजते थे। पेरीप्लस के अनुसार ओजैन (उज्जैन) से व्यापारिक वस्तुए भडोच भेजी जाती थी।[57] यहॉ उज्जैन से तात्पर्य मालवा से है।[58] लाटदेश पर परमारो का पूर्णत अधिकार होने के कारण भडौच के बन्दरगाह पर भी इनका अधिकार था।[59] जिसे बनाये रखने के लिए कई बार परमार शासको को चालुक्यो तथा यादवो से मुठभेडे लेनी पडी थी।

मगध, सौराष्ट्र, कलिग नेपाल तथा वाराणसी से भी परमारो के व्यापारिक सम्बन्ध थे।[60] तत्कालीन साहित्य मे चीनशुक शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि इनका व्यापार क्षेत्र चीन देश तक विस्तृत था।[61]

व्यापारिक वस्तुए – मजीठ, गुड, नमक, जौ, चीनी, सूत, कपास, नारियल, मक्खन तिल का तेल, सुपाडी और पशुओ के चारे एव अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुए व्यापार विनिमय मे प्रयुक्त होती थी।[62] मगध, सौराष्ट्र, कलिग, नेपाल और वाराणसी से तलवारो का व्यापार होता था। एवं चीन देश से रेशमी कपडे आयात किये जाते थे।[63]

व्यपार प्रणाली – विदेशो से व्यापार करने के लिए व्यापारी अपने अलग–अलग गिरोह बनाकर यात्रा करते थे।[64] शेरगढ शिलालेख मे एक तैलकराज का उल्लेख मिलता है जो तेली समाज का मुखिया था।[65] इसी प्रकार नाविको का भी अपना सगठन (श्रेणी) होता था। तारक चन्द्रकेतु द्वारा नाविको का मुखिया बनाया गया था।[66]

ख. मुद्रा व्यवस्था

मानवीय आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु विनिमय के लिए मुद्रा का विशेष महत्व होता है। इसके परिज्ञान से ही किसी देश की आर्थिक नीति एव

उसकी दशा का पूर्ण ज्ञान हो सकता है। परमार कालीन समाज मे विनिमय के इस माध्यम को दीनार, द्रम, रूपक, कार्यापण और पण आदि कई नामो से सबोधित किया जाता था। ये मुद्राये धातु भेद से चार प्रकार की होती थी। – स्वर्णमुद्राये धातु भेद से चार प्रकार की होती थी – स्वर्णमुद्राये, रजत मुद्राये, ताम्र मुद्राये और मिश्रित धातु की मुद्राये। इन मुद्राओ के सापेक्षिक अनुपात मे अनेक भिन्नताये होती थी। ये भिन्नताए आर्थिक नीति के अनुसार धातुओ की मिलावट की दृष्टि से होती थी।

परमारयुग के उपलब्ध सिक्को का आनुपातिक दृष्अि से विवरण प्रस्तुत किया गया है –

दीनार – मेरुतुग ने उज्जैन के विक्रमादित्य एव भोज के सदर्भ मे दीनार नामक सिक्के का उल्लेख किया है।[67] ठयकुरपेरू के अनुसार यह सोने का एक सिक्का था। जो मूल्य मे चार माशो के बराबर होता था।[68]

पारुत्थद्रम – यह मुद्रा चॉदी की बनती थी।[69] नरवर्मन ने जैन विद्वान जिनवल्लभ की विद्वता पर प्रसन्न होकर पुरस्कार स्वरूप उसे तीन लाख पारुत्थद्रम दिया। किन्तु त्यागशील सन्यासी ने केवल दो पारुत्थद्र लेना ही स्वीकार किया था।[70] सी0डी0 दलाल के मतानुसार यह एक विशेष प्रकार का सिक्का होता था। जिसे श्रेष्ठ पारुत्थद्रम और श्रीमत पारुत्थद्रम के नाम से भी अभिहित किया जाता था।[71]

समीक्षात्मक दृष्टि से विचार करने पर पारुत्थद्रम का मूल्य आठ सामान्य द्रम के बराबर ज्ञात होता है।[72] चूँकि एक द्रम 65 ग्रेन का होता था,[73] अत एक पारुत्थद्रम = 65 × 8 = 520 ग्रेन का माना जाएगा।

द्रम – परमार युग का सर्वप्रमुख सिक्का माना जाता था।[74] द्रम ग्रीक द्रम शब्द का ही शुद्ध रूप है जिसका वजन लगभग 65 ग्रेन होता था।[75] इस सिक्के की धातु के विषय मे पर्याप्त मतभेद है। इस सिक्के की धातु के

विषय मे पर्याप्त मतभेद है। पुष्पानियोगी के अनुसार ने यह सोना चादी और ताबे का होता था।[76] अशोक कुमार मजुमदार और अल्टेकर के मत मे यह केवल साने ओर चॉदी से ही निर्मित होता था।[78] किन्तु डॉ0 डी0 आर0 भण्डारकर उसे केवल चॉदी का ही सिक्का मानते है।[79] लल्लनजी गोपाल एव मिराशी महोदय ने भी भडारकर के मत का समर्थन किया है।[80]

इस सन्दर्भ मे एक उल्लेखनीय बात यह है कि उस समय चॉदी और ताबे के सिक्को का खूब प्रचलन था। सोने के सिक्को के बहुतकम उल्लेख मिलते है। केवल उदयादित्य ने अपने शासन काल मे सोने के सिक्के चलाये थे।[81] अत यह कहा जा सकता है कि द्रम चॉदी का सिक्का होता था। गणितसार के अनुसार एक द्रम का मूल्य पॉच रुपक के बराबर माना जाता था।[82]

रूपक – यह चॉदी का सिक्का होता था।[83] जिसके मूल्य के बारे मे मतभेद पाया जाता है। बी0एन0 पुरी के अनुसार इसका मूल्य द्रम के चतुर्थांश से बीसवा हिस्से (1/4 से 1/20) तक के बीच का होता था।[1] गणितसार के अनुसार यह द्रम का पाचवा भाग (1 द्रम = 5 रुपक) होता था।[84] इस रूपक का ही एक भेद अर्द्धरूपक था जो मूल्य मे रूपक का आधा माना जाता था।[85] चूॅकि एक द्रम मे बीस विशोपक होते है,[86] और गणितसार के अनुसार रूपक एक द्रम के पॉचवे हिस्से के बराबर माना जाता था। अत एक रूपक का मूल्य चार विशोपक माना जाना चाहिए।

टंक – मेरुतुग ने भोज प्रबन्ध के सन्दर्भ में टक नामक सिक्के का उल्लेख किया है।[87] यह सिक्का चॉदी का होता थां तथा वजन मे 172 8 ग्रेन के बराबर होता था।[88] अल्टेकर के अनुसार इसका वजन एक तोला होता था।[89]

कार्षापण – भोज ने एक स्थलपर कार्षापण नामक सिक्के का उल्लेख किया है।[90] यह भी चॉदी की ही एक मुद्रा थी परन्तु मूल्य मे यह टक से छोटी होती थी।[91] इसका वजन एक कर्षण अथवा 80 रत्ती होता था।[92]

बराह – शेरगढ शिलालेख मे इस सिक्के का नामोल्लेख है।[93] इसका वजन 60 ग्रेन के लगभग होता था।[94]

विशोपक – जयसिह के पेन्हरा शिलालेख मे इस सिक्के का उल्लेख मिलता है।[95] डॉ0 भडारकर के अनुसार यह ताबे का सिक्का होता था, तथा मूल्य मे द्रम का बीसवा (1/20 द्रम = 1 विशोपक) हिस्सा माना जाता था। छवकुकपेरू ने भी बीस विशोपक को एक द्रम के बराबर माना है।[95] मीराशी के मतानुसार द्रम का बीसवा भाग होने के कारण ही इसे विशोपक के नाम से पुकारा जाता था।[96] वागड के परमार शासक चामुडराज के अर्थुणा शिलालेख मे वृषविशोपक नामक एक सिक्के का उल्लेख मिलता है।[97] मालवा के शासक उदयादित्य के शेरगढ शिलालेख मे इसका केवल वृषभ के नाम से उल्लेख किया गया है।[98] यह विशोपक का ही एक भेद होता था। इसी कारण इसे वृषभ और वृषि वृषभशोपक के नाम से पुकारा जाता था।

पण – यह सम्भवत. ताबे का सिक्का होता था, जो विशोपक का ही एक भेद माना जाता था। एक पण का मूल्य पॉच कौडी के बराबर होता था।[99]

कपर्दक वोडी – कपर्दक वोडी नामक अन्य सिक्के का उल्लेख शेरगढ शिलालेख मे मिलता है। एक पर्णशाला मे धूप जलाने के लिए एक कपर्दक वोडी दान दिये जाने का उल्लेख है।[99] सम्भवत यह भी ताम्बे का ही सिक्का होता था, जिसका मूल्य चार पण या बीस कौडी के बराबर होता था।[101]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर परमारकाल की मुद्रा व्यवस्था निम्नलिखित तालिका मे स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

क्रम स0	दीनार	धातु	मूल्य
1	दीनार	सोना	4 माशा
2	पारुत्थद्रम	चॉदी	8 द्रम
3	द्रम	चॉदी	5 रुपक
4	रूपक	चॉदी	4 विशोपक
5	टक	चॉदी	1 तोला
6	कार्षापण	चॉदी	80 रत्ती
7	वराह	चॉदी	60 ग्रेन (वजन)
8	विशोपक	ताम्बा	1/20 द्रम
9	पण	ताम्बा	5 कौडी
10	कपर्दकवोडी	ताम्बा	5 पण या 20 कौडी

इनके अतिरिक्त ठक्कुरपेरु[102] ने अपने द्रव्य परीक्षा नामक ग्रन्थ मे इस समय की कुछ विशेष प्रकार के सिक्को का उल्लेख किया है जो मिश्रित धातु के होते थे। सम्भवत इनमे आनुपातिक दृष्टि से जितनी चादी होती थी उतना ही उनका मूल्य माना जाता था। वजन मे ये मुद्राये प्राय 1 टक 10 यव के बराबर होती थी।[103] पेरु द्वारा निर्दिष्ट मुद्राओ का विवरण निम्नलिखित सारणी मे देखा जा सकता है।

क्र0 स0	मुद्राओ के नाम	वजन	चॉदी की मात्रा
1	शिवगुढा मुद्रा (1)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 3 माशा
2	खाल्गा मुद्रा (1)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
3	गलहुलिया मुद्रा (1)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
4	जकारिया मुद्रा (1)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
5	कौकदिया मुद्रा (2)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
6	दियालपुरीय मुद्रा (3)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
7	कुण्डलिया मुद्रा (4)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
8	कौलिया मुद्रा (5)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
9	छद्यलिया मुद्रा (5)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
10	सैलदित्तोगद मुद्रा (7)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा
11	जनिया चित्तौरी मुद्रा (8)	---	100 सिक्के मे 1 तोला 8 माशा

इसमे प्रथम चार सिक्को के वजन बारे मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है।

इन मुद्राओ के अतिरिक्त ठक्कुरफेरू ने इस समय की कुछ मुहरो का भी उल्लेख किया है, जिनके नाम थे– वापडा, मलीट, सिहमार, और चौरमार। ये चॉदी की होती थी तथा खजाने मे इनका सचय प्राय द्रव्य को एकत्र करने की दृष्टि से किया जाता था। उपयुर्क्त चारो मुहरो का मूल्य क्रमश 14 तोला, 14 तोला 3 माशा, 13 तोला और 13 तोला चॉदी होता था। मलीट और चौरमार का वजन एक टक होता था। परन्तु वापडा एव सिहमारा के बारे मे कोई सपष्ट ज्ञान नही है।[104]

ग. मापतौल और बाट

ऐतिहासिक पृष्टिभूमि मे समय विशेष एव स्थान विशेष के आर्थिक दशा को समझने के लिए मापतौल के प्रणाली का ज्ञान आवश्यक होता है। विभिन्न पहलुओं के माप तौल की योजना भिन्न समयो मे भिन्न–भिन्न रही है। यहॉ परमार प्रशासनिक माप–तौल को दृष्टि मे रखते हुए उपलब्ध विवरणो का निर्देश दिया गया है।

माप

दूरी नापने के माप – दूरी की नाप मे सर्वप्रथम रेणु का नाम आता है। रथ के चलने से उडने वाले कणो को रेणु कहते है।[105] भोज के अनुशार –

1 रेणु = 1 बालाग्र (बाल की नोक)

8 बालाग्र = 1 लिज्ञा (सिर का एक विशेष प्रकार का जूॅ (लीख)

8 लिक्षा = 1 यूका (बडा जूॅ)

8 यूका = 1 यवमध्य

बालाग्रो आदि का उल्लेख कौटिल्य ने भी किया है।[106] सामान्यतया आठ यवमध्यो (जौ का मध्य भाग) का एक अगुल होता है। किन्तु परमार समय मे अगुल के तीन प्रकार के मापो का उल्लेख मिलता है।[107]

8 यवमध्य = ज्येष्ठ अगुल

7 " = मध्यम अगुल

6 " = कनिष्ठ अगुल

अगुल के गणना भेद के अनुसाार लम्बाई नापने के विभिन्न नाप निम्नलिखित है –[108]

1 अगुल	प्रमाण	नाप को	मात्रा
1 "	"	"	क्ला
2 "	"	"	पर्व
3 "	"	"	मुष्ठि
4 "	"	"	तल
5 "	"	"	करपाद
6 "	"	"	दिष्टि
7 "	"	"	तूणि
8 "	"	"	प्रादेश
9 "	"	"	शयताल
10 "	"	"	गोकर्ण
11 "	"	"	प्रादेश
12 "	"	"	शयताल
14 "	"	"	गोकर्ण
21 "	"	"	प्रादेश
106 "	"	"	शयताल

चौबीस अगुल प्रमाण नाप को एक हस्त कहा जाता है। हस्त तीन प्रकार के होते थे।

8 अगुल प्रमाण का प्राशय (ज्येष्ठ) हस्त

7 " " " साधारण (मध्यम) हस्त

6 " " " मात्राशय (लघु) हस्त

पुरो एव ग्रामो आदि के देवमदिरो, भवनो आदि के निर्माण और गलियो आदि मे, विभागीकरण मे "प्राशय" नाम हस्त का प्रयोग किया जाता था। तलो की ऊँचाई, स्तम्भो, जलृहो और सुरगादि मे 'साधारण' तथा कूप और वापी के प्रमाणो को नापने के लिए "मात्राशय" नामक हस्त का उपयोग किया जाता था।[109]

हस्तमापो के अतिरिक्त दूरी नापने की तीन और विधियॉ प्रचलित थी।

1 कृषि भूमि की नाप विधि

2 राज एव पुर निवेश की मापविधि

3 मार्ग मापन प्रणाली

(1) हल – परमार अभिलेखो मे भूमि माप के रूप मे हल शब्द का उल्लेख मिलता है। इसे भूहल और हलबाह नामो से भी सम्बोधित किया जाता था।[110] भोज ने चार हल, यशोवर्मा ने दो भूहल तथा-आबू शासक धारावर्ष ने दो हलवाह भूमि दान दी थी।[111] पाणिनी[112] पतजलि[113] और बाणभट्ट[114] जैसे प्राचीन ग्रन्थकारो ने भी भूमि नाप के सम्बन्ध मे हल शब्द का उल्लेख किया है। पुष्पानियोगी के अनुसार एक दिन मे एक हल द्वारा जोती गयी भूमि को एक हल भूमि कहा जाता था।[115] परन्तु एक हल से कितनी भूमि जोती जाती थी, यह अस्पष्ट है।

उपरोक्त कथनो की समीक्षा से यह बात स्पष्ट है कि एक ओर काणे महोदय के अनुसार 6 बैलो द्वारा एक दिन मे जोती गयी भूमि को एक निवर्तन कहा जाता था।[116] दूसरी ओर मिताक्षरा मे 200 हाथ वर्गाकार भूमि को एक निवर्तन कहा गया है।[117] पुष्पानियोगी के अनुसार एक हल यानी दो बैलो द्वारा जाती गयी भूमि को एक हल भूमि कहा गया है।[118] इन कथनो की परस्पर सामन्जस्यपूर्ण समीक्षा से यह प्रतीत होता है कि –

6 बैलो से – हल से – जोती जाने वाली भूमि – काणे

= 200 हाथ वर्गाकार भूमि – मिताक्षरा

= 1 निवर्तन

चूँकि एक हल मे दो बैल होते है ओर एक हल से जोती गयी भूमि एक हल भूमि होती हे, इसलिए 200 हाथ वर्गाकार तृतीयाश 66 2/3 वर्गाकार हाथ भूमि दो बैलो वाले एक हल के लिए उपयुक्त है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि एक हल भूमि = 66 2/3 हाथ होती थी।

निवर्तन – तत्कालीन अभिलेखो मे भूमिनाप के सदर्भ मे निवर्तन भूमि का एक ब्राह्मण को दान दी।[119] निवर्तमान नामक यह नाप कोई नवीन नाप नही था, बल्कि भूमि नाप के सदर्भ मे इसका उल्लेख पहले से ही पाया जाता है। कौटिल्य ने भी निवर्तमान शब्द का उल्लेख किया है। तद्नुसार[120] –

4 अरत्नि = 1 दण्ड

10 दण्ड = 1 रज्जु

3 रज्जु = 1 निवर्तन होता था।

बोधायन धर्मसूत्र मे भी भूमिनाप के लिए निवर्तन का उल्लेख मिलता है।[121] काणे महोदय के अनुसार 6 अथवा 8 बैलो ,द्वारा एक दिन मे जोती गयी भूमि को एक निवर्तन कहा जाता था। निवर्तन शब्द की व्युत्पत्ति की

ओर सकेत करते हुए उन्होने कहा है कि "नि" उपसर्ग "वृ" धातु से निष्पन्न निवर्तन शब्द का अर्थ एक दिन मे जोती जाने वाली भूमि है।[122] मिाक्षरा के अनुसार 200 हाथ वर्गाकार भूमि को एक निवर्तन कहा जाता है।[123] अन्य प्रमाणो से भी स्पष्ट होता है कि एक निश्चित नाप वाली वर्गाकार भूमि को निवर्तन कहा जाता था।[124]

(2) भोज ने पुर एव ग्राम निवेश की दृष्टि से भूमि नाप की एक अन्य विधि निर्दिष्ट की है। जो निम्नलिखित है –

24 अगुल = 1 हस्त[125]

10 हाथ 1 राजहस्त[126]

10 राजहस्त = 1 राजदण्ड[127]

10 राजदण्ड = 1 राजछत्र

10 राजदण्ड = 1 राजकाण

10 राजदण्ड = 1 राजपुरुष

10 राजदण्ड = 1 राजप्रधानी

10 राजदण्ड = 1 राजक्षेत्र

(3) मार्ग आदि की दूरी नापने के लिए निम्नलिखित सकेत मिलते है।[128]

100 धनु = 1 क्रोश

2 क्रोश = 1 गव्यूति

1 गव्यूति = 1 योजन

बाट – विवेच्य काल मे वस्तुओ को तोलने के लिए विभिन्न प्रकार के बाटो के उल्लेख मिलते है।

कर्ष – आबू शासक चमुडराज के अर्घुणा शिलालेख मे कर्ष का नामोल्लेख मिलता है।[129] सस्कृत साहित्य मे इसका उल्लेख सोना, चादी और ताबा तालने के बाट के रूप मे मिलता है। [130] कार्षापण नामक सिक्के का वजन एक कर्ष होता है।[131] शुक्रनीतिसार के अनुसार कर्ष का वजन जैसा कि अधोलिखित विवरण से स्पष्ट है। 10 माशा होता था[132] –

10 गुजा = 1 माशा

10 माशा = 1 कर्ष

10 कर्ष = 1 पदार्थ

10 पदार्थ = 1 प्रस्थ

परमारकाल मे कर्ष नामक बटखरे का उपयोग सोना चादी आदि धातुओ को तोलने के लिए नही बल्कि मक्खन और तेल तौलने के लिए किया जाता था।[133]

पालिका – तत्कालीन अभिलेखो मे पालिका नामक एक दूसरे बटखरे का भी उल्लेख मिलता है।[134] इसे "पल" के नाम से ीी अभिहित किया जाता था।[135] प0 गौरी शकर हीराचन्द ओझा के अनुसार यह छ तोला वजन का तेल तौलने वाला एक बाट होता था।[136] इसका उपयोग तेल, घी, और मक्खन तौने के लिए किया जाता था।[137]

घटक – यह भी मक्खन, घी और तेल नापने का एक पात्र था।[138]

द्रोण – द्रोण नामक मात्रा माप का भी उल्लेख मिलता है।[139] इसका उपयोग विशेष अन्न तौलने के लिए किया जाता था।[140] इसके वजन मे बारे मे मतभेद है। मनु[141] के अनुसार द्रोण आठ सेर वजन का एक बटखरा होता था। परन्तु कौटिल्य[142] ने भिन्न वजन वाले चार प्रकार के द्रोणो का उल्लेख किया है। जो निम्मलिखित है –

200 पल = आयमान द्रोण (राजकीय आय को मापने योग्य)

187 1/2 पल = व्यवस्थित द्रोण (सर्वमान्य के लिए उपयोगी)

175 पल = भावनीय द्रोण (भृत्यभोगी)

162 1/2 पल = अत पुर भाजनीय द्रोण (अन्त पुर के लिए उपयोगी)

कौटिल्य ने उपर्युकत चारो प्रकार के द्रोणो का विभाजन साढ बारह पल के अतर से किया है। परमार कालीन पार–नारायण शिलालेख के सम्पादक विश्वेश्वरनाथ शास्त्री ने द्रोण का वजन 32 सेन आका है।[143]

खारी – आबू शासक प्रताप सिह के पारनारायण शिलालेख मे खारी का उललेख मिलता है।[144] कौटिल्य के अनुसार एक खारी का वजन सोलह द्रोण के बराबर होता था। परन्तु उपर्युक्त चार प्रकार के द्रोणो मे यहॉ उन्होंने जिस द्रोण कस सकेत किया है इसका स्पष्टीकरण नही है। बानेर्ट महोदय ने एक खारी का वजन चार द्रोण के बराबर माना है।[145] उपर्युक्त पारनारायण लेख के सम्पादक प० विश्वेश्वरनाथ शास्त्री ने खारी को 36 सेर वजन का बाट माना गया है।[146]

कुडव – तत्लकालीन अभिलेखो मे कुडव का उल्लेख मिलता है।[147] जो बारह मुट्ठी का अन्न नापने वाला एक पात्र होता था।[148]

से – यह भी एक प्रकार का बाट था जिसका उपयोग प्राय. अन्न तौलने के लिए ही किया जाता था।[149] पंडित रामकरण के अनुसार ˉसे 15 सेर वजन का एक बाट था।[150] परन्तु भडारकर महोदय ने इसका वजन चार माणा आका है।[151]

माणी[152] – इसका भी उपयोग सभवत अन्न मापने के लिए ही किया जाता था। यह आठ पल वजन वाला एक बाट था।[152] परन्तु श्रीधर के अनुसार एक माणी का वजन चार हारी के बराबर माना जाता था।[153]

हारक, वाप, मूटक – अर्घुणा शिलालेख मे हारक, वाप और मूटक नामक बाटो का उल्लेख जौ तौलने के सन्दर्भ मे मिलता है।[154] किन्तु हारक और वाप के वजन के बारे मे विशेष विवरण अप्राप्त होने के कारण कुछ कहना कठिन है। मूटक से जौ के अतिरिक्त नमक भी तौला जाता था।[155]

भरक – नामक बाट नारियल, गुड, मजील, सूत और कपारा तौलने के लिए उपयोग मे लाया जाता था।[156] प्राकृत कोश मे इस बाट का भर के नाम से उल्लेख मिलता है। जिसका अर्थ "बोझ" माना गया है।[157]

मानक – अर्घुणा शिलालेख मे नमक तौलने के सन्दर्भ मे इस बाट का उल्लेख मिलता है।[158] डॉ0 गागुली के अनुसार यह मानक आधुनिक मन (40 सेर) के बराबर होता था।[159] डॉ0 भण्डारकार के अनुसार[160] –

1 पैल = 1 पाव

4 पैल = 1 पैली = (1 सेर)

5 पैली = 1 माशा = (5 सेर)

4 माणा = 1 से = (20 सेर)

2 से = 1 मन = (40 सेर)

श्री धरकृत गणितसार[161] मे भी कुछ सूची मिलती है।

तदनुसार –

1 पावल = 1 (सवा सेर)

4 पावल = 1 पाली = (सवा सेर)

4 पाली = 1 मणा = (5 सेर)

4 मणा = 1 से = (20 सेर)

12 मणा = 1 पदक = (60 सेर = 1 मन 20 सेर)

4 पदक = 1 हारी = (240 सेर = 6 मन)

4 हारी = 1 माणी = (24 मन)

गणितसार मे वर्णित यह बाट व्यवस्था उस समय मालवा मे प्रचलित था क्योकि इस ग्रन्थ के टीकाकार ने कहा है कि यह बाट व्यवस्था कन्नौज, मालवा, और गुजरात मे पायी जाती है।[162]

उपर्युक्त भडारकर और श्रीधर के विवरण तालिका मे कोष्टावृत्त मन, सेर आदि आधुनिक बाटो का सकेत अलग से किया गया है। इस सकेत का आधार गागुली ने एक मन – 40 सेर, और भडारकर ने अपनी तालिका मे 2 से – 1 मन का निर्देश किया है। इस प्रकार इस आधार को मान लेने पर परमारकालीन बाटों का आधुनिक माप स्पष्ट हो जाता है ।

घ. कर व्यवस्था

पुराकाल मे राजस्व का क्षेत्र आज के राजस्व की तरह व्यापक नही था, परन्तु प्रशासनिक व्यय वहन के लिए राज्य कातिपय आर्थिक आय के स्त्रोतो को अपनी नीति के द्वारा निर्धारित करता था। इसे ही एक शब्द ने राजस्व के नाम से कहा जाता है। परमार शासक भेज ने कहा है कि राजकीय कोष ने कहा है कि राजकीय कोष राजा की आत्मा है, वही राजा का शरीर है और वही वास्तविक शासक भी है। धर्म की उन्नति और देश की रक्षा उसी पर निर्भर करती है। धर्म सुख और भृत्यो के पालन तथा आपत्तियो को दूर करने के लिए कोष की अत्यधिक आवश्यकता होती है धन से ही कुल सरक्षण और धर्म की वृद्धि होती है।[163] राज्य की आय के तीन मुख्य स्त्रोत थे– राजकीय कर, अर्थदड और उपहार आदि।

राजकीय कर — कर की विविधता की ही तरह इस सम्बन्ध मे विद्वानो के मतो की भी विविधाताए है। करो एव कर निर्धारण की नीति का एक स्वतत्र इतिहास है जो एक अतिरिक्त विषय है। कर शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख उत्तरवैदिक काल मे भूमिकर के रूप मे मिलता है।[164]

परमार अभिलेखो मे भाग भोगकर शब्द का उल्लेख मिलता है।[165] फलीट के अनुसार भागभेग को मनोरजन कर के नाम से अभिहित किया जाना चाहिए।[166] परन्तु कुछ विद्वानो ने इसे एक स्वतत्र कर न मानकर भाग, भोग और कर नामक तीन वर्गो मे विभक्त किया है।[167]

भाग — घोषाल, अल्टेकर, एव कीलहार्न महोदय के अनुसार अन्न के रूप मे राजा को दिये जाने वाले उपज के अश को भाग कहते थे।[168] यह दूसरी बात है कि राज्य को दिये जाने वाले इस अन्न का अश विभाजन किस अनुपात मे हो। भिन्न–भिन्न समयो मे इस कर की मात्रा भिन्न–भिन्न नही है। इतिहास की गति के साथ–साथ आनुपातिक अश विभाजन मे अनेक भिन्नताये आई या अन्न प्राकृतिक साधनो के आधार पर भिन्न–भिन्न अशो का आनुपातिक विभाजन होता रहा हो। धर्मशास्त्रो के अनुसार उपज का 1/4 से 1/12 हिस्सा राजा को कर के रूप मे देय होता था।[169] शुक्र ने कहा है कि नदी द्वारा सिचित भूमि की उपज का 1/2, तालाब और कुओ के जल से सीची जाने वाली भूमि का 1/4 और असर तथ पहाडी भूमि की उपज का 1/6 भाग राज्य को कर के रूप मे दिया जाता था।[170] सोमेश्वर के अनुसार उपज का 1/6, 1/8 और 1/12 भाग अन्न कर के रूप मे देय होता था।[171] सोमेश्वर के अनुसार उपज का 1/6, 1/8 और 1/12 भाग अन्न कर के रूप में देय होता था।[172] सम्भवत ये भिन्नताये उत्पादन एव सिचाई के श्रम को ध्यान मे रखकर अपनायी गयी थी। पाल शासक धर्मपाल के एक लेख मे इस कर को वसूल करने वाले अधिकारी को षष्ठाधिकृत कहा गया है।[173] "षष्ठाशवृतेरपिधर्म एषा"[174] जैसे कथनो से तथा

ऊपर के विवरणो मे 1/6 अनुपात वाले कर के सर्वनिष्ठ होने से ऐसा प्रतीत होता है कि परमार प्रशासन मे भी उत्पत्ति का 1/6 अश मे ही कर के रूप मे राजा को देय रहा होगा।

भोग – यह कर का दूसरा वर्ग है जो कि समयानुसार फल, फूल, लकडी आदि वस्तुओ के रूप मे प्रतिदिन वसूल किया जाता था।175 इसकी वसूली के लिए स्थानीय अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। जो वस्तुओ के रूप मे प्रतिदिन कर वसूल करते थे।[176] आर0 के0 दीक्षित[177] और ए0 के0 मजूमदार के अनुसार भोग कर आठ प्रकार का होता था।[178] – (1) निधि (खजाना), (2) निक्षेप (भूमि मे रखा हुआ धरोहर) (3) पाषाण (खनिज), (4) सिद्ध (उपजाऊ भूमि), (5) साध्य (अति परिश्रम से उत्पन्न की गयी उपज), (6) जल (जलाशय, कुण्ड, बावली आदि) (7) अक्षिणी (वर्तमाआमदनी) और (8) आगामी (भविष्य मे प्राप्त होने वाला धन)। इन अष्ट भोगो का उल्लेख स्मृतियो मे भी मिलता है।[179] जहॉ तक परमार शासको का सम्बन्ध है निधि, निक्षेप और सिद्ध नामक तीन प्रकार के भोग करो का उल्लेख मिलता है।[180] सम्भवत परमार प्रशासन मे उपर्युक्त आठो प्रकार रहे हो, किन्तु परिस्थिति विशेष के कारण उनमे से केवल तीन का ही निर्देश किया जा सका हो। या उस समय इन तीनो का ही प्रचलन रहा हो।

कर – राज्याश का तीसरा वर्ग कर के नाम से रूड था। आर0 के0 दीक्षित के अनुसार स्थानीय कर को ही कर कहा जाता था, किन्तु इस मत की ग्राह्यता के विषय में साधारणतया कुछ कहना कठिन है।181 लक्ष्मी धर के अनुसार कृषको से धन की जो निश्चित राशि वसूल की जाती थी उसे कर कहा जाता था।[182] हेमचन्द्र के अनुसार कृषको से धन की जो निश्चित राशि वसूल की जाती थी उसे कर कहा जाता था।[183] वास्तविक स्थिति जो भी हो यह तो कहा ही जा सकता है कि करो की विविधता को वर्ग विभाजन की दृष्टि से देखने पर कर एक विशेष विभाजन सा प्रतीत होता है। जहॉ तक

परमार अभिलेखो का सम्बन्ध है कर शब्द का कर के रूप मे स्वतत्र अभिलेख अप्राप्त है। इसका प्रयोग केवल हिरण्य–भाग भोग आदि शब्दो के साथ ही मिलता है।[184]

हिरण्यकर – परमार अभिलेखो मे हिरण्यकर का उल्लेख मिलता है।[185] हिरण्य का अर्थ होता है – सोना, किन्तु हिरण्यकर के अर्थ के बारे मे पर्याप्त मतभेद दृष्टिगोचर होता है। वेणी प्रसाद, आर0 डी0 बनर्जी, और पी0 नियोगी क – अनुसार सोने आदि की खानो से लिए जाने वाले कर को ही हिरण्यकर कहते थे।[186] एन0सी0 बन्दोपाध्याय के अनुसार लोगो की एकत्रित सम्पत्ति पर वार्षिक कर के रूप मे मे दिये जाने वाले कर को हिरण्य, दूसरे शब्दो मे आयकर कहा जाता था।[187] किन्तु यू0 एन0 घोषाल के अनुसार विशेष प्रकार की उपजो पर नकद पैसो के रूप मे दिया जाने वाला कर ही हिरण्यकर कहलाता था।[188]

किन्तु परमार शासको के शासनधिकृत क्षेत्रो मे सोने की खानों का कोई स्पष्ट परिचय नही मिलता। अत यह सभावना करना अनुपपन्न होगा कि साने की खानो से मिलने वाले कर को हिरण्यकर कहा जाता था। एकत्रित सम्पत्ति के ऊपर या उपज विशेष के ऊपर अथवा अन्य वस्तुओ के ऊपर कर के रूप मे देय धन को भी हिरण्य कहना असगत प्रतीत होता है। क्योकि यदि उपर्युक्त अर्थों को दष्टि में रखते हुए इसके लिए (इस कर के लिए) किसी शब्द का व्यवहार करना होता तो कोई आवश्यकता नही थी कि उसे हिरण्य ही नाम दिया जाय। हिरण्य का अर्थ होता है सोना, और हिरण्यकर नाम देने से ऐसा प्रतीत होता है कि सोने से सम्बन्धित व्यवसाय पर लगाया जाने वाला कर ही हिरण्यकर नाम से अभिहित किया जाता था।

उपरिकर – डॉ घोषाल के अनुसार भूमि को अस्थायी रूप से जोतने वालो से लिया जाने वाला कर ही उपरिकर था।[189] फलीट हानले और कीलहार्न महोदय के अनुसार भी दूसरे की भूमि पर कृषि करने वाले लोगों से यह कर

लिया जाता था।[190] परमार अभिलेखो मे इसका उल्लेख मिलता है।[191] जिससे यह प्रतीत होता है कि अन्य अनेक राज्य की तरह मालवा मे भी यह कर लागू था।

विक्रीकर – बाजार मे होने वाली आय का यह एक मुख्य अग था। बिकने वाली वस्तुओ के ऊपर एक निश्चित कर राज्य को देय होता था। जो वस्तु और द्रव्य दोनो रूपो मे वसूल किया जाता था। इसे वसूल करने का कार्य मडपिका नामक सस्था करती थी। कही–कही इस सस्था के लिए वणिक मडपिका शब्द का उल्लेख मिलता है।[192]

इस सस्था का प्रधान कर्मचारी होता था।[193] बागड के परमार शासक चामुडराज के एक शिलालेख से बाजार मे बिकने वाली अनेक वस्तुओ पर लगाये जाने वाले करो की दरो के निम्नलिखित विवरण मिलता है[194] –

बिक्री की वस्तु			कर मात्रा	
सख्या	वस्तु	मात्रा	रूप	मात्रा
1	नारियल	2	3	4
2	नमक	एक भरक	नारियल	एक
3	सुपाडी	एक हजार	सुपाडी	एकृ
4	मक्खन, तिल का तेल	एक घटक	मक्खन, तिल का तेल	एक पलिका
5	सूत (वस्त्र)	एक कोटिक	रूपक	डेढ
6	फूल एव कलियो का गुच्छा	एक जाल	फूल एव कलियो का गुच्छा	दो पूलक
7	सोने, चादी की छड	एक लगडा	सोने चादी के छड	दो गत्ता
8	तेल	एक कर्ष	तेल	एक पाणक
9	भूसा	एक बोझ	वृषविशोपक	एक
10	ईख	एक गट्ठर	द्रम	एक
11	अनाज	बीस बोझ	अनाज	एक मारक
12	अनाज	एक मारक	अनाज	एक मारक
13	मदिरा	एक बुम्बुक	रूपक	चार

ये कर प्रत्येक मास वसूल किये जाते थे। विक्री की वस्तुओ के अतिरिक्त व्यापारिक सस्थाओ से भी कर वसूल किये जाते थे। अर्धुणा शिलालेख से ज्ञात होता है कि प्रत्येक बर्तन व्यवसायी (ठठेरा) एव व्यापारिक सस्था एक–एक द्रम कर राजा को देती थी।[195]

कल्याण धन – महाकुमार उदयवर्मा के गुवाडाघट्ट ताम्र पत्र मे कल्याण धन नामक कर का उल्लेख मिलता है।[196] डॉ0 बार्नेट के अनुसार यह वैवाहिक कर होता था।[197] डॉ0 लल्लनजी गोपाल ने शुभ अवसरो पर प्रजा से वसूल किये जाने वाले कर को कल्याण धन माना है।[198]

द्यूतकर – नगर मे जुआ खेलने वालो के लिए अलग स्थान निश्चित होता था। जिससे कर के रूप मे राजा को भी धन प्राप्त होता था। अर्धुणा लेख के अनुसार प्रत्येक द्यूतगृह से दो–दो रूपक राजा को कर स्वरूप दिये जाते थे।[199]

भवन कर – राज्य मे स्थित प्रत्येक गृह से एक–एक द्रम कर स्वरूप लिया जाता था।[200] इसकी चर्चा अर्जुन वर्मा के एक लेख के भी मिलती है। आधुनिक शब्दावली में इसे स्म्पत्ति कर कहा जा सकता है।

निर्यात कर – निर्यात के सामानो पर भी कर लिया जाता था जो राज्य की आय का एक प्रमुख साधन था।[201]

जल कर – अर्जुन वर्मा के भोपाल शिलालेख मे इस कर का उल्लेख मिलता है।[202] सम्भवत नदी से पार उतरने वाले व्यापारियो से यह कर वसूल किया जाता था। बागड के परमार शासक चमुडराज के समय प्रत्येक रहट पर एक हाटक कर राजा को देय होता था।[203] इस कर को वसूल करने वाले कर्मचारी को घट्टपति के नाम से सबोधित किया जाता था।[204]

मार्ग कर – इस कर को कभी–कभी मार्ग दाय भी कहा जाता था।[205] जयसिह के पेन्हरा शिलालेख के अनुसार सडक से गुजरने वाले प्रत्येक बैल के लिए एक विशोपक मुद्रा कर के रूप मे देनी पडती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि एक बैल एक बार जितना सामान ढो सकता हो, उसी हिसाब से सडक से ले जाये जाने वाले सामानो पर कर लगता था।[206] यह कर वसूलने वाला कर्मचारी मार्गदायी कहा जाता था।[207] शेरगढ शिलालेख के अनुसार मार्गदायी कौप्तिकवरग ने सोमनाथ मदिर के लिए धूप निमित्त मार्गदाय से पाच वृषभ (मुदा) दान की थी।[208]

चोपलिका – आबू के परमार शासक प्रतापसिह के पाटनारायण शिलालेख के अनुसार राजसूत्रगग और करमसिह ने मडौली गॉव के मदिर का खर्च चलाने के लिए चोपालिका कर दिया था।[209]

उपर्युक्त कर सम्बन्धी इन विवरणो से ऐसा प्रतीत होता है कि शासक वर्ग शासितो से तीन प्रकार के अश (कर) प्राप्त करता था। प्रथम था राज्य मे होने वाले उत्पादन का एक निश्चित अश, जिसके अंतर्गत कृषि कर आते थे। इन्हे ही राजा का अश या भाग भी कहा जाता था। राज्याश का दूसरा प्रकार शासित वर्गों की मनोरजन की वस्तुओ, शुभ कार्य के अवसरो अथवा आरामदायक और विलासिता सम्बन्धी वस्तुओ से प्राप्त होता था। इन्से प्राप्त राज्याश को ही भोग कहा जा सकता है। इस वर्ग के अंतर्गत फल–फूल आदि पर लगाये जाने वाली उत्पादन सम्बन्धी कर कलयाण धन् और द्यूतकर सम्मिलित थे। करो का तीसरा वर्ग वह था जो प्रजा की सुख–सुविधा की दृष्टि मे किये गये कार्यों के बदले प्रजा से वसूल किया जाता था। उसे ही कर के नाम से सबोधित किया जाता था। इसके अतर्गत मार्गदाय और जलकर आदि गिने जा सकते है।

अर्थ दड – राजकीय कोष की वृद्धि का दूसरा साधन अभियुक्तो पर लगाये जाने वाले अर्थ दडो से बनता था। समकालिक साक्ष्यो मे इस प्रकार के दण्ड को दशापराध दण्ड के नाम से सबोधित किया गया है।[210]

आय के अन्य साधन

स्वामीहीन सम्पत्ति – सामान्यतया प्रजा का सरक्षण राजा पिता के रूप मे या स्वामी के रूप मे करता था। जीवन यापन की सुविधाओ से पूर्णत हीन व्यक्तियो को जीवन निर्वाह की सुविधाए प्रदान की जाती थी। दूसरी और स्वामीहीन सम्पत्ति का राजा वैधानिक रूप से अधिकारी होता था। और वह स्म्पत्ति मानी जाती थी। अत राजकीय कोष की वृद्धि का यह भी एक प्रमुख साधन था।

अतत यह भी निर्देश्य है कि वार्षिक या अन्य उत्सवो का आयोजन होने पर सामत एव नगर के प्रतिष्ठित लोग बहुमूल्य वस्तुए उपहार के रूप मे राजा के पास पहुॅचाते थे।[211] राजकीय कर, दड कर एव स्वामीहीन सम्पत्ति के ऊपर अधिकार सम्बन्धी आय के स्रोत्रो को घटाने या बढाने मे शासक वर्ग अवसरानुकूल स्वतंत्र होता था। परन्तु उपहार तो देने वालो की इच्छाओ पर निर्भर रहता था और उसकी मात्रा निश्चित नही होती थी।

पाद टिप्पणी

1 B P Majumdar, P 177

2. EI VOL. XXI, P 49, VOL XIV, P 303, VOL. XXXIII, P 195
ABORI VOL XXXVI, P 313-14, Verses, 53-55
ति०म०, पृ० 59–67।

3 EI VOL XIV, P 308, श्रृ० म०, पृ० 67–68

4 EI VOL XIV, P. 302-3

5 द्रष्टव्य परिच्छेद धार्मिक वस्तुकला।

6 ARASI, 1923-24, P 135

7 JASB. VOL VII, P. 735

8 E I. VOL IX, P 15

9 JASB. VOL. X P. 241

10 JBBRAS. VOL XXIII, P 75

11 I A. VOL. XLV, P 77-80

12 युक्ति०, पृ० 81, श्लो० 16, ति० म०, पृ० 28।

13 अमरकोष, द्वितीय काण्ड, मनुष्यवर्ग, श्लो० 111।

14. कृमि कोष समुद्भूत कौषेयमिति गद्यते।
व्रह्मक्षत्रिय विट्शूद्रा कृमयस्तु चतुर्विद्या
सूक्ष्मा सूक्ष्मौ मृदस्थलो तन्तवस्तु यथाक्रमम।
युक्ति०, पृ० 81–82, श्लो० 19–25।

15. युक्ति०, पृ० 83, श्लो० 32–38।

16. वही, पृ० 83।

17. युक्ति०, पृ० 50, 51, श्लो० 350,354।

18. वही, पृ० 50–51, श्लो० 350, 354।

19. वही०, पृ० 51–52, श्लो० 356–76।

20 युक्ति०, पृ० 51–52, श्लो० 356–76।

21 युक्ति०, पृ० 56, श्लो० 402।

22 वही, पृ0 54–55, श्लो0, 383–92।

23 वही, पृ0 54–55, श्लो0 383, 92।

24 युक्ति0, पृ0 55, श्लो0 393।

25 वही, पृ0 59।

26 वही, पृ0 217, श्लो0 23, 24।

27. युक्ति0, पृ0 217, श्लो0 27–28।

28 वही, पृ0 219, श्लो0 48।

29 युक्ति, पृ0 221।

30 वही, पृ0 219, श्लो0 49, भोज ने अन्यत्र इन लकडियो का बज्रवारण के नाम से उल्लेख किया है।

युक्ति, पृ0 65, श्लो0 474।

31 लघुयत् कोमल काष्ठ सुघट ब्रह्मजाति तत्।
दृढाङण्ग लधुयत् काष्ठ मघटं क्षत्र जाति तत्।
कोमल युद्ध यत् काष्ठ शूद्र जाति तदृच्यतौ।
दृढसङ्ण्ग गुरू यत् काष्ठ शूद्रजाति तदुच्तो।

युक्ि0 पृ0 224, श्लो 84, 85।

32. वही, पृ0 224, श्लो0 86।

33. युक्ति, पृ0 225।

34. वही, पृ0 23।

35. वही, पृ0 225, श्लो0 94।

36. युक्ति, पृ0 23।

37. युक्ति0, पृ0 225।

38. युक्ति, पृ0 225, श्लो0 100।

39. वही, पृ0 226।

40. वही, पृ0 226, श्लो0 7।

41 युक्ति, पृ0 227, श्लो0 9–10।

42 युक्ति, पृ0 227, श्लो0 11, 12।

43 वही, पृ0 228, श्लो0 20–23।

44. युक्ति, पृ0 78–79।

45 वितस्ति सम्मितौ भव्यौ रसाढ्य सुखवर्द्धन ।
भव्य सुखौ जय क्षेमश्च तुरगु लिवर्द्धनात् ।।
आयाम परिणाहाम्या चतुरङ्ण्गुलि सम्मित ।
सर्वेशा भुपयुज्येत विजयोनाम दर्पण ।।

युक्ति0, पृ0 80, श्लो0 6–8।

46 युक्ति, पृ0 80, श्लो0 8, 9।

47. वही0, पृ0 79, श्लो0 93।

48 युक्ति, पृ0 139, श्लो0 28।

49 वही, पृ0 171, श्लो0 33।

50 द्रष्टव्य, परिच्छेद (शस्त्रास्त्र)।

51. द्रष्टव्य, परिच्छेद (वस्त्राभूषण)।

52. EI VOL. XIV, P. 302-3

53. युक्ति, पृ0 97, श्लो0 48।

54 वही, पृ0 105, श्लो0 22–25।

55. वही, पृ0 107–138।

56. युक्ति, पृ0 79।

57. वही, पृ0 76–79।

59. ति0 म0, पृ0 198।

59. वही, पृ0 54।

60. स0सू0, दसवा, अट्ठारहवा अध्याय।

61. EI. VOL XIX, P. 76.

62 Ibid, P. 76

63. दृष्टव्य, इसी परिच्छेद मे, पृ0 157 "राजय की आय के साधन"।

64. श्रृ0 म0, पृ028–29, ति0म0, पृ0 42, 103।

65 P. Nıyogı, P 134.

66. Ibıd, P 134

67. विशेष विवरण के लिए दृष्टव्य –

History of the Paramara Dynasty, P 209, 219, 223

68 युक्ति, पृ0 170, श्लो0 24।

69 ति0म0, , पृ0 46, 239।

70 EI VOL XIV, P 309-10

71. युक्ति0, पृ0 170, श्लो0 24, ति0म0, पृ0 46, 239।

72. ति0म0, पृ0 117।

73 EI. VOL. XXIII, P 137

74. ति0म0, पृ0 106।

75 P C Tawney, P 8, 104, 121, 163, 167, 183-84

76 द्रव्यपरीक्षा, श्लो0 61।

77 L. Gopal, P. 199

78. खरतरगच्छवहदगुर्वावली, पृ0 13, IHQ VOL XXVI P 224

79. Lekhapaddhatı, P 114

80. पुरातन प्रबन्ध सग्रह, पृ0 53,

IHQ VOL. XXVI, P 224, F.N. 4, JNSI VOL XVII, PART II, P 64

81. Carm. Lectures, P. 207

82. EI. VOL. XIV, P 302-3, VOL XIX, P. 69, IA.VOL. XLV, P. 77, Bom Gaz. Vol. I, Part I, P 474

83 Carm. Lectures, P. 207.

84 P. Nıyogi, P 260.

85 AK Majumdar, P. 273, JNSI. VOL. XVII, P 77, The Rashtrakutas and Theır Tımes, P 364

86 Carm. Lectures, P 207

87 L Gopal, P 193-94, JNSI VOL II, P 25,

88 Bibliography of Indian Coins, Part I, P 96

89 JNSI, VOL XIV, P 144

90 E I VOL XIV P 302-3

91 L Gopal, P 206

92 The History of the Gurjara Partihara, P 136

93 JNSI. VOL VII, P 144

94 History of the Parmara Dynasty, P 243

95 D Sharma, P 319

96 P C Tawney, P.8, 104, 121, 163, 167, 183-4

97. Foundation of the Muslim Rule in India, P 264

98 JNSI VOL. II, P 1-14

99. युक्ति, पृ0 95, श्लो0 27—34 ।

100 L. GOPAL, P 207-8

101 JNSI. VOL II, P 1-14

102. EI. VOL XIX, P 117.

103. Ibid, P. 138-39.

104. Ibid, P. 138-39.

105 Ibid VOL. XXI, P. 48, LINE 31

106. D Sharma, P. 319.

107. CII. VOL IV, P. 189, F.N 7.

108. EI VOL. XIV, P. 302.

109. Ibid, VOL. XXIII, P 140

110 L Gopal, P 205.

111 युक्ति, पृ0 95, ।

112 AK Majumdar, P 272

113 EI VOL XXIII, P 140, LINE 6

114 Ibid VOL. XXIII, P. 138-39, L. Gopal, P. 213.

115 ठक्कुरफेरु अलाउद्दीन की टकसाल का मालिक था।

JNSI VOL X, P 28.

116 द्रव्यपरीक्षा, श्लो0 94–7।

(ı) द्रव्य परीक्षा, श्लो0 98–100।

(ıı) वही, श्लो0 94।

(ııı) वही, श्लो0 94।

(ıv) वही, श्लो0 95।

(v) वही, श्लो0 95।

(vı) वही, श्लो0 96।

(vıı) वही, श्लो0 96।

(vııı) द्रव्य परीक्षा, श्लो0 97।

117 द्रव्य परीक्षा, श्लो0 98–100।

118. रेण्वष्टकेन बालागृ लिक्षास्यादष्अ मिस्तु तै।

भवेद् चूकाष्ट किस्तामिर्यवमध्य तदष्टकात्।।

स0सू0 9/4, समरागणीय भवन निवेश, पृ0 49।

119. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 2/36/20,

120 अष्टाभि सप्तमि षड्मिरड्ण्गुलानि युवौदरै।

ज्येष्ठमध्य कनिष्ठानि तच्चतर्विंशति कर.।।

स0सू0 915,

121. स0सू0, 9/40–47, समरागणीय भवन निवेश, पृ0 51।

122 स0सू0, 9/27–29, समरागणीय भवन निवेश, पृ0 51।

123. IA VOL XIX, P 348, VOL. LVI, P 50, VOL. XLIII, P 193.

IHQ VOL. VIII, P 311

IHQ. VOL. VIII P. 312, IA VOL., XLIII, P 194,

VOL. XIX, P. 349, VOL LVI. P. 51.

124. पाणिनी, अष्टाध्यायी, P Nıyogı, P. 84, F N 25.

125 P Nıyogi, P 85, F N. 28.

126 Cowell, Harsacharita, P 199

127 P Niyogi, P. 83

128 History of Dharmasastra, VOL II, P 146

129 मिताक्षरा, पृ0 2।

130 P Niyogi, P 83

131. IA VOL XIX, P 349, EI VOL XIX P 72, VOL XI, P 182.

132. EI VOL XI, P 182

133 कौटिलीय अर्थशास्त्र, 2/36/20,

134 बोधायन धर्मसूत्र, 3/2/2–4।

135 History of Dharmasastra, VOL III, P 145

136 मिताक्षरा, पृ0 2।

137. P Niyogi, P 97-8

138 स0सू0, 9/27।

139. युक्ति पृ0 23।

140 वही, पृ0 23, श्लो0 148–51।

141. स0सू0, 9/40।

142. EI. VOL. XIV, P 302,

143. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 2/35/18, मनु0 8/136,

144 P. Niyogi, P 108.

145 Sukra, II, 775-8

146 EI VOL. XIV, P. 302, Verse 76

147. EI. VOL. XIV. P. 302, Verse 71

148 JASB. VOL. X, P 242

149 EI. VOL. XIV, P 176.

150. Ibid, P. 302

151 Ibid, P. 302.

152 IA. VOL XLV, P. 77, Bom. Gaz, VOL. I, Part I, P 472

153 IA. VOL. XLV, P. 77,

154 मनु० 7/126,

155 कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2/35/19, पृ० 217–18

156 IA. VOL XLV, P 77

157 IA VOL XLV, P 77

158 कौटिलीय अर्थशास्त्र, 2/35/19,

159 Antı quıtıes of Indıa, P 208

160 IA VOL XLV, P 77

151 JASB VOL, VII, P 738,

162 वृहद हिन्दीकोश, पृ० 287,

163 IA VOL XLV, P 79

164 Ibıd VOL XLI, P. 85

165 EI VOL XI, P 41

166 JASB VOL VIII, P 738.

167 वृहद हिन्दीकोश, पृ० 1024,

168 JNSI VOL. VIII, P 138

169 EI. VOL. XIV, P 303, Verse 78-81

170. Ibid, VOL. XIV, P 302 Verse 71.

171 EI VOL. XIV P. 302,

172 पाडूअसद्दमहण्णवौ, पृ० 646,

173 EI. VOL. XIV. P. 302

174 Hıstory of the Parmara Dynasty, P. 243

175 EI. VOL. XI, P. 41

176 JNSI. VOL. VIII, P. 138.

178 Ibıd, P. 148.

179 कोषो महीपतेर्जीवो नतप्राणा कथन्वन।।
द्रव्य हि राजा भूपस्य न शरीर मितिस्थिति।
धर्म्म हेतो सुखार्थाय भृत्याना भरणाय च।
आपदर्धन्ध सरक्ष्य कोष कोषवता सदा।
धनात् कुल प्रभवति धनाधर्म प्रवर्त्तते।
साधनस्य भवेद्धर्म कामाश्चैव कथन्वन।

युक्ति०, पृ० 5।

180 P Niyogi, P 177, F N I

181 I A. VOL. XIX P 348, VOL. XIV, P 160, XVI, P 255
EI VOL XVIII, P 322, VOL IX, P 112, VOL III, P 49
VOL XI, P 183, IHQ VOL VIII, P 312

182 CII, VOL III, P 254, F N 4

183 History of Kanauj, P 348, JUPHS VOL XXIII, P 243
Antiquities of the Chamba State, P 167-69, EI VOL XXIX
P-9, F N 3

184 Hindu Revenue System P 214, 290, The Rashtrakutas and
Their Times, P 214-16, EI VOL VII, P 160.

185 मनु0, 7/130, आपत्तिकाल मे उपज का 1/3 या 1/4 भाग राजा
को कर के रूप मे दिया जाता था। मनु0 10/2।
P Niyogi, P 179, State and Government in Anciant India, P 196

186 Sukra, IV, II. 227-30 (P 148)

187 मानसोल्लास, 2/3/163–64,

188. EI. VOL. IV, P. 243.

189. अभिज्ञान शाकुन्तल, अक 5, श्लो0 4।

190 मनु0, 7/118,
The Rashtrakutas and Their Times, P 214-16
History of Dharmastra VOL II, P. 191

191 L Gopal, P. 32.

192 JUPHS. VOL XXIII, P 243.

193. A.K. Majumdar, P 248,

194 मिताक्षरा, 2134–35,
Hindu Revenue System, P 118-22.

195 JASB, VOL. VII, P 738, EI. VOL IX, P 112, VOL IX,
P 122, IA VOL. XVI, P 255, VOL. XIX, P 353,
JAOS, VOL. VII, P 25-33

196. JUPHS VOL XXIII, P 243, L Gopal, p 37

197 कृ0 क0, गृहस्थकाण्ड, पृ0 255 ।

198 द्वयाश्रय महाकाव्य, तीसरा, 18 ।

199 IA VOL XIX P 348, VOL, XIV, P 160,

200 VOL XVIII, P 3222, VOL XVI, P 255 VOL IX, P 112

201 IA VOL XIX, P 348, VOL XVI, P 255, VOL XIV, P 160
VOL XVIII, P 323, VOL IX, P 112, IHQ VOL VIII,
P 312, JASB VOL VII, P 738

202 State ın Ancıant Indıa, P 302, EI VOL XIV P 324,
330, VOL XV, P 293 P Nıyogı, p 182-83

203 Kautılya, P 139-40

204 EI. VOL VII, P 160 (Payment of Money), VOL VII, P 61-62
(Tax ın Money) Antıqutıes of the Chamba State, P 167-69
(Tax ın cash)

205. Hındu Revenue System, P 62

206 Ibıd, P. 210,

207. CII. VOL III, P 98, F.N I, JASB VOL. LVI, P 128.
A Cultural Hıstory of Assam. P. 81

208. IA VOL XIX, P 348, VOL XIV P 160 VOL. XVI, P 255, EI
VOL XVIII, P. 323, VOL. IX, P 112 VOL XI, P 183
IHQ VOL. VIII P 312

209 EI VOL. XIV, P 302,

210 EI VOL. XIX. P. 69, P Nıyogi P 194

211. EI. VOL. XIV, P. 302-3

212 EI VOL. XIV. P. 302, Verse 74.

213 IA VOL. XVI, P. 255.

214 P Niyogı, P 206

215 L Gopal, P. 65.

216 EI. VOL. XIV, P. 302-3

217 Ibıd, P 309, Verse 75.

218 JAOS, VOL. VII, P 27

219 IA. VOL XLV, P 80

220 JAOS, VOL. VII, P 27

221 EI VOL XIV, P 310

222 CII, VOL IV, Part I, P 142

223 EI VOL XXIII, P 137

224 EI VOL XXI, P 48, Verse 44-5

225 Ibid, VOL XIX, P 73

226 सोमनाथ देवाय चन्दनधूपनिमित्त भाग्गीदाये कौप्टिकवरगेण मार्गादायात् दसा वृषभ 5 आचन्द्रार्क यावत्।

EI VOL XXIII, P 138, 140

227 IA VOL XLV P 78

228 CII, VOL III, P. 189, 218

229 ति0म0, पृ0 57।

उपसंहार

उपसंहार

पूर्व अनुच्छेदो के अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि परमार प्राचीन क्षत्रिय वश के वशिष्ठ गोत्रीय क्षत्रिय है। जिनके लिए पुराणो मे 'ब्रहमक्षत्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्रहमक्षत्र शब्द का प्रयोग उन क्षत्रियो के सन्दर्भ मे किया जाता है जो ब्रहमगुण से युक्त थे अर्थात जिनका सम्बन्ध वैदिक ऋषियो से था। अपने गोत्रोच्चार मे परमार स्वय का वशिष्ठ गोत्रीय मानते है। परमारो की उत्पत्ति आबू पर्वत से ऋषि वशिष्ठ की क्रोधाग्नि क अग्निकुण्ड से हुई। आबू पर्वत से होते हुए परमार मालवा (अवन्ति) आये और यहा परमार उपेन्द्र ने अपने शौर्य से साम्राज्य की स्थापना की। परमारो की मालवा के अलावा 4 अन्य प्रमुख वश शाखाये थी –आबू शाखा, वागड शाखा, जालौर शाखा और भिनमाल शाखा। परमार उपेन्द्र से आरम्भ हुआ परमार राजवश का साम्राज्य महान भोज तक आते–आते एक ऐसे विशाल साम्राज्य मे परिवर्तित हो गया जिसने कैलाश पर्वत से मलयागिरि तक उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक सारी पृथ्वी का भोग किया।

पिछले आठ अध्यायो के विवरणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सभ्यता एव सस्कृति की दृष्टि से परमारयुग का पूर्व मध्यकालीन इतिहास मे एक विशिष्ट महत्व है। प्रशासनिक दृष्टि से इसकी विशेषता थी, कि शासक देवत्व की भावनाओं से ओतप्रोत होते हुये भी स्वतन्त्र और निरकुश नही थे। युवराजो की शिक्षा–दीक्षा की और विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। शासको के अनिवार्य और ऐच्छिक दो प्रकार के कर्त्तव्य होते थे, जिनका वे समुचितरूप से पालन करते थे।

शासन के सुचारू सचालन के लिये मत्रिमडल शासको का एक अविमेघ अग होता था, जिसका सगठन, एव कार्यवाही अपने ढग पर निराली ही थी। मत्रीमडल आधुनिक व्यवस्थापिकाओ की तरह उत्तरदायित्व का वहन सामूहिक रूप से नही करता था, बल्कि मत्रिगण व्यक्तिगत दायित्व और विचारो मे राजकार्य मे राजा को सलाह देते थे। मत्रीमडल के साथ साथ सामतगण भी प्रशासन मे कम सहायक न थे। वे सम्राटो की तरह पूर्ण स्वतन्त्र नही थे। किन्तु आन्तरिक स्वतन्त्रता का माग करते हुये वे सम्राट के प्रति सर्वात्मना अपेन अधिकारो एव कर्तव्यो की श्रृखला मे बधे हुये थे, जिनका वे उचित रूप से उपयोग और पालन करते थे।

सम्पूर्ण साम्राज्य प्रशासनिक दृष्टि से मडल, भोग, विषय, पृथक, प्रतिजागरण और गावो मे विभक्त था जिनके अलग–अलग व्यय स्थापक होते थे। तत्कालीन साहित्य मे मडल, योग ओर विषय के पारस्परिक सम्बन्धों का कोई स्पष्ट उल्लेख तो नही है, परन्तु समकालिक वाक्यो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, कि मडल शब्द का उपयोग आधुनिक प्रान्त, योग को मिला और विषय शब्द का प्रयोग जिला के उपविभागो के लिए होता होगा। दूसरी विशेषता यह थी कि नगर केन्द्रीय या मडलशासन से सम्बद्ध और उपर्युक्त श्रेणीक्रम (मडल, योग, विषय, पथक, प्रतिजागरण और गाव) मे उपनिषद न होकर अपने अधिकार क्षेत्र मे स्वतन्त्र होते थे। भूविस्तार की दृष्टि से नगर प्रशासन को प्रतिजागरण से पहले या बाद दोनो ही स्थानो मे रखा जा सकता है।

सैन्यव्यवस्था प्रशासन का महत्वपूर्ण अग थी। तत्कालीन साहित्यिक साक्ष्यो मे सेना के तीनो अगो– स्थल, बल और नवसेना – का उल्लेख मिलता है, परन्तु व्यवहार रूप मे केवल स्थल सेना का ही प्रयोग था। परमारो के शासन क्षेत्र मे नर्मदा सबसे बडी नदी थी, किन्तु उनमे रखी जानेवाली किसी नौसेना का कही कोई उल्लेख नही मिलता। इसके अतिरिक्त परमार साम्राज्य की सीमा किसी भी दिशा मे समुद्र तक विस्तृत नही थी। जलसेना के सम्बन्ध मे जो विवरण मिलते है वे केवल सैद्धान्तिक है। इसी प्रकार मौज द्वारा वर्णित नवसेना सम्बन्धित विवरण भी केवल विवरणमात्र ही है, उसका प्रायोग नही था भोज ने स्वय अपने इस विवरण के अन्त मे कहा है कि सर्वसाधारण को शुलभ न हो सकने के कारण ही यान (वायुयान) की मशीनो की बनावट के ढग को गुप्त रखा गया है।

सेना के शस्त्रास्त्रो का भी बडे ही सूक्ष्म ढग का विवेचना मिलता है। विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रो को, उनके गुणदोषो की सूक्ष्मातिसूक्ष्म परीक्षण करके ही, उपयोग मे लाया जाता था। सैन्य प्रयाण के समय शुभ नक्षत्र, तिथि आदि का विचार किया जाता था परन्तु अचानक अथवा असमय में प्रस्थान की आवश्यकता उपस्थित हो जाने पर शुभ शकुनो का विचार नही किया जाता था। इस संदर्भ में इस विशेषता की और भी ध्यान देना चाहिए कि विजय प्राप्ति के लिये अन्य साधनो के अतिरिक्त युद्धभूमि म तन्त्र मन्त्रो का भी उपयोग किया जाता था।

इस समय के समाज मे कुछ परिवर्तन परिलक्षित होते है । कायस्थो की गणना परमारकाल से पूर्व किसी जाति के रूप मे नही की जाती थी, बल्कि अपने लेखनकार्य के अनुसार ही ये इस नाम (कायस्थ) से पुकारे जाते थे, परन्तु इस समय कायस्थो की एक अलग जाति ही बन गई। इस कल मे उन्हे समानजनक स्थिति प्राप्त हुई। इनमे अनेक जातियो और उपजातियॉ हो गई थी। शूद्र कई वर्गो मे विभक्त हो गये थे जिनमे एक वर्ग अन्त्यज के नाम से विख्यात थी। वह गाव अथवा नगर के बाहरी हिस्से मे निवास करता था। एक अन्य विशेषता यह थी कि जहॉ प्राचीन स्मृतियो मे स्त्रियो के लिये वेदाध्ययन का निषेध किया गया है, वहॉ परमारकाल मे स्त्रियो को अन्य विद्याओ के साथ वेदाध्ययन का भी अधिकार प्राप्त था।

स्त्रियो की सम्पत्ति के अधिकार के बारे मे परमार साक्ष्य विस्तृत व्याख्या देते है। पुत्रियो का पुत्रो की तुलना मे चौथाई सम्पत्ति एव विधवा के आजीवन भरणपोषण का दायित्व उसके पति की सम्पत्ति पाने वाले व्यक्ति पर अनिवार्यत था।

जीविकोपार्जन में लोग स्थानीय उद्योग धन्धों एव वाणिज्य के साथ–साथ विदेशी व्यापार भी करते थे। इस दृष्टि से भडौच का बन्दगाह बडा ही महत्वपूर्ण स्थान था। मगध, सौराष्ट्र, कलिग, नेपाल और वाराणसी से विभिन्न वस्तुओ का आयात निर्यात होता था। तत्कालीन व्यवसायिको की यह विशेषता थी कि बनावट की दृष्टि से बारिकियो की ओर विशेषरूप से ध्यान देते थे। शीशे के व्यवसायी दर्पण आदि अन्य

उपकरणो के अतिरिक्त शीशे की कघियो का भी निर्माण करते थे, जो इस युग की अपनी एक विशेषता थी। विनिमय मे चार प्रकार की – स्वर्ण, रजत, ताम्र और मिश्रित–धातु की मुद्राओ का प्रचलन था। मिश्रित मुद्रा मे धातुओ की मिलावट आनुपालिक ढग से की जातीथी। इस समय नकद पैसो के अतिरिक्त वस्तुओ को भी कर के रूप मे वसूल किया जाता था।

धार्मिक दृष्टि से परमारयुग की सबसे बडी विशिष्टता यह थी कि समाज मे किसी एक देवता की पूजा प्रधान न होकर अनेक सम्प्रदायो एव देवताओ की पूजाये प्रचलित थी। शिव, विष्णु, शक्ति (दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, इष्टदेवी) सूर्य, गणेश, हनुमान आदि देवी देवताओ की पूजा उपासनाये होती थी। देवो की पूजा हेतु मदिरो का निर्माण एव जीर्णोद्धार कराया जाता था। अनेक परमार शासको ने विभिन्न मन्दिरो के खर्चों को चलाने की व्यवस्थाये की थी। जैनधर्म इस समय उत्तरी भारत मे पतनोन्मुख प्राय हो चुका था। परन्तु परमार शासकों की छत्रछाया मे वह उन्नति के पथ पर अग्रसरित हुआ। देवताओ की उपासना के अतिरिक्त, अनेक प्रकार के व्रत एव उत्सव भी मनाये जाते थे। इस समय के समाज की सबसे बडी विशेषता यह थी कि शासक एव प्रजा दोनो ही वर्ग अपने व्यक्तिगत धर्मों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायो एव धर्मों की भी प्रश्रयात्मक महत्व की दृष्टि से देखते थे।

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र मे प्रचुर उन्नति हुई। काव्य रचना के क्षेत्र मे काव्य के गुण दोषो रसो एव अलंकारों पर विशेष ध्यान

दिया जाता था। विन्दुमती श्लोको की रचनाये भी प्रचलित थी, जिनमे व्यजन या स्वर वर्णों के स्थान पर विन्दुओ का प्रयोग होता था और मात्राये व्यजन या स्वर वर्णों के स्थान पर विन्दुओ का प्रयोग होता था और मात्राये ज्यो की त्यो रहती थी भोज स्वय अलकार शास्त्र का पण्डित, पारखी और समालोचक था। इतना ही नही, साहित्य गोष्ठियो एव शास्त्रार्थों के माध्यम से भी शिक्षा को विकसित किया जाता था एव वाद–विवाद प्रतियोगिता एव विजेताओ को पुरस्कृत भी किया जाता था।

वास्तुकला के क्षेत्र मे परमारो की विशेष देन थी। धार्मिक दृष्टिकोण से तौ एक और चाहर दीवारियो द्वारमडप, सभामडप, उतुगाशिखर, गर्भगृह ओर उपगृह से युक्त सुन्दर–सुन्दर नक्काशीदार देवमदिरो का निर्माण होता था। दूसरी और लौकिक दृष्टि से नगरो, झीलो एव भवनो आदि के निवेशन तथा निर्माण प्रमुख थे। नगरनिवेशन मे सुरक्षात्मक दृष्टि प्रमुख होती थी। उसमे परिखा, दृढाप्र, प्रकार, और गोपुर विशेषरूप से प्रकल्पित किये जाते थे। भवननिर्माण के क्षेत्र मे इस समय दीवारो की चुनाई व्यवस्था का विशिष्ट स्थान है। दीवारों की चुनाई ठीक और विशिष्ट प्रकार की हो इस हेतु तत्सम्बन्धी नियमो की एक सहिता (Code) ही तैयार की गई थी। विभिन्न प्रकार की पुतलियो से युक्त गोल, चौकोर अष्टकोण और पेडाशात्री खम्भो पर अवलम्बित, खिडकियो और झरोखो से युक्त भवनो का निर्माण किया जाता था।

इस युग में राजपूत मूर्तिकला विकास के अपने चरमोत्कर्ष पर थी। विभिन्न प्रकार के अलकारो से अलकृत पत्थरो एव मिट्‌टी की

प्रतिमाओ का निर्माण किया जाता था। इस युग की यह विशेषता थी कि प्रतिमाओ के विभिन्न अगो के निर्माण मे अगविशेषो की लम्बाई, चौडाई (अगमाप) की और सूक्ष्मरूप से ध्यान दिया जाता था। उपरोक्त विवरणो से स्पष्ट है कि परमार–युगीन शासन प्रबन्ध, सभ्यता एव सस्कृति अपनी निजी व्यक्तित्व के कारण विशिष्ट है।

सक्षेप मे– परमार राजवश भारतवर्ष प्राचीन काल के बाद अतिम हिन्दू राजवशो मे आदरणीय स्थान रखता है जिसने मालवा (अवन्ति), गुजरात, दक्षिण राजस्थान एव भारतवर्ष का हृदय कहे जाने वाले मध्य भारत पर लगभग चार सदी तक शासन करते हुए सम्पूर्ण मध्य कालीन भारत को गौरवान्वित किया। अपनी उन्नति की चरम अवस्था मे परमार भोज ने उत्तर भारत और दक्षिणापथ की शायद ही कोई सत्ता रही हो जिसे पद दलित न किया हो। अपनी सस्कृति उपलब्धियो के कारण यदि परमारकाल को पूर्व मध्य कालीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण काल कहा जाय तो यह अतिश्योक्ति नही अपितु सर्वदा सत्य है।

वास्तव में परमार राजवश वह प्रकाशपुज है जो सदियो तक भारतीय सभ्यता एव सस्कृतिको प्रकाशित करता रहेगा।

❑❑

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सदर्भ ग्रन्थ – सूची

अभिलेख

स्टैन कोनो – कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम 2, कलकत्ता

गिरजाशकर वल्लभजी – हिस्टोरिकल इन्स्क्रिप्शन्स् आफ गुजरात, 1–3, बम्बई

श्रीराम गोयल – भारतीय अभिलेख सग्रह, 1 जयपुर, 1980

पूर्ण चन्द्र नाहर – जैन लेख सग्रह, 1–3 कलकत्ता, 1918

आर, नोली, – नेपालीज इन्स्क्रिप्शन्स् इन दि गुप्त कैरेकटर्स, रोम 1956

विजयमूर्ति – जैन शिलालेख सग्रह, 3

दुर्गा प्रसाद काशीनाथ पाण्डुरग – प्राचीन लेख माला , 1 बम्बई 1982

एफ0जे0 फ्लीट – कार्पस इन्स्क्रिप्शन्स् इण्डिकेरम, 3 वाराणसी, 1963

बी0बी0 मिराशी, – कार्पस इन्स्क्रिप्शन्स् इण्डिकेरम, दो भाग, वाराणसी, 1964

मुनिजयन्तविजय – अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह, सौराष्ट्र, 1948

डी0सी0 सरकार – सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स् बीयरिंग आन इण्डियन हिस्टरी एण्ड सिविलिजेशन, कलकत्ता, द्वितीय सस्करण।, 1965

साहित्य – जी0ओ0एस0 1927,

अर्थशास्त्र – ले0कौटिल्य (कागले द्वारा सम्पादित और अनुदित) बम्बई, 1960,

उदयसुन्दरीकथा – जी0ओ0एस0 बडौदा, 1920

उपमितिभवप्रपचकथा – ले0 सिद्वर्षि, सम्पा0 एच0 जेकोबी, कलकत्ता, 1899–1914

कर्पूरमजरी – ले0 राजशेखर, अनु0 लेनमान, केम्ब्रिज, 1901

कान्हडदेप्रबन्ध – ले0 पद्मनाथ, सम्पा0 के0बी0 व्यास, जयपुर, 1953

काव्यमीमासा – ले0 राजशेखर

कीर्तिकौमुदी – ले0 सोमेश्वर, बम्बई, 1883

कुमारपालचरित – ले0 हेमचन्द्र, पूरा 1936

कुमारपालदेवचरित – ले0 सोमतिलक, एस0जे0जी0

कुवलयमालाकहा – ले0 उद्योतनसूरि, एस0जे0जी0, बम्बई

खरतरगच्छपट्टावली – ले0जिनपाल, सम्पा0 मुनिजिनविजय, कलकत्ता, 1932

तिलकमजरी – ले0 धनपाल, काव्यमान सिरीज, बम्बई 1938

द्वयाश्रयमहाकाव्य – ले0 हेमचन्द्र, बम्बई, 1915

द्रव्यपरीक्षा – ठक्कर फैरू

नवासाहसाकचरित – ले0 पद्मगुप्त, बी0एस0एस, 1895

पृथ्वीराजविजय – ले0जयानकभट्ट सम्पा0 जी0एच0 ओझा और जी0एस0 गुलेरी, अजमेर, 1941

प्रबन्धकोष – ले0 राजशेखर, एस0जे0जी0 1935

प्रबन्धचिन्तामिणि – ले0 मेरूतुग, एस0जे0जी0 1933

प्रशस्तिसग्रह – अमृतलाल शाह, अहमदाबाद वि0स0 1993

पुरातनप्रबन्धसग्रह	–	एस0जे0जी0, 1936
मनुस्मृति	–	एन0एस0पी0 1935
मानसोल्लास	–	ले0 सोमेश्वर, जी0के0 गोडेकर, जी0ओ0एस बडौदा 1925 1939
रघुवश	–	कालिदास ग्रन्थावली, सम्पा0 सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ, 1962
राजतरगिणी	–	ले0 कल्हण, सम्पा0 रामतेज शास्त्री, वाराणसी, 1960
लेखपद्वति	–	जी0ओ0एस0 1925
विक्रमाकदेवचरित	–	ले0 विल्हण, वी0एस0एस0, 1835
विविधतीर्थकल्प	–	ले0 जिनपालसूरि, एस0जे0जी0 1934
समराइच्चकहा	–	ले0 हरिभद्र, बम्बई 1938
सुरथेत्सव	–	ले0 सोमेश्वर, बम्बई, 1902
स्मृतिचन्द्रिका	–	ले0 देवभट्ट, सम्पा0 जे0आर0घरपूरे, बम्बई, 1918
शिशुपालवघ	–	ले0माघ, एन0एस0पी0, 1923
डा0 एस0पी0 व्यास	–	राजस्थान के अभिलेख का सास्कृतिक अध्ययन
हर्ष चरित	–	ले0बाण सम्पा0 पी0वी0 काणे, दिल्ली, 1965
आधुनिक ग्रन्थ (अग्रेजी) अल्तेकर, एस0एस0	–	जोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन, बनारस, 1938
		एजूकेशन इन इन्श्येन्ट इण्डिया, बनारस, 1948

स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एन्श्येण्ट इण्डिया, वाराणसी, 1955

राजकुमार अरोडा – हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल डेटा फ्राम दि भविष्य पुराण दिल्ली, 1934

इलियट एण्ड डाउसन – दि हिस्टरी आफ इण्डिया एच टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, 1–3 लन्दन, 1866–67

डी0सी0 गागूली – हिस्टरी आफ द परमारज, ढाका, 1933

लल्लन जी गोपाल, – दि इकोनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया, दिल्ली, 1965

एस0आर0 गोयल – ए हिस्टरी आफ दि इम्पीरियल गुप्तज, इलाहाबाद, 1966

के0 एस0 रामचन्द्र एस0पी0 गुप्त (सम्पा0) ओरिजन आफ ब्राहमी, दिल्ली, 1980

यू.एन घोषाल, – कण्ट्रिब्यूशन टू हिस्टरी आफ हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता, 1929

जी0सी0 चौधरी – ए पोलिटिकल हिस्टरी आफ नार्थ इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज, अमृतसर, 1954

के0सी0 जैन – जैनिज्म इन राजस्थान, शोलापुर, 1963 एन्श्येष्ट सिटीज एण्ड टाउन्स आफ राजस्थान, दिल्ली, 1972

जेम्स टॉड – एनाल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान, 1920

एस0के0 दास – इकानामिक हिस्टरी आफ इन्श्येण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1925

देवहूति – हर्ष, आक्सफोर्ड, 1970

आर नियोगी, – दि हिस्टरी आफ गहडवाल डायनेस्टी, कलकत्ता, 1950

बुद्ध प्रकाश – आस्पेक्टस आफ इण्डियन हिस्टरी एण्ड सिविललेशन, आगरा, 1965

वी0एस0 पाठक – एन्श्येण्ट हिस्टोरियन्स आफ इण्डिया, दिल्ली 1966

हिस्टरी आफ शैव कल्टस इन नार्दन इण्डिया, वाराणसी, 1960

प्राणनाथ – ए स्टडी इन दि इकानामिक कण्डीशन आफ इन्श्येण्ट इण्डिया, लन्दन, 1924

वी0एन0 पुरी – दि हिस्टरी आफ गुर्जर प्रतिहार, बम्बई, 1957

एस0सी बैनर्जी – राजपूत स्टडीज, कलकत्ता, 1944

प्रतिपाल भाटिया – दि परमारज, दिल्ली, 1970

आर0सी0 मजूमदार – कोरपोरेट लाइफ इन एन्श्येण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1922

हिस्टरी आफ बगाल 1, ढाका, 1943

ए0के0 मजूमदार – चौलुक्याज आफ गुजरात, बम्बई, 1965

बी0पी0 मजूमदार – सोशियो–इकानामिक हिस्टरी आफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता 1960

आर0सी0 मजूमदार एण्ड एस0डी0 पुसालकर – दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954

दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, बम्बई, 1955

दि स्ट्रगल फार एम्पायर बम्बई, 1955

बी0बी0 मिश्र – गुर्जर प्रतिहारज एण्ड देयर टाइमन, दिल्ली, 1966

आर0के0 मुकर्जी – एन्श्येण्ट इण्डियन एजूकेशन, लन्दन, 1047

के0एम0 मुन्शी – दि ग्लोरी वाज गुर्जर देश, बम्बई, 1954

एस0के0 मैती, – इकानामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया इन दि गुप्त पीरियड, दिल्ली, 1970

बी0एन0एस0 यादव – सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इलाहाबाद, 1973

एच0सी0 राय – डायनेस्टिक हिस्टरी आफ नार्दन इण्डिया, 1–2 कलकत्ता, 1921, 1936

एच0सी0 राय चौधुरी – पोलिटिकल हिस्टरी आफ इन्श्येण्ट इण्डिया, 5वा सस्करण, कलकत्ता, 1953

सी0पी0 वैद्य – हिस्टरी आफ मेडीवल हिन्दू इण्डिया, 1–2 पूना

बी0एन0 शर्मा – सोशल एण्ड कल्चरल हिस्टरी आफ नार्दन इण्डिया, दिल्ली,1972

दशरथ शर्मा – अर्ली चौहान डायनेस्टीज, दिल्ली द्वितीय सस्करण 1975

राजस्थान थ्रू दि एजिज, बीकानेर, 1966

लेक्चर्स आन राजपूत हिस्टरी एर्ण्ड कल्चर, दिल्ली, 1970

एच0वी0 शारदा – स्पीचेज एण्ड राइटिंगस, अजमेर, 1935

शुक्ल डी0सी0 – अर्ली हिस्टरी आफ राजस्थान, दिल्ली, 1980

अशोक श्रीवास्तव – इण्डिया एज डेस्क्राइब्ड बाई दि अरब ट्रेवेल्र्स, गोरखपुर, 1967

डी0सी0 सरकार – सक्सेसर्स आफ दि सातवाहनज, कलकत्ता, 1939

स्टडीज इन ज्योग्राफी आफ इन्श्येण्ट इण्डिया, एण्ड मेडीवल इण्डिया, दिल्ली, 1960–61

गुहिलज आफ किष्किन्धा, कलकत्ता, 1965

दि शाक्त वीटज, दिल्ली, 1973

गोपालचन्द्र सरकार – ए ट्रिग्टाइज आन हिन्दू ला, कलकत्ता, 1927

इ0सी0 साचउ – अल्बरूनीज इण्डिया, 1–2, लन्दन, 1888

जी0पी0 सिन्हा – पोस्ट गुप्त पालिटी, कलकत्ता 1972

आर0सी0पी0 सिह – किंगशिप इन नादर्न इण्डिया, यूनिवर्सिटी आफ लन्दन, 1957

आर0बी0 सिह – हिस्टरी आफ दि चाहमानज, वाराणसी, 1964

बी0ए0 स्मिथ – अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1924

एन0एस0 सुब्बाराव – इकानामिक एण्ड पालिटिकल कण्डीशन इन इन्श्येण्ट इण्डिया, मैसूर, 1911

रामवल्लभ सोमानी, – पृथ्वीराज चौहान एण्ड हिज टाइम्स, जयपुर, 1981

आर0एस0 त्रिपाठी – हिस्टरी आफ कन्नौज, बनारस, 1937

आधुनियक ग्रन्थ (हिन्दी) अग्रवाल वा0श0 – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वाराणसी। हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पटना, 1953

कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन।

गौ0ही0 ओझा – मध्यकालीन भारतीय सस्कृति, इलाहाबाद, 1928

उदयपुर राज्य का इतिहास, अजमेर, 1928

जोधपुर राज्य का इतिहास, अजमेर, 1938

सिरोही राज्य का इतिहास, अजमेर, 1911

डूगरपुर राज्य का इतिहास।

पी0वी0 काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास 1–5 अनु0 अर्जुन चौबे काश्यप, लखनऊ

एस0आर गोयल, – प्राचीन भारत का राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद 1969

एस0आर0 गोयल एव एस0के0 गुप्त (सम्पा) – मागध साम्राज्य का उदय, दिल्ली, 1980

प्रेमसुमन जैन – कुवलयमालाकहा का सास्कृतिक अध्ययन बिहार, 1975

वी0एन0 पाठक – उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास लखनऊ, 1973

आर0जी0 भण्डारकर – वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, हिन्द अनु0 वाराणसी, 1970

जयशकर मिश्र – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1974

गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का इतिहास, आगरा 1980 राजस्थान के इतिहास के स्रोत पुरातत्व 1, जयपुर, 1973

दशरथ शर्मा – चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग जयपुर, 1972

आर0एस0 शर्मा – भारतीय सामन्तवाद, दिल्ली, 1973

रामवल्लभ सोमानी – वीर भूमि चितौड, जयपुर, 1969 इतिहासिक शोध सग्रह, जोधपुर, 1970

आरक्योलाजिकल रिपोर्टस–

इण्डियन आरक्योलाजी – ए रिव्यू

एन्वल रिपोर्ट आन इण्डियन एपिग्राफी

एन्वल रिपोर्ट आरक्योलाजिकल सर्वे, वेस्टर्न इण्डिया

एन्वल रिपोर्ट आफ दि आरक्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया

एन्वल रिपोर्ट आफ दि राजपूताना म्यूजियम

प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ आरक्योलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न सर्कल

शोध पत्रिकाए –

इण्डियन एण्टिक्वेरी, बम्बई

इण्डियन कल्वर कलकत्ता

इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टली, कलकत्ता

जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी बेगाल, कलकत्ता

जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बडौदा

जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास

जर्नल आफ गगानाथ झा रिसर्च इन्स्टिट्यूट, इलाहाबाद

जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसायटी, पटना

जर्नल आफ बोम्बे ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई

जर्नल आफ बोम्बे यूनिवर्सटी, बम्बई

जर्नल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसायटी, बनारस

एन्श्येंट इण्डिया, दिल्ली

एनाल्स आफ भाण्डारकर अरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना

एपिग्राफियाा इण्डिका

दि क्वारटली रिव्य आफ हिस्टोरिकल स्टडीज कलकत्ता

न्यू इण्डियन एण्टीक्वेरी, बम्बई

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बनारस

भारती, उज्जैन

भारतीय विद्या बम्बई

मरूभारती, पिलानी

प्रोसीडिंग्ज आफ इण्डियन हिस्टरी काग्रेस

प्रोसीडिंग्ज आफ राजस्थान हिस्टरी काग्रेस

राजस्थान भारती, बीकानेर

रिसर्चर, जयपुर

वरदा, बिसाऊ

विश्वम्भरा, बीकानेर

शोध पत्रिका, उदयपुर।

ABBREVIATIONS

A A	Abdul Fazl, A-ın-ı-Akbarı
A I	Antıquıtıes of Indıa
A B O R I	Annals of the Bhandarkar Orıental Research ınstıtue
A I K	Age of Imperıal Kanauj (Bharatıya Vıdya Bhavan's Vol IV 1964
A R A D G S	Annual Admınıstratıve Report of Archaeologıcal Department, Gwalıor State
A R A S I	Annual Report of the Archaeologıcal Survey of Indıa (Imperıal Serıes)
A S I R	Archaeologıcal Survey of Indıa Reports, By Cunnıngham
A R I E	Annual Report on Indıan Epıgraphy
A R R M	Annual Report of Rajputana Museum, Ajmer
A S I	Archaeologıcal Survey of Indıa
Bomb Gaz or G B	Bombay Gazetteer
C I I I	Cambrıdge Hıstory of Indıa
C I R A	Census of Indıa (1961), Rajasthan, Census Atlas
C M I	Cunnıngham, Coıns of Medıeval Indıa
C I I	Carpus Inscrıptıon on ındıcarum
D H N I	. H.C. Ray, Dynastıc History of North Indıa

D K	Hemachandra, Dvyasrara – Kavya
Ep Corn or E C	Epigraphia Carnatica
E C D	Dasharatha Sharma, Early Chauhan Dynasties, 1959
E H D	R G Bhandarkar, Early History of the Deccan, third edition, (1928)
Ep Ind or E I	Epigraphia India
Elliot Dawson	History of India – As told by is Historians
E R K	Early Rulers of Khajuraho by S K Mitra, 1958
G D A M I	N Dey, Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India
G O S	Gaekwad Oriental Series
H A L	P V Kane, History of Alankara Literature, Bombay, 1923
H B	R D Banerji, History of Bengal
H C	N C Bose, History of the Cahndellas
H D	P V Kane, History of Dharmasastra Literature
H K	R S Tripathi, History of Kanauj, Delhi, 1959
H M H I	C V Vaidya, History of Medieval Hindu India
H M K	Nayachandra Suri, Hammiramahakavya
H M M	Nayachandra Suri, Hammiramada
H P D	D.C Ganguly, History of the Paramara Dynsty
H S P	History of Sanskrit Poetics

Ind Ant or I A	Indian Antiquary
I C P B	Hiralal, Inscriptions of the Central Provinces and Berar
Ind Cult or I C	Indian Culture
L E G	D C Sircar, Indian Epigraphical Glossary
I G I	Imperial Gazetteer of India
I H Q	Indian Historical Quarterly
I M C	V A Smith, Catalogue of Coins in the Indian Museum
I N I	D R Bhandarkar, A list of the Insers of N I Appx to Ep Ind , Vols, XIX-XXVI
J A O S	Journal of the American Oriental Society
J A O S	Journal of the Asiatic Society of Bengal
J B B R A S	Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society
J D L	Journal of the Department of Letters, Calcutta University
J M P I P	Journal of the Madhya Pradesh Itihasa Parishad, Bhopal
J N S I	Journal of the Numismatic Society of India
J O R	Journal of Oriental Research, Madras
J U P H S	Journal of U P Historical Society
J R A S	Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland

K Y	Kıtab –ı-Yamını, translated by J Reynolds, London
Mbh	Mahabarata
M S or Manu	Manusmrıtı (or M Sm)
M T A	K C Jaın, Malwa through the Ages, 1973
Num Suppl	Numısmatıc supplement
N S C	Navasahasamkacharıta, Vıdyabhavan Sanskrıt Serıes, No 66, Varanası, 1963
P B P	Pratıpal Bhatıa, The Paaramaras, 1970
P C M	Prabandhachıntamanı, C H Tawney's translatıon, Calcutta, 1894
P I H C	Proceedıngs and Transactıons of the Indıan Hıstory Congress
P O	Poona Orıentalıst
P R A S W I or P R A S W C or A S I W C R	Progress Report of the Archaeologıcal Survey, Western Cırcle
P T A I O C	Proceedings and Transactıon of All Indıa Orıental Conference
Q R H S	Quarterly Revıew of Hıstorıcal Studıes, Calcutta
R T T OF R K	A S Altekar, Rashtrakutas and Theır Tımes
S E	Sachau – Albarun's Indıa (E C Sachau)
Sachau	Alberunı's Indıa – E C Sachau
S J G	Struggle for Empıre (Bharatıya Vıdya Bhavan's Vo V, 1966)

S L H C	Sınghı Jaına Grantha-mala
S M K	Srıngaramanjarıkatha
Smıth Cat Coıns	Catalogue of The Coıns ın the Indıan Museum Calcutta- V A Smıth
S P	Srıngaraprakasa
T A D	Taqat-ı-Akbarı, translated by Dey
T F or T F B	Tarıkh-ı-Fırıshta (Brıgg's trans)
T M	Dhanapala, Tılakamanjarı
T N or T N R	Mınhaj-ud-dın, Tabaqat-ı-Nasırı, Ravery's Englısh Translatıon
T S S	Trıvandram Sanskrıt Serıes
V D C	Bılhanga, Vıkramankadevacharıta
V V	Balachandra Surı, Vasantavılasa
Yaj Sm	Yajnavalkya-smırıt
Ellıot or H I E D	Hıstory of Indıa, as told by ıts own Historıans (Ellıot and Dowson)
W Z K M	Wiener Zeıtschrıft fur dıe kunde des Morgenlandes